Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

AUR VED VIGYAN

G. K. U.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

amaj Foundation Chenn

AUR VED VIGYAN

main. Gurukul Kangri Co

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079421

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ७ | चैत्र सम्वत् २०१[illegible] | संख्या ४

अप्रैल १९६०

आयुर्वेद-विज्ञान

COMPILED

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

सम्पादक

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

079421

079421

विषय-सूची

१. आयुर्वेद का शत्रु कौन ? ४९
२. रास्ना विवेचन ५४
३. मकरध्वज पर विश्लेषणात्मक प्रयोग ५६
४. इन्दौर के राजकीय आयुर्वेद विद्यालय में हड़ताल ५८
५. विषम ज्वर (मलेरिया) उन्मूलन ५९
६. संसार किस तेजी से आगे बढ़ रहा है ६०
७. साहित्य सत्कार व समालोचना ६१
८. स्वामी हरिशरणानन्द वैज्ञानिक पुरस्कार ६२
९. आयुर्वेदीय प्रकाशन ६३

प्रकाशक—

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, खारी बावली, दिल्ली–६

मुद्रक—बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दरीबाकलां नई सड़क, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ३० नये पैसे होगा।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये। अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्व-प्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा। किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, न करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायेगा।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर किसी परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-सम्बन्धी प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये आयुर्वेद-विज्ञान के ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न एक रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके प्रश्न और उत्तर छापे जायेंगे। मैनेजर

शिवा गुटिका

(जीर्ण और वृद्ध रोगियों के लिये दिव्य रसायन)

यह योग चक्रदत्त भैषज्य रत्नाकर और योगरत्नाकर ग्रन्थों में रसायनाधिकार में आया है इस योग का प्रमुख द्रव्य शिलाजीत सूर्यतापी है जिसे कई वनस्पतियों और जीवनीय गण की औषधियों द्वारा ग्रीष्म काल की आतप में भावित कर उसकी मलाई उतारी जाती है। पश्चात कुछ अन्य औषधियां मिला कर इस की गुटी बनाई जाती है।

शास्त्र में इसे आमवात, यक्ष्मा, पाण्डु, नपुंसकता, मृगी तथा शिर, नेत्र, कण्ठ, फुप्फुस एवं हृदय के कई रोगों में लाभकारी लिखा है। इसका मुख्य गुण रसायन है। अर्थात् किसी भी जीर्ण रोग से, जरावस्था में अथवा किसी भी तरह जब शरीर की कार्य व्यवस्था बिगड़ जाय, शरीर की कोषायें निर्बल विकृत हो जायें तो यह औषधि स्वास्थ्य को पुनः बिल्कुल ठीक कर देती है, ऐसा अपने पर और अन्य रोगियों पर इसे प्रयोग करके हमने देखा है। जीर्ण रोगों से पीड़ित रोगियों व वृद्धावस्था में होने वाले विकारों तथा दुर्बलता में तो यह गुटिका विशेष रूप से लाभप्रद रसायन सिद्ध हुई है।

रसायन औषध दो चार दिन खाने से लाभ नहीं करती। दो गोली प्रातः सायं २–३ मास तक निरन्तर खानी चाहिये। एक मास सेवन करने योग्य ५ तोला गोली के पैकिट का मूल्य केवल ५) है, पैकिंग डाक खर्च भिन्न।

पता-मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, ६०-६१, अकालीमार्केट, अमृतसर

ब्रांच—खारी बावली दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद-विज्ञान

आयुर्विदेव वितते किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्नपरकैर्भवतीह लभ्यम्
शक्तिं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ॥

वर्ष ७ | चैत्र २०१७ वि०, अप्रैल १९६० ई० | अंक ४

आयुर्वेद का शत्रु कौन ?

मनुष्य को सामाजिक प्राणी इसी लिये कहा जाता है कि वह अपनी भलाई, बुराई के सम्बन्ध में परस्पर मिलकर विचार करता चला आ रहा है। मनुष्य को छोड़ कर यह बात किसी और प्राणी में नहीं पायी जाती। परस्पर मिलकर विचार करने के लाभ को देख कर ही हमने संस्थाएं स्थापित कर ली थीं और उन संस्थाओं में हमने ऐसे व्यक्ति चुनकर आगे किये जो केवल विद्या बुद्धि में ही श्रेष्ठ नहीं थे प्रत्युत वे ऐसे निष्काम सेवी होते थे जो समाज के लिये अपना जीवन तक उत्सर्ग कर देते थे।

हर पहलू में जो इस समय मनुष्य ने आश्चर्य जनक उन्नति कर ली है यह केवल मात्र परस्पर की संगठित शक्ति के बल पर ही ऐसा सम्भव हो सका है। इस समय कला-कौशल, यन्त्र-निर्माण, भौतिक-विद्या, रसायन-विद्या, चिकित्सा आदि सैंकड़ों विद्याओं में जो अभूत पूर्व उन्नति हुई है और प्रति क्षण हो रही है, वह अनेकों के मिले मस्तिष्क शक्ति का ही परिणाम है। अब तो वह समय आ गया है कि इस पृथ्वी का कोई कोना एक देश से दूर नहीं रहा। पाताल में बसा अमेरिका, भूखंड के एक कोने में बसा इंगलैंड व जापान ज्ञान विज्ञान की चर्चा में एक दूसरे के इतने समीप हो रहे हैं कि उन सबों के ज्ञान विज्ञान की चर्चा हम सबों को प्रति क्षण मिलती रहती हैं। इस समय की उलझी हुई बड़ी से बड़ी समस्याएं सब सुलझती जा रही हैं। क्योंकि जब एक बात एक व्यक्ति के द्वारा हल नहीं होती दूसरा या तीसरा उसे हल कर दिखलाता है। इस तरह गहन से गहन विषयों का हल निकलता चला आ रहा है। आज से ५० वर्ष पूर्व इसको दूरदर्शी श्री शंकर दापदे ने देखा था तभी उन्हें वैद्य समाज को संगठित करने की आवश्यकता दिखाई दी। उस समय वैद्य समाज की क्या दशा थी ? न उनका कोई संगठन था, न वे परस्पर मिलकर किसी बात पर बैठकर विचार कर सकते थे। उस समय उनकी निम्न दशा थी—कि एक वैद्य दूसरे वैद्य को रोगी के घर में आया देखकर एक दूसरे को प्रताड़ित करते थे। इस अत्यन्त गर्हित दशा को देखकर श्री शंकर दापदे, श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल व श्री यादव जी महाराज ने मिलकर वैद्य समाज को संगठित करने का प्रयत्न किया। उन्हीं के प्रयत्न से अखिल भारतीय आयुर्वेद महा मण्डल का जन्म हुआ था। इस संस्था के संस्थापन का मुख्य उद्देश्य था (१) वैद्यों को संगठित करना। (२) समस्त भारतीय आयुर्वेद संस्थाओं को एक सूत्र में पिरोना और एक सी शिक्षा परीक्षा का कार्य क्रम निर्धारित करना। (३) और शिक्षा के स्तर को ऊंचा करने के लिए आयुर्वेद विश्व विद्यालय की स्थापना करना।

जब तक आयुर्वेद महा मण्डल का कार्यालय पंजाब प्रान्त की राजधानी लाहौर में नहीं आया था तब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस संस्था के कार्य कर्ताओं में बड़ा उत्साह था, और इस संस्था का संगठन दृढ़ होता जा रहा था। जब से महा मण्डल का कार्यालय लाहौर आया और श्री यादवजी महाराज की कृपा से प्रधान पद पर शिवशर्मा आसीन हुआ वह अपनी कूट नीतिक चालों से इस संस्था का डिक्टेटर बन गया। और इसने अपनी कूट नीतिक चालों से विधान में अनेकों फेर फार किये और महा मण्डल में अपने साथियों की संख्या बढ़ाता चला गया। उसने विधान में ऐसे २ हेर फेर किये कि अपने विरोधियों को उसमें घुसने से रोकने के लिये सदस्यों के बहिष्कार तक के नियम का कुल्हाड़ा उनके सिर पर लटकाया, जिसका वार वह अब तक कई वैद्यों पर कर चुका है।

यदि वह महा मण्डल का प्रधान बनकर उक्त उद्देश्यों की पूर्ति करता, वैद्यों को संगठित करता, प्रति वर्ष महा सम्मेलन के अधिवेशन होने देता, समस्त आयुर्वेद विद्यालयों को एक सूत्र में पिरोने का उपक्रम करता, महा मण्डल द्वारा आयुर्वेद विश्व विद्यालय स्थापित कर देता तो हम उसे आयुर्वेद का हितैषी, वैद्य समाज का शुभ चिन्तक मानते। किन्तु उसने आरम्भ से ही जितने भी काम किये वैद्य समाज में फूट डालने के किए। संगठन के नाम पर जब प्रान्तों का दौरा किया तो उसको जो चापलूस मिला, उसको तो सदस्य बनाया जो विरोधी वैद्य दिखाई दिया उसे उसने महा मण्डल का सदस्य बनने से रोकने का भरसक प्रयत्न किया। इस तरह उसने वर्ग विद्वेष बढ़ाया। वैद्य समाज के संगठन को उसने इस बुरी तरह नष्ट किया कि आज तक वह सुधरने में नहीं आ रहा।

इसने वैद्य समाज में वर्ग विग्रह किस तरह फैलाया

१९४५ में इसने एक ऐसे अजनबी व्यक्ति को महा मण्डल के प्रधान पद पर ला बिठाया जिसे वैद्य समाज जानता भी न था। ५ वर्ष तक तो आप महा मण्डल से चिपका रहा और अपनी ख्याति बढ़ाता रहा तथा विधि, विधान की आड़ में महामण्डल विद्यापीठ के धन का खूब उपभोग करता रहा और उसके वल पर अपनी ख्याति फैलाता रहा। महा मण्डल के खर्चे पर हवाई जहाज तक से सफर करता रहा। इसके बाद इसने एक एम. के. मुकर्जी को प्रधान पद पर बिठा दिया और आप प्रधान मन्त्री बन बैठा और राज कोट में इसने जो अधिवेशन स्थगित करके गुल खिलाये किसी वैद्य से वह नजारे भुलाये नहीं जा सकते। जब मुकर्जी को इसने प्रधान पद पर आसीन किया उसी समय इसने शुद्ध आयुर्वेद का एक नया शोशा छेड़ा।

जब देश का विभाजन हुआ यह हजरत बम्बई पहुँचे। महा मण्डल की पांच बार प्रधानता करने के कारण इनकी ख्याति काफी बढ़ गई थी। श्री मुरारजी देसाई जैसे रूढ़िवादी व्यक्तियों ने समझा यह व्यक्ति वास्तव में आयुर्वेद का परम हित चिन्तक होगा। उन्होंने इसे किसी आयुर्वेद संस्था का चेयर मैन किसी का प्रधान बनाया और आयुर्वेद की शिक्षा व्यवस्था को संगठित करने के लिये इसे आगे किया। इसके परामर्श से ही बम्बई में शुद्ध आयुर्वेद की शिक्षा का पठन पाठन आरम्भ हुआ। और वहां के जो स्नातक अब तक शुद्ध शिक्षा का डिप्लोमा लेकर निकलते हैं वह क्या हैं? कैसे वैद्य बने हैं? उनकी योग्यता कितनी है? यह या तो शिव शर्मा से पूछिये या उन स्नातकों से।

हमारी सरकार क्या चाहती थी? हमारा यह नेता क्या चाहता था?

कांग्रेस सरकार के बड़े २ नेता प्रधान राजेन्द्रप्रसाद जी तक एक बार नहीं हजार बार इन नेताओं को कह चुके हैं कि वैद्यों को समय के अनुसार अपने को बदलना चाहिये और जितना भी नव्य ज्ञान विज्ञान बढ़ चुका है उसे अपने आयुर्वेद में मिला लेना चाहिये। बिना इस तरह किये उन्नति सम्भव नहीं। किन्तु इन आयुर्वेद नेताओं के कान पर जूं तक न रेंगी। जब देश के नेताओं ने देखा कि यह आयुर्वेद नेता शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ने के स्थान पर पीछे जा रहा है जब यही आयुर्वेद को समुन्नत नहीं करना चाहता तो हमें क्या पड़ी है कि हम देश के स्वास्थ्य को इनके हाथों में देकर देश को भी नरक कुन्ड में धकेलें। इसी से समस्त राज्यों और केन्द्र ने भी मालूम होता है यह निर्णय कर लिया है कि इसी धूर्त के हाथ से क्यों न आयुर्वेद की लुटिया डुबोदी जाय। तभी डा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पूर्णानन्द जी ने भी इस व्यक्ति का आह्वान कर इस जैसे विचारकों से शिक्षा का नया कोर्स तयार करवाया। छात्र तो चाहते थे कि हम बिना पढ़े ही डाक्टर की उपाधि से विभूषित हों। यहां हजरत नें उन्हें घर का रक्खा न घाट का। इसी से तो छात्रों ने वैद्य बनना पसन्द नहीं किया, न कालेजों ने १०० वर्ष पीछे जाना पसन्द किया। परिणाम यह हुआ कि कालेज बन्द हो गये। यही नहीं वे आयुर्वेदिक कालेज मेडिकल कालेजों में भी बदलने लग गये। यह सब शुद्ध आयुर्वेद शिक्षा के करतब का परिणाम था।

यह और इसके साथी संवैधानिक तरीके से महा मंडल की निधि पर किस तरह से पानी फेर रहे हैं

हमने अप्रैल १९५९ के आयुर्वेद विज्ञान में पृष्ठ ५८ पर यह दिखाया था कि इस व्यक्ति ने सैंकड़ों जाली ऐसे सदस्य भर्ती किये जिन्होंने कभी चन्दे की रकमें अदा नहीं की थीं। वह रकमें कोई सौ दो सौ की नहीं थीं, प्रत्युत ५३८६) ५० नये पैसे की यह रकम ऐसी है जिसकी बदौलत इसने अपना बहुमत बनाने के लिये इन बोगस आदमियों को भर्ती करके ऐसे व्यक्तियों के बहुमत से प्रति बार जिसको चाहे प्रधान व पदाधिकारी बनाता चला आया है। यह व्यक्ति महा मण्डल को किस तरह लूटता खाता आ रहा है इसका सबूत मैं अप्रेल १९५८ के आयुर्वेद विज्ञान के पृष्ठ ५५पर दे चुका हूँ। वामनराव महा मन्त्री भी महामण्डल को किस तरह चिपका खाता आ रहा है वहीं इसके प्रमाण भी दे चुका हूँ। अब ताजी घटना यह है कि अब फिर महामण्डल के ३ हजार रुपये पर पानी फेरा जा रहा है। इसको भी जरा महामण्डल के सदस्य आँख खोलकर देख लें।

जो व्यक्ति महा मण्डल के सदस्य हैं उन्होंने जनवरी १९६० की आयुर्वेद महा सम्मेलन पत्रिका अवश्य पढ़ी होगी,न पढ़ी हो तो कृपा करके महा सम्मेलन स्थायी समिति पूना के अधिवेशन की कार्यवाही फिर से पढ़ें। वहां एक प्रस्ताव संख्या १० आया है वह निम्न है:—

श्री भंडार नायके की समाधि पर अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की ओर से श्रद्धांजलि देने और पुष्प मालाएं अर्पित करने के लिए अध्यक्ष श्री वैद्यराज अनन्त त्रिपाठी शर्मा तथा पं० शिवशर्मा द्वारा संगठित एक शिष्ट मंडल को श्री लंका भेजा जाय।

'स्थायी समिति यह निश्चय करती है कि विशेषावस्था में शिष्ट मण्डल के सदस्यों की लंका यात्रा के लिये वायुयान का किराया स्वीकार किया जाय और तदर्थ पूर्व स्वीकृत अनुमानिक व्यय के अतिरिक्त १००० रुपये और यात्रा व्यय मध्ये स्वीकार किये जांय।

शिवशर्मा ने अभी अभी लंका में भेजा जाने पर विश्व स्वास्थ्य संगठन के कोष से १५ हजार रुपये से अधिक झिटके हैं। पं० अनन्त त्रिपाठी भी कोई भूखे नंगे वैद्य नहीं हैं। यह श्रद्धांजलि तो एक मुफ्त में बिना पैसे के इन दोनों के वहां पहुँचने का एक साधन है। जिस व्यक्ति ने महा मंडल के धन पर भारत में अपनी कीर्ति बढ़ाई वह चाहता है कि जो मेरा साथ दे उसकी भी इसी तरह कीर्ति पताका क्यों न फहराई जाय। चिकित्सक जो ठहरे। यह एक हजार तो इस स्थायी समिति के अधिवेशन में स्वीकृत कराये गये दो सहस्र रुपया यात्रा व्यय के लिये आय व्यय सन्तुलन पत्र में दिखाये गये हैं, यह पूर्व स्वीकार हुए अनुमानिक आय व्यय में विद्यमान हैं। देखो नवम्बर की सम्मेलन पत्रिका। इस तरह महा मण्डल के ३ हजार रुपयों में यह और इसका साथी पं० अनन्त त्रिपाठी जी महाराज क्या पानी फेर रहे हैं! यही आयुर्वेद का उद्धार हो रहा है।

और देखिये। महामण्डल की १०३१ रुपये की एक रकम, तथा विद्यापीठ की ७५० रुपये की दूसरी रकम इन्होंने इसी पूने के अधिवेशन पर बट्टे खाते में डलवाई हैं। आप पूछेंगे यह रकमें कौन सी हैं। यदि आप महा मण्डल के सदस्य हैं तो आपको पता होना ही चाहिये कि १९५५ में जब त्रिवेन्द्रम में इसने महा मण्डल का वार्षिक अधिवेशन किया था, उस समय पं० पार्थनारायण ने वहाँ स्वागत समिति बनाई थी। वह व्यक्ति इतना प्रभाव हीन था जो प्रान्त से इतनी निधि भी संचित नहीं कर सका कि आगत वैद्यों का सत्कार कर सकता। इसीलिये उस समय वह सारा का सारा खर्च महामण्डल के कोष से किया गया था और यह अधिवेशन दूसरे स्थान से निमन्त्रण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलने पर वहां शिवशर्मा ने इसलिये करने का साहस नहीं किया क्योंकि उसे डर था कि यदि यह अधिवेशन इधर के किसी प्रान्तों में हो गया तो वहां विरोधी दल की संख्या इतनी अधिक बढ़ जायगी कि सम्मेलन हाथ से निकल जायगा। इसीलिये वह सम्मेलन को दक्षिण के कोने में करना सुरक्षित समझता था। उस समय यह रुपये दिखावे के तौर पर स्वागत समिति के नाम डाले गये थे। वह जबसे ही स्वागत समिति के नाम लगे चले आते थे। दूसरा रकम ७५० की वह रकम है जब यह अपने सम्बन्धी श्रीदत्त जी को साथ लेकर ऋषीकेश में बाबाकाली कमली वाले के साथ मिलकर आयुर्वेद विश्व विद्यालय खोलने जा रहा था। उस समय दस हजार रुपया पेशगी के तौर पर बाबा काली कमली वाले को विद्यापीठ खाते से दिलाये गये थे। उसमें से कुछ रकम तो रो पीट कर किसी तरह पूरी की गई फिर भी ७५० रुपये की रकम अभी तक बाबा काली कमली वाले के नाम खड़ी चली आ रही थी। बाबा काली कमली वाला क्षेत्र कोई गरीब ट्रस्ट नहीं है लाखों रुपया उसके ट्रस्टियों के पास जमा है किन्तु यह रकम उनसे न मांगकर बट्टे खाते क्यों डाली गई ? इसमें भी बड़े रहस्य की बात है। इसीलिये यह रकम उनसे मांगने का न तो विद्यापीठ मन्त्री को हौसला हुआ न महा मण्डल के प्रधान मन्त्री को। अब इस पूने के अधिवेशन पर निम्नलिखित प्रस्ताव द्वारा किस तरह से उसे बट्टे खाते डाला गया इसे महा मण्डल सदस्य देखें:—

'प्रस्ताव नं० २ (ख) निश्चय हुआ ४० वें अ० भा० आयुर्वेद सम्मेलन की स्वागत समिति त्रिवेन्द्रम के नाम लग रहे १०३१ रुपये ३१ नये पैसे तथा श्री बाबा काली कमली वाले पंचायती क्षेत्र ऋषीकेश के नाम लग रहे ७५० रुपये की धन राशियां अब बहुत पुरानी हो गई हैं अतएव इन्हें अप्राप्य ऋण समझकर सोधे क्रमशः महा सम्मेलन तथा विद्यापीठ के स्थिर कोष से जमा खर्च कर दिया जाय।' इस ३ वर्ष के मध्य किसी ने उनसे न मांगा न किसी ने पूछा वह फिर वसूली के नाकाबिल हो जाती हैं। इसीलिये उन्हें किस चालाकी से बट्टे खाते डाला, यह सदस्यगण देख लें।

हमारे वैद्य समाज में जीवन होता तो इस तरह अपना बहुमत बनाकर शिवशर्मा महामण्डल के इस पौने पांच हजार की रकम पर पानी न फेर सकता। वह महा मण्डल के अधिवेशन दिल्ली में न करके दूर के प्रान्तों में क्यों करता है ? इसमें रहस्य यही है कि वहां वह अपने बहुमत का पहले से प्रबन्ध कर लेता है। इस १० दिसम्बर वाले पूने के अधिवेशन पर ४० वैद्यों की उपस्थिति थी उसमें से वह ३४ सदस्यों को अपने साथ बम्बई से लाया था दो सदस्य उसमें पूने के और दो ही नागपुर के उसमें सम्मिलित हुए थे। महामण्डल की रकम पर इस तरह पं० अनन्त त्रिपाठी और शिवशर्मा पानी फेरें और वहां विरोध करने वाले केवल चार ही व्यक्ति हों कितने आश्चर्य की बात है। वैद्यों में यदि जीवट का कुछ भी चिन्ह होता तो क्या इस तरह यह महामण्डल की रकमों से यह दोनों लंका में जाकर भंडारनायके की समाधि पर फूल चढ़ाने जाते। श्री भंडार नायके ने आयुर्वेद के लिये श्री लंका में क्या किया ? वह एक ऊँचा राजनीतिज्ञ था तो इससे आयुर्वेद को क्या लाभ पहुँचा ? इसने वहां के वैद्य समाज में क्या किया इसके प्रमाण रखता तो वैद्यों को उसकी विशेषता का पता भी चलता। उस दशा में उसकी समाधि पर फूल चढ़ाना आयुर्वेद के हित में माना जा सकता था। 'घर के पितर भूखों मरें दूसरे के पितरों को तर्पण देना' कौन सी बुद्धिमानी है। शिवशर्मा के साथ यदि लंका के प्रधान मन्त्री ने कोई उपकार किया है तो वह हजार वार अपने पैसे खर्च कर उन्हें श्रद्धांजलि दे और वह महामण्डल के नाम पर दे तो वैद्य समाज भी जाने कि शिवशर्मा आयुर्वेद का बड़ा भक्त है। 'मुफ्त का माल दिले बेरहम' बनना गरीब वैद्यों विद्यार्थियों के पैसे लुटाना, इससे बड़ा गर्हित कर्म कौन सा होगा ? क्या यही आयुर्वेद का उपकार हो रहा है।

महामण्डल में झगड़े खवाहमखवाह इसी तरह नहीं खड़े किये जाते, महामण्डल के धन का सत्यानाश होते जिससे नहीं देखा जाता वही माई का लाल आगे आता है। जो व्यक्ति आगे आता है वह जन समाज से धन से मुकदमा लड़ने के लिए चन्दा नहीं मांगता। वह अपनी गाढ़ी कमाई का पैसा इस पर इसलिये लगाता है कि यदि महामण्डल इन आयुर्वेद शत्रुओं से मुक्त हो जाय तो वह संगठित होकर सरकार से लोहा ले सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079521

महामण्डल में मुकदमे बाजी ऐसे ही अवैधानिक कार्यों के कारण आरम्भ हुई। कोई भी महामण्डल हितैषी इस तरह पांच २ हजार रुपया नष्ट होता नहीं देख सकता। जब से शिवशर्मा महामण्डल का सर्वेसर्वा बना वह इसी तरह महामण्डल का धन बर्बाद करता चला आ रहा है अब उसमें हाथ बंटाने वाला पं० अनन्त त्रिपाठी दूसरा सहयोगी मिल गया। जिसके महामण्डल का प्रधान बनते ही कई महामण्डल पर मुकदमे दायर हो चुके हैं। जब से शिवशर्मा प्रधान बना, शायद ही कोई वर्ष शुभ रहा हो जब कोई महामंडल पर मुकदमा न बना हो, नहीं तो अब तक प्रति वर्ष ही महामण्डल का हजार दो हजार रुपया इस विग्रह पर खर्च होता रहा है। १६५६ में ही महामण्डल का १६६६ रुपया केवल मुकदमों पर ही खर्च हुआ। इस वर्ष फिर १५०० रुपये अनुमानिक आय व्यय में स्वीकृत किये हैं। इस तरह यह व्यक्ति महामण्डल का अब तक १५-२० हजार रुपया केवल मुकदमे बाजी पर खर्च कर चुका है।

पंडित अनन्त त्रिपाठी ने जून के महीने में अभी वैद्यों से अपील की कि वे मुकदमों से हाथ खींच लें इसपर वैद्यों ने उनसे पूछा कृपा करके इन मुकदमों के मूलाधार कारण को तो वैद्य समाज के सामने रखिये। आपने सितम्बर की सम्मेलन पत्रिका में जो अपना वक्तव्य प्रकाशित कराया है उसमें उन मूल कारणों पर कोई प्रकाश नहीं डाला। प्रत्युत उनकी अध्यक्षता में जो अभियोग दायर हुए और जिन्हें शिवशर्मा के साथी श्री मोहनलाल पुरुषोत्तमदास ने बम्बई म, आर गुलराज शर्मा व ज्वाला प्रसाद ने दिल्ली में दायर किया था उनका विवरण अवश्य दिया। असली अवैधानिक कारणों से जो मुकदमे होते हैं आप उन्हें पी गये। आप वैद्यों से प्रार्थना करते हैं कि वे अपना भ्रम परित्याग कर दें और अभियोगों को वापस ले लें।

आप प्रधान पद पर आसीन होने के समय से ही दिल्ली में होने वाले वार्षिक अधिवेशन को टालते चले आ रहे हैं और आप भी इस गद्दी को छोड़ना नहीं चाहते। इसीलिये यह दूसरा वर्ष जा रहा है और अधिवेशन नहीं हो पा रहा इसका समस्त उत्तरदायित्व आप पर ही है। प्रधान बनने से पूर्व वैद्य समाज ने कभी आपका नाम तक नहीं सुना था, आपको शिवशर्मा ने एकाएक इस महामण्डल की गद्दी पर ला बिठाया। अब आपकी प्रैक्टिस चमकाने के लिये महामण्डल के धन से आपको लंका की सैर कराने ले जा रहा है। भला आप उसका उपकार क्यों भूलने लगे। आयुर्वेद चाहे रसातल को चला जाय इससे आपको क्या प्रयोजन। देश में ही आयुर्वेद पर क्या विपत्ति आ रही है, यह आपको दिखाई नहीं देता। आयुर्वेद के महारथी रो रोकर अपने हृदय की व्यथा सामने रख रहे हैं वह आपको और शिवशर्मा को कुछ दिखाई नहीं देते। वह आयुर्वेद पर आई विपत्ति क्या है? इसे श्री पंडित जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल की वाणी से सुनिये—'अरे देश वासियो! अपने उस काले कलंक पूर्ण मुख की कल्पना करो जो आयुर्वेद के नष्ट होने पर ऐतिहासिकों के द्वारा तुम्हें थूड़ थूड़ कहकर धिक्कारेगा। तुम चाहे जितनी भ्रम पूर्ण भावना में अभी अपने को भूले हुए हो, किन्तु इतिहास तुम्हें क्षमा नहीं करेगा। सम्भल जाओ! अपना स्वरूप संभालो अपना कर्तव्य सोचो, विपरीत बहकावे में आकर सरकार जो अनर्थ के पथ पर उतारू है उसे सचेत करो, उसे पाप कर्म से रोको। वैद्यो अपने स्वरूप को समझो, आलस्य प्रमाद तथा आत्म-विस्मृति को छोड़कर आयुर्वेद की रक्षा पर तत्पर हो जाओ। भिषग्भारती का 'नाशने पन्ये आयुर्वेद' शीर्षक हृदय को चीर रहा है उसे पढ़ते समय कलेजा टुकड़े २ हो रहा है। यह नोट लिखते समय अश्रुधारा रुक नहीं रही है।

दिन पर दिन मेडिकल कालेज खुलते जा रहे हैं, प्रत्येक प्रान्त में एक नहीं अनेक मेडिकल कालेज हो गये हैं। तो भी अभी नये २ मेडिकल कालेज स्थापित करने की बातें चल रही हैं। इसे देखते हुए हम आगे आयुर्वेद के जीवित रहने की आशा छोड़ चुके हैं। आयुर्वेद को मारने वाले कायदे के अनुरूप प्रयास गनितान बन रहे हैं हम सबके मुंह से यही सूत्र सुन रहे हैं कि आयुर्वेद में रिसर्च करो, रिसर्च करो, वैद्यों और आयुर्वेदिक कालेजों को टुकड़ा देकर काम चल जायगा। हमें तो ऐसा लगता है कि आयुर्वेदिक कालेजों में ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी कि विद्यार्थियों का आना ही बन्द हो जायगा। आयुर्वेद में जब शुद्ध आयुर्वेद की गर्जना हुई थी तभी हमने भविष्य वाणी की थी कि यह गर्जनाएं आयुर्वेद के विनाश के

[शेष पृष्ठ ५५ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रास्ना विवेचन

कहने को हम अपने को चाहे कितना ही योग्य समझें वस्तुत: वैद्यों में विचार शक्ति का बहुत अभाव हो गया है। नव्य अनुसन्धान करना तो बहुत दूर की बात है हम अपने शास्त्रों में आये संदिग्ध द्रव्यों तक का ही निर्णय करने में समर्थ नहीं होते। सैंकड़ों औषधियां चरक, सुश्रुत काल में व्यवहृत होती थीं उनका परम्परा प्राप्त ज्ञान जब जाता रहा तो वह कौन सी वनस्पति थी जिसे हमारे आचार्य प्रयोग में लाते थे उसे अब तक जानने में हम समर्थ नहीं हो सके। उनमें से आप रास्ना को ही ले लीजिये। चरक ने रास्ना के प्रयोगों में निम्न नाम दिये हैं—कोविदार, नाकुली, बुका, मुक्ता, श्रेयसी, सुवही। सुश्रुत ने निम्न नाम दिये :—गन्धमूला, सुगन्धि रास्ना, गन्धनाकुली, सुरभि,सुरसा, सुवहा। वाग्भट ने निम्न पर्याय दिये हैं–उन्दुरु, युक्ता, रस्या, युक्तरसा, सर्पगन्धा, नाकुली।

चरक के दिये पर्याय नामों में से ऐसा कोई भी नाम नहीं है जिससे यह संकेत मिलता हो कि रास्ना कोई सुगन्ध पूर्ण मूल वनस्पति थी। सुश्रुत जी के दिये नामों से ज्ञात होता है कि उनकी रास्ना कोई सुगन्ध पूर्ण मूल वाली वनस्पति थी। वाग्भट की रास्ना भी चरक की ही रास्ना ज्ञात होती है।। किन्तु आगे चल कर निघंटुकारों ने दोनों को एक में मिला दिया है।—"रास्ना तु त्रिविधा प्रोक्ता मूल पत्र तृणैस्तथा। ज्ञेयो मूल दलौ श्रेष्ठौ तृण रास्ना च मध्यमा।" और इन दोनों के नाम भी एक में मिला दिये हैं। राज निघंटुकार कहता है—"रास्ना वृक्षादनी दारु।" अर्थात् परोपजीवी कोई पौधा है। वैद्यक शब्द सिन्धुकार भी कहता है "स्वनाम ख्यातातरुजोषधौ केदार देशे प्रसिद्धे।" उक्त प्रमाणों से यह पता लगता है कि चरक की रास्ना पत्र रास्ना थी और सुश्रुत की रास्ना मूल रास्ना थी। किन्तु यह दोनों हिमालय प्रान्त की वनस्पतियाँ थीं। इनमें से चरक की रास्ना तो रसना, रसा नामों को देख कर श्री हरि प्रपन्न जी का कहना था कि उसके पत्ते जिह्वा के के आकार के होने चाहिये। हम जिस वनस्पति को आज ३० वर्षों से रास्ना के नाम से व्यवहृत करते चले आये हैं वह पत्र रासना है और उसके पत्रों की रचना बिलकुल जिह्वा के आकार की है पत्र भी दलदार बड़े मोटे जिह्वा जैसे इतने रस पूर्ण होते हैं जो कई कई महीने में जाकर सूखते हैं। यह बलूत, आड़ू, सेव, नासपाती आदि फलों के वृक्षों पर पलने वाला वांदा है यह बंदाक वर्ग का परोपजीवी पौधा है जिसका लेटिन नाम विस्कम आल्बम है अंग्रेजी में इसको मिस्टलेटो कहते हैं। सेव की एक डाला पर जैसा यह लगा था उसका एक चित्र हम यहां पर दे रहे हैं पाठक इसकी आकृति से जिह्वा की तुलना करें।

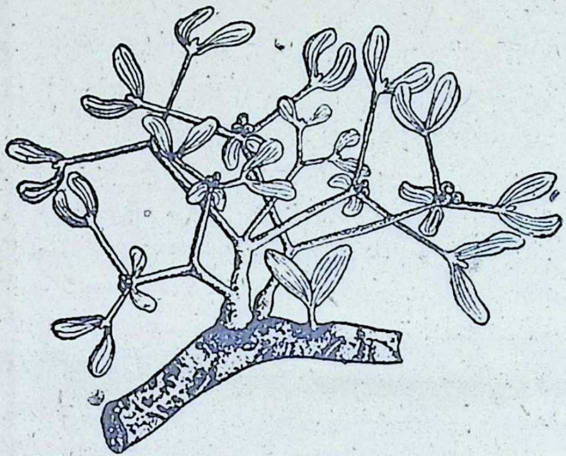

इस वनस्पति का डाक्टर वामन गणेश देसाई ने अपने औषधि संग्रह में ६४८ पृष्ठ पर और हकीम दलजीतसिंह जी ने यूनानी द्रव्य गुण विज्ञान के उत्तरार्ध में पृष्ठ १२८ पर इन दोनों लेखकों ने किसमिस कावली नाम से वर्णन दिया है। यह रास्ना ईरान काबुल से लेकर नैपाल तक के समस्त हिमालय में जहाँ भी बलूत, आड़ू, सेव, खुबानी, अलूचा; अखरोट आदि के वृक्ष होते हैं उन्हीं पर बन्दाक लगा करता है। पहाड़ी लोग इसका काढ़ा वात व्याधि के रोगों में प्राय: देते हैं। किन्तु इन सारे प्रान्तों में उनके अपने प्रान्तीय नामों से ही वे लोग इसे जानते हैं, रास्ना के नाम से नहीं जानते। माघ फाल्गुन के महीने में इसमें बहुत सुन्दर मोती जैसे चमकीले फलों के गुच्छे लगा करते हैं। जिन्हें बड़े दिनों में अंग्रेजों के जमाने में उन्हें डाली के तौर पर लोग भेंट देते थे। उसे यदि गुलदस्ते में रख दिया जाय तो वह महीनों उसी तरह बने रहते थे। इनके फलों का उपयोग श्री यादव जी महाराज अंग्रेजी की अर्गट औषधि के स्थान पर किया करते थे। जब तक वह जीवित रहे उन्हें मैं कई बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके फल संग्रह करके देता रहा। पत्र रास्ना में इसी को ३० वर्ष से मानता व बेंचता चला आ रहा हूँ। हमारी यही निर्णीत शास्त्रीय रास्ना है। इसका एक प्रमाण यह बहुत बड़ा हमारे सामने है कि पंसारियों को जब असली नहीं मिलती तो बिलकुल उससे मिलती हुई चट चीज नहीं मिलती तो बिलकुल उससे मिलती हुई चट कोई दूसरी वनस्पति दे दिया करते हैं। इस समय जो रायसन के पत्ते बाजार में मिलते हैं वह बिल्कुल ही रास्ना पत्र से मिलते हैं। यह रायसन सारे भारत में राजपूताने में आम होती है। मालूम कुछ ऐसा देता है जब असली रास्ना बाजार में आने बन्द हो गये तो दुकानदारों ने इस नकली को प्रचलित कर दिया। यही इस समय ६० प्रतिशत बाजार में मिल रही है और इसी का उपयोग वैद्य समाज बराबर कर रहा है।

सुश्रुत की मूल रास्ना क्या वस्तु है? जिसे गंधनाकुली कहा गया है, यह कौन सी वनस्पति है? इसके सम्बन्ध में अभी तक कोई निश्चय नहीं हुआ कि यह कौन सी वनस्पति थी। कुछ लोग आम के वृक्ष पर लगे बन्दाक को भी रास्ना के स्थान पर उपयोग में लाते हैं।

[शेष पृष्ठ ५३ का]

लिए हैं। हमने कहा था कि समाज में बुद्धि भेद उत्पन्न करने के समान दूसरा कोई पाप नहीं है। इन सबों के प्रताप से आयुर्वेद का मामला बिलकुल मर रहा है। वैद्यों की इस फूट का सरकार ने ठीक लाभ उठाया है, डाक्टरों ने ठीक लाभ उठाया है। जिन डाक्टरों से झगड़ा था वे चक्रबद्ध व्याज के साथ आयुर्वेद के सामने आ रहे हैं। सभी डाक्टर शुद्ध आयुर्वेद की तरफदारी कर रहे हैं। जो मिश्र शिक्षण की हिमायत करते थे वे अब शुद्ध आयुर्वेद का पक्ष करने लगे हैं। जैसा कि हमने सुना है केन्द्र और प्रान्त की सरकारें भी शुद्ध आयुर्वेद की बातें करती हैं। आयुर्वेद का झन्डा लेकर घसीटने वाले अगुओं की वही दशा हो रही है जो व्यूह रचना पसन्द न करने वाले सैनिकों की होती है। अभी भी जिन्हें नहीं समझ, नहीं दिखाई देता वे यही कहेंगे आयुर्वेद का कुछ नहीं बिगड़ा, ऐसों को खुद भगवान भी नहीं समझा सकता। हमारा तो यह साफ साफ अनुमान है कि आयुर्वेद दस वर्षों में खतम हो जायगा। इसके नाश के लिए नियमानुसार प्रयत्न गतिमान हो रहे हैं। कालेज खाली हो जाएंगे, सब चैतन्य विद्यार्थी मेडिकल कालेजों में चले जायेंगे। शुद्ध आयुर्वेद पढ़ने वाले पढ़ेंगे और ५० रुपये की नौकरी करके खायेंगे। आयुर्वेद का अस्तित्व आयुर्वेद का बिगुल फूंकने वालों के हाथों समाप्त हो जायगा। यदि इसे तिलांजलि देने के समय तक हम जीवेंगे तो हृदय खोल कर लिखेंगे।

आयुर्वेद महाविद्यालय के छात्रों को वर्ण शंकर कह कर बिचकाया गया था। उन्हें 'धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का' कहकर सम्मानित किया गया। आयुर्वेद प्रवीणों को जीं. एफ. ए. एम. के साथ रखकर शुद्ध आयुर्वेद वालों ने डंका बजाया। प्रवेश योग्यता कम करके पैर में कुल्हाड़ी मारी गई। जो वर्ग अपने शिक्षण का क्रम घटा कर प्रसन्न हो और दूसरों को चिढ़ा कर अपना वर्चस्व जमावे उस वर्ग की हीन मनोदशा के लिए दो आंसू गिराने के सिवाय दूसरा क्या किया जा सकता है। जिन स्नातकों का अभिनन्दन किया जाना चाहिए था उनकी अवहेलना की गई। जहां पूज्यों की पूजा नहीं होती, वहाँ पूज्य की पूजा का व्यतिक्रम होता है। आयुर्वेद में यही कुछ हुआ। विद्यार्थियों को लड़ाया गया, विद्या का ढंग निकृष्ट किया गया, सब राजनीति में मस्त रहे। यहाँ तो वही हो रहा है 'दर्द हो पेट में दवा सिर पे लगाई जाती है।' बहुत कुछ बिगाड़ा गया अब नया अभ्यास क्रम गढ़ने के लिए महारथी बैठे हैं जो समझते हैं हमारी रही सही आबरू बच जायगी वे हमें तो मूर्खों के स्वर्ग में रहने वाले समझ पड़ते हैं। घड़ी के कांटे को ५० वर्ष पीछे रखकर अपनी करतूत का फल देखने की प्रतीक्षा करते हैं।

जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, सुधानिधि, दिस. १९५९ का अंक

यह एक आयुर्वेद महारथी का करुण क्रन्दन हमने आपके सामने रखा है, इसी तरह आयुर्वेद के परम निष्णात वनस्पति शास्त्र के विशेषज्ञ श्री बापालाल जी ने भी भिषग्भारती में इससे पूर्व उक्त स्थिति पर प्रकाश डाला था। अन्य आयुर्वेद के पत्र भी आयुर्वेद विनाश की भविष्य वाणी करते आ रहे हैं। किन्तु शिवशर्मा और पं० अनन्त त्रिपाठी से इतना नहीं बना कि इस विनाश लीला से आयुर्वेद को बचाने का कोई उपक्रम करते। इन्हें दिखाई ही नहीं देता कि आयुर्वेद की समाप्ति का जो आयोजन सरकार कर रही है वह ठीक है इसीलिए तो शिवशर्मा उस सरकार के विरुद्ध कैसे हो जिसने उसे लंका भेजकर उसकी जेबें पुर कीं, और जिनकी बदौलत वह ऐशो आराम की जिन्दगी बसर कर रहा है। पं० अनन्त त्रिपाठी और शिवशर्मा आयुर्वेद के मित्र नहीं ये तो इसे समाप्त करना चाहते हैं इसलिये इससे चिपटे हुए हैं। इसकी जान के साथ ही महामण्डल को छोड़ने वाले हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मकरध्वज पर विश्लेषणात्मक प्रयोग

रसवाद के प्राचीन ग्रन्थों में मकरध्वज नाम से तो कोई ऐसा योग या रस नहीं मिलता जो कूपीपक्व बनता हो। किन्तु इस समय मकरध्वज, सिद्धमकरध्वज आदि नाम से अनेकों फार्मेसियां जिसे बेचती हैं उसका शास्त्रीय नाम चन्द्रोदय है जिसका ग्रन्थकारों ने उल्लेख किया है, उसे ही फार्मेसियां मकरध्वज, सिद्ध मकरध्वज आदि के नाम से बेचती हैं। यह योग निम्न है :—

एक भाग सुवर्ण, ८ भाग पारा, १६ भाग गंधक। सुवर्ण को शुद्ध कर लेते है। पारे का भी शोधन विधान वास्तव में महत्व का विधान है। पारद के विशेष विधियों से आठ संस्कार करते हैं :—१. स्वेदन, २. मर्दन, ३. मूर्छन, ४. उत्थापन, ५. तापन, ६. बोधन, ७. नियमन, ८. दीपन। इन आठ संस्कारों को बहुत कम वैद्य करते हैं। किन्तु यह आठ संस्कार तो पारद के अवश्य होने चाहिये। गंधक भी इसी तरह शास्त्र विधि से शुद्ध कर लेना चाहिये, फिर इनमें से पहले पारद और सुवर्ण को जब एकत्र करते हैं, तो पारा शुद्ध होने के कारण सोने को आसानी से अपने में तल्लीन कर लेता हैं और पारा सोने का मिश्रण (अमलगम) बन जाता है।

बहुत से रस शास्त्रियों का कथन है कि अष्ट संस्कार पूर्ण होने पर पारद बुभुक्षित हो जाता है अर्थात् पारद सुवर्ण को भक्षण कर लेता है। भक्षण का कई अर्थ यह लगाते हैं कि फिर वह सुवर्ण पारे के साथ ही रहता है, अग्नि पर जब पारा उड़ता है तो उसके साथ सुवर्ण भी उड़ कर ऊपर लगता है। कृष्ण गोपाल जी एक रसायनी अभी १० वर्ष पूर्व थे, कहते हैं उन्होंने ऐसा पारा तैयार कर लिया था जो सुवर्ण को साथ लेकर उडता था। उन्होंने यह अपना करतब कई वैद्यों को दिखाया भी था। किन्तु उनका बनाया हुआ चन्द्रोदय किसी आधुनिक रसायन शास्त्री के पास विश्लेषणार्थ गया होता और वहां उनके विश्लेषण में स्वर्ण विद्यमान होता तो उसे सही माना जाता। वैद्यों के पास कोई ऐसा साधन नहीं जिससे वह यह जान सकें कि पारद सोने के साथ विद्यमान है और वह अमुक मात्रा में है। इसीलिये वैद्य कृष्ण गोपाल जी के उस पारद को जांच नहीं सके थे। चूंकि इस समय मकरध्वज की ख्याति बहुत फैली हुई है इसीलिए आधुनिक रसायन शास्त्रियों को यह जानने की उत्कंठा हुई कि यह वास्तव में क्या कोई उत्तम योग है। इसे जानना और समझना चाहिये। इसीलिये हैनवाल्ट, रिन और फ्रेबेल नामक वैज्ञानिकों ने भारत की अनेकों फार्मेसियों से मकरध्वज, चन्द्रोदय, सिद्ध मकरध्वज आदि के बीसों नमूने मंगवाये और अनेकों विधियों से यह जांचने का प्रयत्न करने लगे कि इसमें कौन कौन से तत्वों के अणु विद्यमान हैं।

देखा गया है कि रासायनिक विश्लेषण विधियों में क्ष-रश्मि-किरणीय प्रभाव द्वारा मणिभाणुओं की रचना रूप को देखने समझने की एक विशेष पद्धति ज्ञात की गई है। ज्ञात हुआ है कि यदि किसी मूल तत्व के मेल से जब कोई नया यौगिक निर्मित हो कर मणिभ रूप धारण करता है तो उसके रवे की आकृति विशिष्ट रूप की होती है और उसमें यदि कोई तीसरा तत्व और आकर मिल जाय तो उस दशा में उसके मणिभ रूप की आकृति बदल जाती है। इसके इस रूप का सूक्ष्म ज्ञान क्ष-रश्मि-किरण प्रभाव से लग जाता है। यह विधि क्ष-रश्मि-किरण द्वारा प्रतिबिम्ब (फोटो) लेने की है जिसे एक्सरे-पावडर डेटाफाइल कहते हैं। इस विधि से जांचने पर जिसके रवे चाहे कितने ही मूल तत्वों के योग से मिल कर बने हों उसमें कौन कौन से तत्व विद्यमान हैं? इसको ठीक ठीक पहचाना जा सकता है।

मान लो पारा गंधक के साथ हमने जो सोना डाल कर चन्द्रोदय तैयार किया यदि इस पारद गंधक के साथ उसकी कण रचना में सोना एक लाखवें भाग के बराबर भी विद्यमान हो तो यह क्ष-रश्मि-किरण प्रभाव से ज्ञात हो जाता है।

देखा गया है जैसे ही किसी यौगिक का नमूना क्ष-किरण के प्रभाव में लाया जाता है, उसके रवे अपनी विशेषता को प्रतिबिम्ब में बना देते हैं। जो भी तत्व अपनी विशेषता रखते हैं वह रवे में भी प्रदर्शित करते हैं। उससे मूल तत्वों की उसमें उपस्थिति का ज्ञान हो जाता है। यह मात्रा चाहे कितनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न हो इसका पता इस विधि से अवश्य लग जाता है।

१९३६ में क्लार्क रेनाल्ड्स और उनके सहयोगियों ने उक्त क्ष-रश्मि-किरण विधि में कुछ और सुधार किये और उसके साथ रश्मि मात्रा-प्रग्राही (गाइगर कौंटर) को भी उपयोजित कर रवों के रूप और प्रतिफलन शक्ति द्वारा तत्वों की स्थिति को समझने की और गम्भीर अध्ययन की विधि का आविष्कार किया। इस तरह रवा विश्लेषण की नव्य व विश्वस्त विधि का जब ज्ञान हुआ यह विधि छिपाई नहीं गई। इसका साहित्य प्रयोग विधि सब ही संसार के प्रत्येक प्रयोग कर्ता को ज्ञात हो गई। तब हिन्दू विश्व विद्यालय में भौतिक विभाग के प्रोफेसर श्री शक्ति प्रसाद दे ने १३ जुलाई १९५९ को शक्ति औषधालय ढाका व वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन और आयुर्वेद अनुसन्धान विभाग हिन्दू विश्व विद्यालय आदि से मकरध्वज, चन्द्रोदय, सिद्ध-मरध्वज आदि के कई नमूने तथा हिन्दू विश्व विद्यालय के भौतिक विभाग से खनिज हिंगुल का व रस सिन्दूर का नमूना लेकर फिलिप्स कम्पनी के एक्सरे जिनेटर पर उक्त द्रव्यों के सूक्ष्माति सूक्ष्म रवे बना कर फिलिप्स पावडर कैमरा से स्पर्शज्या की स्थिति में ३५ किलोवाट और १५ मिला एम्पेयर पर ४-६ घंटे तक एक्सपोजर देकर प्रतिबिम्ब लिये गये और उन प्रतिबिम्बों की जांच हिलगर एक्सरे कम्पेयरेटर पर की गई जो दशमलव के तीसरे स्थान तक सही माप ले सकता है।

इस प्रकार डी मानों का मूल्यांकन किया गया और प्रतिबिम्ब पर आई रेखाओं का वर्गी करण किया गया। रश्मि रेखाओं की पहचान के लिये अमेरिकन सोसायटी द्वारा तैयार की गई सारणियों का उसमें उपयोग किया गया। उनमें कई एक कार्ड हैं। जिनमें विभिन्न वस्तुओं पर लिये गये विभिन्नता के परिणाम दिये हुए हैं। उसके आधार पर किसी भी अज्ञात वस्तु के नमूनों की शृंखला बद्ध तुलना द्वारा डी के विस्तार और रेखाओं की तीव्रता के आधार पर उस वस्तु की ठीक ठीक पहचान हो जाती है कि इसमें अमुक तत्व विद्यमान हैं।

जितने भी प्रकार के मकरध्वज चन्द्रोदय आदि इस परीक्षा में रख कर देखे गये किसी में भी सुवर्ण की रेखा के चिन्ह नहीं पाये गये। जैसी रेखाएं खनिज हिंगुल ने दीं जैसी रेखाएं रससिन्दूर ने दीं वैसी ही रेखाएं मकरध्वज और चन्द्रोदय ने दी। सबों का रासायनिक सूत्र पाव(HgS) ही निकला। किसी में यत्किंचित भी स्वर्ण की रेखा नहीं देखी गई। चार्ट के अनुसार रवों का रूप भी सिंगरफ के रवे से ही सबों के रवे के रूप मिले अर्थात् सभी रवे षटकोणाकृति थे। यदि इनके रवों में लक्षांश भी स्वर्ण का भाग उड़कर उन में विद्यमान होता तो इसका क्ष-रश्मि-किरण परीक्षा में अवश्य अस्तित्व मिलता।

दूसरे हम सब जब भी चन्द्रोदय मकरध्वज आदि बनाते हैं कूपी में जो स्वर्ण रह जाता है जब उसे निकाल कर तोलते हैं तो उसकी मात्रा पूरी की पूरी ही मिलती है। यदि स्वर्ण कुछ भी उड़े तो नीचे रहे हुए भाग में कुछ न कुछ कमी आनी ही चाहिये। तब चन्द्रोदय के गुणों में जो विशेषता आती है वह कैसे आती है? यह एक विचारणीय समस्या है।

हमारा प्रायोगिक अनुभव

हम आज ४० वर्ष से औषध निर्माण के काम में लगे हैं, वर्ष में दो तीन बार चन्द्रोदय, मकरध्वज और १५-२० बार रस सिन्दूर बनाते रहते हैं। यह देखा है कि एक बार रस सिन्दूर बना कर उसे फिर दूसरी बार दो तीन माशे बलि (गंधक) और देकर उसे फिर उड़ा लिया जाय तो इसी तरह तीन चार बार पुनः पुनः उड़ाते रहें तो वह रस सिन्दूर अधिक तीक्ष्ण व अधिक प्रभावशाली बन जाता है। यह तीव्र उत्तेजक होता है और कामोद्दीपक बनता है। हम स्वर्ण भस्म बनाते समय कूपी में ही छः सात बार स्वर्ण पारद गंधक मिलाकर कांचनार कली के रस में घीट घोट कर प्रति बार जब पाक करते हैं ऊपर लगे चन्द्रोदय और नीचे बैठे सुवर्ण को जो ७-८ कूपी में पाक करने पर वह सुवर्ण भी भस्म बन जाता है। इस तरह एक साथ दोनों को बना लेते हैं।

हमारे विचार में तो एक ही महत्व की चीज रस सिन्दूर है यदि उसे कई बार पुनः पुनः पाक करलें तो उसका गुण प्रभाव मकरध्वज के जैसा ही हो जाता है, कोई अन्तर नहीं मिलता। जिसको जांचना हो इसकी सत्यता को परख सकता है।

स्वर्ण पारे के साथ क्यों नहीं उड़ता

इतना तो आप जानते ही होंगे कि पारा, गंधक, स्वर्ण, चांदी, तांबा, कली आदि सब एक ही उत्ताप पर

[शेष पृष्ठ ५८ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंदौर के राजकीय आयुर्वेद विद्यालय में हड़ताल

रायपुर आयुर्वेद विद्यालय में आज तीन मास से ऊपर हो गये हड़ताल चली आ रही है। इस बीच में ग्वालियर आयुर्वेदिक कालेज में भी आज दो महीने से हड़ताल चल रही है। अभी सूचना मिली है कि इन्दौर में भी राजकीय आयुर्वेदिक कालेज में हड़ताल हो गई है। यह हड़तालें क्यों हो रही हैं? छात्रों की हर जगह मांग है कि आयुर्वेद के स्नातकों को अन्य चिकित्सास्तरीय रूप में रजिस्टर्ड किया जाय (२) आयुर्वेद चिकित्सकों की वेतन वृद्धि की जाय। (३) इन्हें भी कालेजों में अनुसन्धान के लिए सुविधा दी जाय। (४) राज्यों में आयुर्वेद चिकित्सा के लिए संचालक नियुक्त किये जांय। मध्य प्रदेश में आयुर्वेद मंडल शिक्षा निकाय की स्थापना की भी मांग की जा रही है। जब तक उक्त मांगें स्वीकृत नहीं होतीं तब तक छात्रों ने हड़ताल करने का निश्चय किया है। मालूम हुआ है कि इन्हीं समस्त बातों पर विचार करने के लिये अखिल भारतीय ए०एम०बी०एस० आयुर्वेद छात्र परिषद के महा मन्त्री श्री सिद्ध गोपाल कौशिक ने केन्द्रीय समिति की एक महत्वपूर्ण बैठक हरिद्वार में बुलाई हैं, जिसकी अध्यक्षता श्री दयासिंह जी ने की थी। इस अधिवेशन में प्राय: भारत के समस्त कालेजों ने भाग लिया। इस अधिवेशन में उन्होंने कई प्रस्ताव पास किये हैं और अपनी मांगें सरकार के सामने रखने का फैसला किया है। उनमें से मुख्य मांगें निम्न हैं—आयुर्वेद के सभी कालेजों को निजी विश्व विद्यालयों के आधीन किया जाय। तथा स्नातकों के वेतन क्रम तथा अधिकार पी०एम०एस० स्टैण्डर्ड के समान किया जाय और उन्हें भारत के सभी प्रान्तों में प्रैक्टिस एवं सेवा करने का अधिकार हो। और आयुर्वेद के लिए स्वतंत्र संचालक की नियुक्ति अलग से की जाय। अन्त में यह भी निश्चय किया गया कि समस्त समस्याओं का शीघ्र निर्णय न होने पर भारत के सभी विद्यार्थी आगामी परीक्षाओं का पूर्ण बहिष्कार करें।

यह छात्र परिषद जो कुछ करना चाहती है क्या यह उचित है?

मालूम होता है कि इनके नेताओं ने अपने शिक्षा स्तर और प्राप्त ज्ञान पर कभी विचार नहीं किया। इस समय देश में स्वास्थ्य सेवा के लिये सरकार को काफी स्वास्थ्य सेवकों की आवश्यकता है। किन्तु हमारे आयुर्वेदज्ञाताओं को विद्यमान समय के स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का ही पूरा ज्ञान नहीं है, न वह इस बात को ही जानते हैं कि विद्यमान स्वास्थ्य व्यवस्था को कैसे चलाया जाना चाहिये। इन्हीं त्रुटियों के कारण भारत में हमारी सरकार कहीं भी इस काम पर वैद्यों को नहीं लगा सकी है, न लगाने को तैयार है। जब सरकार किसी सामूहिक सेवा के कार्य में इन्हें उपयुक्त नहीं समझती तो इनके वेतन स्तर को कैसे बढ़ाया जा सकता है? क्या कभी किसी ने इस पर विचार किया है?———

[शेष पृष्ठ ५७ का]

नहीं उड़ते। कोई कम उत्ताप पर उड़ता है कोई अधिक उत्ताप पर। बलि १५५ शतांश के उत्ताप पर द्रव होता है और ४४४·५ शतांश के उत्ताप पर वाष्पीभूत होता है। इसी तरह पारा तो स्वतः द्रव है किन्तु यह ६५७ शतांश के उत्ताप पर वाष्पशील होता है। सोना १०६३ शतांश के उत्ताप पर द्रवी भूत होता है और १५३० शतांश के उत्ताप पर वाष्पशील बनता है। जब इन तीनों को मिला कर कूपी में चढ़ाकर आंच देते हैं तब पारे के वाष्पीभूत होने की मात्रा घट जाती है और गंधक की बढ़ जाती है अर्थात दोनों ही ५०० शतांश के उत्ताप पर उड़ने लग जाते हैं यदि ५५० शतांश तक इसे उत्ताप दे दें तो इस उत्ताप पर रससिन्दूर तीव्रता से उड़ कर ऊपर लगने लग जाता है और जो गंधक का भाग मात्रा से अधिक होता है वह तीव्र ज्वाला देकर जलने लगता है इस तरह से फालतू गंधक जल जाता है और चन्द्रोदय (पारा HgS) कूपी के गले पर आकर लग जाता है। इतने उत्ताप पर तो सोना पिघलता भी नहीं, जब तक सोना न पिघले और द्रवांक से ऊपर क्वथनांक तक न जाय, तब तक सोना उड़ ही नहीं सकता। सोना तो तभी उड़ेगा जब उत्ताप की मात्रा १५३० शतांश के उपर होगी। मकरध्वज बनाने में कभी भी ६०० शतांश से ऊपर उत्ताप नहीं बढ़ता। तब सोने के उड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता। हाँ जो व्यक्ति कहते हैं कि पारद बुभुक्षित होकर सोने को खा लेता है तो वह अपने साथ सोने को ले उड़ता है। पहले किसी को ऐसा पारा बना कर दिखाना चाहिये। फिर पीछे सोने को उस के साथ उड़ा कर दिखाना चाहिये। तभी इस युग में इस पर विश्वास किया जा सकता है। "मुखमस्ति तुवक्तव्यं दश हस्ताहरीतकीं" कहने से दश हाथ की हरड़ का होना कौन मान लेगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषमज्वर (मलेरिया) उन्मूलन

यह ज्वर भारत में ही नहीं फैला हुआ है प्रत्युत समस्त संसार में फैला हुआ है। यह ज्वर मनुष्य का भयंकर शत्रु है। इससे ग्रसित मनुष्य कई कई महीने चारपाई पर पड़े बड़ा कष्ट भोगते रहते हैं। अनेकों बार यह भी देखा गया है कि यह महामारी के रूप में फैलता है और परिवार के परिवार सभी चारपाई पर पड़े कराहते नजर आते है। अमृतसर में १९१८ में इतने जोर का विषमज्वर फैला था कि उस समय लोगों में यह किम्वदन्ती फैल गई थी कि जो बचा वह मनुष्य नहीं देवता है। सांख्यिकियों ने हिसाब निकाल कर १९४६ में मालूम किया था, कि उस वर्ष संसार में विषम ज्वर से ३० लाख व्यक्ति मरे थे। हमारे देश में जहां जंगल अधिक होते थे, जगह जगह पानी रुक कर गढ़ों में भरा सड़ा करता है। ऐसे अनूपदेशों में इसका प्रकोप अधिक देखा जाता था। इससे यह धारणा बंध गई थी कि पत्तों आदि के सड़ने से वायु दूषित हो जाती है, तभी मलेरिया फैलता है। प्राचीन काल में रोमन लोग भी अपने देश के दलदलों को सुखाने का इसीलिये प्रयत्न करते थे। उनका विश्वास था कि इन दलदलों से उठी दूषित वायु ही विषमज्वर का कारण हैं। हम सब आज तक इस बात पर विश्वास बनाए हुए हैं कि विषम ज्वर का कारण दोषों का प्रकोप है। १८९८ इ० में आकर रीस नामक विद्वान् ने पता लगाया कि विषम ज्वर तो एक प्रकार के मच्छरों के काटने से होता है जिनका नाम एनाफिलीस है। रीस की यह खोज महत्व की थी, किन्तु अनेक देशों के चिकित्सकों ने उसके इस कथन पर विश्वास नहीं किया। बाद में अनेकों देशों की सरकारों ने इसकी जांच की और मच्छरों के काटने से मलेरिया फैलता है इसको प्रत्यक्ष में देखा, तब से मच्छरों के नाश करने की योजना अनेकों सरकारों की ओर से बनने लगी। देखा गया है कि जहां जिन गढ़ों में बरसाती पानी भरा रह जाता है वहां यह मच्छर अपने अंडे दिया करते हैं। यदि इन रुके हुए जलाशयों को मच्छरों को अंडे देने से मुक्त रखा जाय या इन गढ़ों में मिट्टी भर दी जाय तो विषमज्वर की रोक थाम हो सकती है। दूसरे महायुद्ध के समय तक इतना प्रबन्ध किया जा सका था कि ऐसे रुके हुए पानी के गढ़ों में मिट्टी का तेल डाल कर या पेरीसग्रीन छिड़क कर मच्छरों की उत्पत्ति रोकने का प्रयत्न किया गया था। कुछ देशों में गम्बूसिया मछली का चूर्ण भी इनके कीटाणुओं को नष्ट करने के लिये उपयोग में लाया गया था। किन्तु १८७४ ई० में एक ऐसी दवा का आविष्कार हुआ जो कीट मारक थी, किन्तु उस समय उसके इस गुण का ज्ञान आविष्कारक को नहीं हुआ था। १८८२ ई० में इस बात का पता लगा कि यह दवा अच्छी कीट नाशक है। इसके आविष्कारक थे स्विटजरलैंड के नोवल पुरस्कार विजेता पाल मूलर। तत्पश्चात वहां की एक कम्पनी ने यह शोध की थी कि यह कीटाणु नाशक उत्तम दवा है। इसका रासायनिक नाम डाईक्लोरो-डाईफिनाइल-ट्राईक्लोरोइथेन था जिसका संक्षिप्त नाम दिया गया डी. डी. टी.। प्रयोगों से पता लगा कि यह कीटों के नाड़ी संस्थान पर आक्रमण करता है, इसके स्पर्शमात्र से मक्खियों, मच्छरों में एक प्रकार की बेहोशी आने लगती है जिसके बाद उन कीटों को लकवा हो जाता है। मक्खियां, दीमक, मच्छर प्राय: इस कष्ट से आधे घंटे में मर जाते हैं। खटमल घंटे डेढ़ घंटे में मरता है। किन्तु मनुष्य को इससे कोई हानि नहीं पहुँचती इसे खाने की वस्तुओं पर शाक सब्जियों पर नहीं छिड़कना चाहिए। ऊनी कपड़ों को, मृगचर्म आदि को, रेशमी कपड़ों को ५ प्रतिशत डी. डी. टी. चूर्ण को ५ प्रतिशत नेप्था के घोल के साथ कपड़ों पर छिड़कने से उन्हें कीड़ों से बचाया जा सकता है। कीटों के अंडों पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता, किन्तु जब अंडों में से लारवा निकलता है उसे यह तुर्त खतम कर देता है। हमारे मकान में दीमक बहुत है किताबों की अलमारी में प्रति दो वर्ष के बाद हम इसके पावडर को छिड़क देते हैं उसके प्रभाव से अब दीमक से बचाव रहता है। कुत्ते, बिल्लियों को कुत्तामक्खी चिचड़ियां या कीलनी आदि लग जाते हैं, इसका ५ प्रतिशत का पावडर उन कुत्तों बिल्लियों पर छिडकने से उनके सब कीट मर जाते हैं। इसी तरह देखा गया कि पशुओं को लगने वाले किलनियों आदि पर छिड़क दिया जाय तो वे सब मर जाते हैं। कपड़ों में जूं चीलड़ आदि पड़ गये हों या सिर में जूं पड़ रही हों तो कपड़ों पर या सिर में ५ प्रतिशत डी. डी. टी. छिड़कने से वे सब मर जाते हैं। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह जब इसका कीट नाशक गुण देखा गया तो मच्छरों को मारने की योजना बनाई गई। १९४८ में जब विश्व स्वास्थ्य संगठन का प्रादुर्भाव हुआ उसने सब से पूर्व विषम ज्वर से विश्व को मुक्त करने के लिये अन्य कार्य क्रमों में इसे प्राथमिकता दी और उसने ही समस्त विश्व के राष्ट्रों से प्रार्थना की कि अपने अपने देश में विषम ज्वर उन्मूलन के लिए मच्छरों को मारने के लिए डी. डी. टी. का उपयोग करें। भारत को भी विदेशी सहायता और बाल सहायक निधि से दान स्वरूप बहुत सा दान और सामान तथा डी. डी. टी. प्राप्त हुआ। उसके बाद तो इन्हीं की सहायता से भारत में डी. डी. टी. के निर्माणार्थ बहुत बड़ा कारखाना दिल्ली में ही खुल गया। १९५५ में विश्व स्वास्थ्य संगठन की बैठक जो मैक्सिको में हुई थी, प्रयोग कर्त्ताओं ने वहां बताया कि कुछ दिन मच्छर यदि हल्के डी.डी.टी. के स्पर्श में रखे जायें तो उनमें इसके प्रति प्रतिरोध शक्ति उत्पन्न कर लेते है। इसीलिये उन बैठक में निश्चय किया गया कि मच्छरों में प्रतिरोध शक्ति उत्पन्न करने से पूर्व ही उन्हें नष्ट कर डालने का आयोजन करना चाहिए। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये एक विश्व निधि कोष स्थापित किया गया। विश्व स्वास्थ्य संगठन को यह भी मालूम हुआ कि किसी मनुष्य के भीतर रक्त में विषम-ज्वर के जीवाणु विद्यमान हों तो वह बिना किसी उपचार के ३ वर्ष में स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं। यदि किसी मनुष्य के रक्त में विषम ज्वर के जीवाणु विद्यमान हों और उस व्यक्ति को तीन वर्ष तक मच्छर न काटें तो भी विषम ज्वर को फैलने से रोका जा सकता है। किन्तु यह बात सम्भव नहीं, कि तीन वर्ष तक विषमज्वर वाहक के पास मच्छर न पहुँचें। फिर भी यही उपाय उत्तम जंचा कि मच्छरों का संहार किया जाय।

इसका अभियान जो अमेरिका, पोटोरिका, चिली, साइप्रेस, कोर्सिका और इटली में किया गया, उसके परिणाम स्वरूप ५-७ वर्ष के भीतर ही इन देशों से विषम ज्वर का प्रायः समूल नाश हो गया है। वहां आज चार पांच वर्ष से मलेरिया का कोई प्रकोप नहीं दिखाई दिया। दक्षिण योरुप में पहले लगभग ४० लाख व्यक्ति प्रतिवर्ष पीड़ित हुआ करते थे, डी. डी. टी के अभियान से वहां अब विषम ज्वर से पीड़ित होने वालों की संख्या कुल १० हजार के आस पास रह गई है। भारत में विषम ज्वर निरोध का यह काम १९४९ में आरम्भ हुआ था और डी. डी. टी. छिड़कने की शिक्षा का आरम्भ किया गया था। हम देखते हैं कि हमारे देश में यह कार्य कर्ता नेक नियत नहीं हैं, अच्छी तरह से पूरे समय काम नहीं करते, फिर भी जो इसके सम्बन्ध में अब तक काम हुआ है उसके परिणाम अच्छे हैं अनेक शहरों में विषम ज्वर का प्रकोप बहुत घट गया है। यदि गांवों में भी यह अभियान चालू किया जाता तो निश्चय ही जो वहां प्रतिवर्ष वर्षा के बाद यह रोग फैलता दिखाई देता है और किसानों पर इसके कारण भारी विपत्ति आती है, वह इससे बच जाते। यदि किसान इस के आक्रमण से बचे रहें तो तब देश की पैदावार बढ़ाने में उनसे भारी सहायता प्राप्त हो सकती है।

संसार किस तेजी से आगे बढ़ रहा है

गर्भ में लिंग परिवर्तनः—यदि आप दैनिक पत्र नित्य पढ़ते हैं तो आपको ज्ञात होगा कि शाह ईरान की रानी सुरइया से उनके कोई संतान नहीं हुई थी इसीलिये ईरान के बादशाह ने अपनी दूसरी शादी की। यह दूसरी रानी शादी के कुछ महीनों बाद गर्भवती हो गई, तो शाह इस बात के लिये बहुत आतुर हुए कि जो सन्तान हो वह लड़का ही हो लड़की नहीं होनी चाहिये। यहाँ के रूढ़िवादी राजा होते और उनके मन्त्री तो वे यही कहते कि यह बात तो ईश्वराधीन है। लड़का या लड़की का बदलना मनुष्य के हाथ की बात नहीं। बादशाह ईरान ने इसके सम्बन्ध में अपने मन्त्रियों से जब परामर्श किया तो मन्त्रियों ने बतलाया कि जैनेवा में एक डाक्टर हैं रोड़ोल्फ रोशेट जो आज दश वर्ष से गर्भ में विद्यमान बालक के लिंग परिवर्तन पर अनुसन्धान कर रहे हैं और वह लिंग परिवर्तन करने में सफल हो गये हैं।

किसी भी स्त्री के गर्भाधान होने पर ५ महीने तक के गर्भ का लिंग परिवर्तन वह कर देते हैं। उन्होंने एक ऐसा यन्त्र आविष्कार किया है जिसके द्वारा पहले गर्भस्थ शशु कन्या है या बालक इसकी पहले जांच कर लेते हैं और उनका यह यन्त्र सही सही बतला देता है कि गर्भ में कन्या है या बालक। यदि गर्भ में कन्या हो और उसके माता पिता चाहें कि इसका लिंग परिवर्तन हो जाय तो उक्त डाक्टर साहब पांच मास के भीतर के गर्भस्थ शिशु के लिंग परिवर्तन के लिये यौनांगोजों के सूची भरण देना आरम्भ करते हैं। इन यौनांगोजों के कुछ समय तक

[शेष पृष्ठ ६२ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सत्कार व समालोचना

श्वास रोग पर स्नातकोत्तर निबन्ध (थीसिस)

जाम नगर के सरकारी आयुर्वेद विद्यालय में पोष्ट ग्रेजुएट शिक्षण का क्रम चालू है, उसमें स्नातकोत्तर स्नातकों को प्राच्य, प्रतीच्य दोनों विषयों का समन्वित ज्ञान कराने के लिये ही यह स्नातकोत्तर शिक्षा का प्रबन्ध सरकार की ओर से है। यहाँ के स्नातक वास्तविक रूप में शिक्षित माने जाने योग्य हैं। क्योंकि यहां इन्हें प्राच्य, प्रतीच्य की समस्त पद्धतियों के विषय से पूर्णतया परिचित ही नहीं कराया जाता, प्रत्युत उन्हें योग्य बनाने का प्रयत्न होता है और अन्त में उनकी योग्यता को जानने के लिये उनसे निबन्ध लिखवाये जाते हैं जो उनकी योग्यता के निर्णायक होते हैं। यह निबन्ध अभी तक प्रकाशित नहीं किये जाते थे, किन्तु वहां के प्रबन्धकों ने देखा कि इन निबन्धों से वैद्य समाज का ज्ञान बढ़ सकता है इसीलिये उन्होंने इनके प्रकाशन की सरकार से आज्ञा मांगी। सरकार ने प्रकाशन की आज्ञा देदी। इसीसे इसके स्नातकोत्तर निबन्धों में से एक निबन्ध धन्वन्तरि के दिसम्बर अंक में श्वास निबन्ध के नाम से प्रकाशित हुआ है। यह निबन्ध श्री शिव कुमार मिश्र स्नातक द्वारा परीक्षा के रूप में लिखा गया निबन्ध है, जिसे श्री डा० द्वारकानाथ जी ने सुसंस्कृत कर सोने में सुगन्ध डालदी है। ऐसे निबन्ध ही आयुर्वेद को आधुनिक प्रयोग विज्ञान से समन्वित कराने में मुख्य सहायक होंगे। हम ऐसे निबन्धों का हृदय से स्वागत करते हैं। इस निबन्ध में क्या हैं इसका सारांश जो श्री शिव कुमार मिश्र ने दिया है निम्न है :—

(१) विकृति जानने के लिये प्राकृत अवस्था का ज्ञान आवश्यक होता है। अतएव इस निबन्ध में सर्व प्रथम श्वास के रूप में होने वाले प्राकृत क्रिया शरीर का दिग्दर्शन कराया गया है।

(२) अथर्ववेद तथा आयुर्वेद में संक्षिप्त रूप में वर्णित श्वसन क्रिया का विवेचन प्रस्तुत कर आधुनिक विवरण के साथ सामंजस्य उपस्थित करने की चेष्टा की गई है।

(३) श्वास रोग के निदान चिकित्सा के विवेचन से पूर्व आवश्यक सामान्य विवरण प्रस्तुत किया गया है और श्वास किसे कहते हैं तथा आधुनिक दृष्टि कोण से उसके कारणों की विवेचना की गई है।

(४) श्वास रोग आमाशयोत्थ विकार है और पित्त स्थान के साथ इसका महत्व पूर्ण सम्बन्ध है, सैद्धान्तिक तथा क्रियात्मक दोनों प्रकार से उपस्थित कर इसके सम्बन्ध में अनेक प्राच्य प्रतीच्य विचारों को प्रस्तुत करते हुए समन्वय का प्रयत्न किया गया है।

(५) श्वास रोग के निदान का विवेचन करते हुए दूषीविष के साथ असहनीयता का साम्य उपस्थित किया गया है। व्युत्पत्ति, सम्प्राप्ति, प्रकोप, रोगोत्पत्ति तथा दुष्टि कर्तृत्व इन सभी दृष्टि कोणों से असहनीयता तथा दूषी विष की साम्यता की चेष्टा करके भविष्य में कार्य करने वाले कार्यकर्त्ताओं के लिये एक प्रेरणात्मक समस्या उपस्थित करदी है।

(६) तमक श्वास की सम्प्राप्ति के वर्णन में भी आमाशय के रोग का समुद्भव किस प्रकार होता है इसे प्रतिपादित किया गया है।

(७) तमक श्वास के लक्षणों में दोषों तथा उनके आवरणों की सकारणता को सयुक्तियुक्त उपस्थित करने का प्रयत्न किया गया है।

(८) चिकित्सा क्रम तथा स्नेह, स्वेद, वमन, विरेचन एवं धूम्रपान आदि की श्वास रोग में उपयोगिता को आप्तोपदेश तथा प्रत्यक्ष दोनों प्रमाणों से प्रतिपादित किया गया है।

(९) तमक श्वास की संशमन चिकित्सा को दो भागों में विभक्त करके आवश्यक तथा दृश्य फल ओषधियों का ग्रन्थों के आधार पर नाम निर्देश करके आतुरालय में चिकित्सित श्वास रोगियों का निदान चिकित्सात्मक वृत्तान्त उपस्थित किया है और उसके आधार पर परिणाम उपस्थित करने का प्रयत्न किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी हरिशरणानन्द वैज्ञानिक पुरस्कार

स्वामी जी ने विज्ञान परिषद प्रयाग को ३५०० रु. प्रतिवर्ष इस निमित्त देने का प्रबन्ध किया है कि हिन्दी में वैज्ञानिक विषय के उच्च कोटि के ग्रन्थों को पुरस्कृत किया जाया करे। १९५९ का यह पुरस्कार परिषद ने "मृत्तिका उद्योग" नामक ग्रन्थ के लेखक श्री हीरेन्द्र नाथ बोस को दो हजार रुपया नगद के रूप में दिया है।

१९६० से विज्ञान परिषद ने निर्णय किया है कि प्रति वर्ष तीन व्यक्तियों को निम्न नियमों के अनुसार पुरस्कृत किया जाया करे:—

१—तीन पुरस्कार भिन्न भिन्न विषयानुकूल हों।

२—पुरस्कार प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी में दिये जांय।

३—पुरस्कार तीन विषयों पर दिये जांय:—

१—प्रथम पुरस्कार, विशिष्ट साहित्य पर दो हजार रुपये का।

२—द्वितीय पुरस्कार, जनोपयोगी साहित्य पर एक हजार रुपये का।

३—तृतीय पुरस्कार, बालोपयोगी साहित्य पर ५०० रुपये का।

किसी वर्ष यदि निश्चित साहित्य पर अच्छे ग्रन्थ न आ सकें और विशिष्ट साहित्य पर भिन्न भिन्न विषय के दो या तीन ग्रन्थ आ जायें तो उनमें से पुरस्कार समिति प्रथम द्वितीय का निर्णय करके प्रथम और द्वितीय पुरस्कार उनको देने की परिषद से प्रार्थना करेगी। देश की जब राष्ट्र भाषा हिन्दी हो चुकी है अपनी मातृ भाषा में जब तक बालकों को वैज्ञानिक विषयों का शिक्षण नहीं दिया जायगा तब तक जन समाज में वैज्ञानिक जागृति उत्पन्न नहीं हो सकती। इस युग में मनुष्य का विज्ञान शून्य रहना ज्ञान के सत्पथ से बहुत दूर रहना समझा जाता है। चिकित्सा क्षेत्र में भी यदि आयुर्वेदज्ञ विज्ञान से शून्य होंगे वह मूर्ख ही समझे जायेंगे।

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात विज्ञानाद्‌ ध्येव खल्वमानि
भूतानि जायन्ते।
विज्ञान जानेतानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्तभिसंविशन्ति।
तैतरीय उपनिषद॥

ब्रह्म ज्ञानी बनने के लिये भी इस युग में भौतिक विज्ञान, रसायन-विज्ञान आदि विश्व के मूल भूतों को प्रत्यक्ष दिखलाने वाले कारणों को जब तक मनुष्य प्रत्यक्ष नहीं जानता, तब तक वह ईश्वर को नहीं पा सकता। चिकित्सा में सफलता पाने के लिये भी जब तक वैद्य विज्ञान का आश्रय नहीं लेंगे चिकित्सा में कभी सफल नहीं हो सकते। भारतीय सरकार भी वैद्य समाज को तभी मान्यता दे सकती है यदि वैद्य समाज विज्ञान को अपना कर मिथ्या कल्पनाओं को त्याग कर सत्पथ पर आ जायगा, तभी सरकार उनकी पद्धति को मान्यता दे देगी। जब तक हम विज्ञान से विमुख रहेंगे भारत सरकार हमारी इस रूप में विद्यमान पद्धति को कभी स्वीकार नहीं कर सकती। यह निश्चित बात है।

[पृष्ठ ६० का शेष]

विशेष विधि से सूची भरण देते रहने पर गर्भ वृद्धि के साथ ही लिंग परिवर्तन होने लगता है और ९ मास के गर्भ पूर्ण होने तक वह लड़की हो तो वह लड़के में बदल जाता है। इस विधि से अब तक आप ८ प्रयोग लिंग परिवर्तन के सफलता से करके दिखला चुके हैं। इनके उक्त अनुसन्धानों का जिकर जब मन्त्रियों ने शाह ईरान से किया तो उन्होंने बजरिये हवाई जहाज उक्त डाक्टर साहब को बुला भेजा और उन्होंने रानी साहिबा के गर्भस्थ शिशु की जाँच की तो बतलाया कि इसके गर्भ में कन्या है। शाह ने उन्हें लिंग परिवर्तनार्थ इलाज करने के लिये कहा। अभी ८ मार्च को डाक्टर रोडोल्फ राशेट फिर जैनेवा से ईरान पहुँचे हैं और आपने रानी साहिबा की चिकित्सा आरम्भ कर दी है। यदि डाक्टर साहब यहां सफल हो गये तो इन्हें शाह ईरान से मय खर्च फीस तो मिलेगी ही इसके बाद आप उनसे कितना इनाम कराम हासिल कर सकते हैं, इसका कोई क्या अन्दाजा लगा सकता है।

अनुसन्धान इसे कहते हैं। जो एक ही अनुसन्धान उसे मालामाल कर सकता है। वैद्य बिचारे अनुसन्धान क्या करेंगे, जिन्हें रोटी के ही लाले पड़े रहते हैं। यह तो इस विज्ञान के युग में भी कूप मंडूक बने हुए दो सहस्र वर्ष पूर्व के खोदे कूप में चक्कर काटते रहते हैं कि संसार इतना ही है, ज्ञान विज्ञान इतना ही है इससे परे कुछ नहीं। क्या यही उन्नति के मार्ग हैं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेदीय प्रकाशन

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य की अनुपम कृति

भस्म-विज्ञान

भाषा-टीका सहित दो भागों में मूल्य १०)

धातु भस्मों व रस-चिकित्सा के आविष्कारक कौन थे वह कब हुए ? और आयुर्वेद में रस-चिकित्सा का प्रवेश कैसे हुआ ? साधु सन्तों, महात्माओं की भभूती, सिद्धों की रस सिद्धियों का ज्ञान वैद्यों तक कैसे पहुँचा ? इसके इतिहास का ज्ञान आयुर्वेदज्ञों को बिलकुल नहीं, वास्तव में रस चिकित्सा सिद्धों महात्माओं की देन है। इसका सही इतिहास जानना चाहते हो तो भस्म-विज्ञान का उपोद्घात पढ़िये।

इसमें ८४ सिद्धों का सचित्र विवरण सहित इतिहास दिया है, जिसको खोजने में स्वामीजी ने भारतवर्ष के बड़े-बड़े पुस्तकालयों में जा-जाकर १४० से ऊपर हस्तलिखित ग्रन्थों में से खोजकर सारा विवरण ढूंढ निकाला है। वह ऐसा अकाट्य प्रामाणिक ग्रन्थ है कि वैद्य समाज पढ़कर स्तम्भित व चकित रह गया है। ग्रन्थ की यही एक विशेषता नहीं।

सब से बड़ी विशेषता तो इस ग्रन्थ की यह है कि जितने भी सिद्धों महात्माओं द्वारा भस्में बनाने की विधियां आविष्कृत हो चुकी हैं तथा जो रस ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुए उनमें जो भस्म बनाने की विधियां आई हैं वह सब अप्रकाशित होने के कारण वैद्य समाज उनके निर्माण को नहीं जानता, उनको ढूंढ कर सप्रमाण इस ग्रंथ में संग्रह किया गया है! यही नहीं, इससे भी अधिक विशेषता यह है कि यूनानी, मिश्रानी चिकित्सा में जिन पत्थरों, रत्नों, धातुओं की भस्में बनती हैं उनका ज्ञान भी वैद्यों को बहुत कम है वह समस्त विधियां भी इस ग्रन्थ में सप्रमाण संकलित कर दी गई हैं। इससे भिन्न अनेक धातु भस्मों की विधियां जो अब तक महात्माओं के गुरु परम्परा में चली आ रही थी, उनमें से अनेकों विधियों को बड़े प्रयत्न से प्राप्त कर सब को स्वामी जी ने प्रकट कर दिया है। पुस्तक कैसी है ? इस पर विद्वान् वैद्यों की सम्मतियों से इसका अन्दाजा लगाइयेगा।

भस्म विज्ञान पर कुछ सम्मतियां

'स्वास्थ्य' कृष्ण गोपाल धर्मार्थ औषधालय

कालेड़ा बोगला

रस, भस्म विज्ञान भारतीय चिकित्सा विज्ञान का महत्वपूर्ण विषय है, इस विषय के सभी ग्रन्थों में प्रायः रस-भस्मों का परिचय सूक्ष्म रूप से मिलता है। किन्तु विशद विवेचन सह स्वतन्त्र पुस्तक अभी तक प्रकाशित नहीं हुई थी जो रस एवं भस्मों के विषय में ठोस शिक्षा दे सके। इस कमी को लक्ष्य में रख कर आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान् स्वामी हरिशरणानन्द जी ने अनेक रस ग्रन्थों के आधार स्वरूप बहुत परिश्रम करके संकलित कर सुन्दर हिन्दी टीका सह इस पुस्तक की रचना की है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये लेखक को में बधाई देता हूं।

इस ग्रन्थ में भस्म बनाने की प्राचीन शास्त्रोक्त विधियां विभिन्न प्रमाण भूत ग्रन्थों से ही हैं उसे नव्य विज्ञान संमत उल्लेख किया है और महत्वपूर्ण सूचनायें भी देदी हैं। इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध में उपोद्घात के भीतर लेखक ने धातु, उपधातु, रस, रत्न आदि के सम्बन्ध में विज्ञान सम्मत विस्तृत विवेचन किया है, यह अनुभव लेखक को भारतीय रसशास्त्र एवं नव्य विज्ञान सम्पन्न रसायन शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् डा० प्रफुल्लचंद्रराय द्वारा परम्परागत मिला। फिर काफी धन खर्च द्वारा दीर्घ काल पर्यन्त परिश्रम करके तथा विश्लेषण करवा कर अनुभव प्राप्त किया है इस तरह जो अनुभव मिला वह लेखक ने हृदय खोलकर पुस्तक में दे दिया है।

पुस्तक के प्रारम्भ में रस शास्त्र का इतिहास दिया है, एवं रसाचार्यों के नाम, परिचय तथा समय का उल्लेख भी साथ-साथ दिया है, संपूर्ण भस्मों का विस्तृत विवेचन किया है एवं साथ में हिन्दी टीका देकर और अपना अनुभव दर्शाकर पुस्तक को अत्यन्त उपयोगी बना दिया है यह पुस्तक फार्मेसी वालों के लिये मार्गदर्शक है, एवं आयुर्वेद के विद्वान्, सामान्य चिकित्सक, छात्रगण तथा सर्व साधारण आयुर्वेद प्रेमी सज्जनों के लिये अत्यन्त उपयोगी होगी मैं हृदय से इसका प्रचार चाहता हूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जय आयुर्वेद, जोधपुर अगस्ताङ्क १९५४—

भस्म-विज्ञान के दो भाग हमारे पास आये हैं। प्रथम में तो आयुर्वेद में धातुओं का उपयोग कब कैसे हुआ और उसके बाद रस विद्या तथा शिव, नागार्जुन, ८४ सिद्ध आदि के सम्बन्ध में विभिन्न मत मतान्तरों का वर्णन है। पारद क्या वस्तु है? इस विषय पर लेखक ने प्रगतिशीलता से काम लिया है और लेखक ने जगत् को एक नवीन देन दी है। आगे द्रुति विधानों के बाद महारसों, वायु और वायव्य तत्त्वों, धातुओं की रचना और उसके कार्यों पर गम्भीरता पूर्वक प्रकाश डाला गया है। तृतीय साधनपाद द्वारा इस विद्या और चिकित्सा के उपयोग में आने वाले विभिन्न उपकरणों पर भी प्रकाश डाला गया है ताकि नवीन रस वैद्य व चिकित्सक कहीं भटकें नहीं।

द्वितीय भाग में भस्मों के प्रकार और भस्मों की निर्माण विधि पर अनुभव पूर्ण विवेचन दिया गया है। लेखक ने व्यवहार में लाकर विभिन्न गुणों अवगुणों एवम् तकलीफों व सुविधाओं का स्पष्ट वर्णन किया है जो ग्रन्थकी खास विशेषता का निर्देशक है।

अब तक इस विषय पर अधिक ग्रन्थ नहीं लिख गये हैं और जो लिखे भी गये हैं वे केवल शाब्दिक परिवर्तन मात्र एवम् टीका मात्र ही सिद्ध हुए हैं। किन्तु प्रस्तुत पुस्तक में लेखक का अक्षय ज्ञान भण्डार हमारे सम्मुख आता है? इस बातका प्रत्यक्ष अनुभव प्रस्तुत पुस्तक द्वारा आसानी से हो सकता है।

विद्वान लेखक की विद्वत्ता पूर्ण पुस्तक का अध्ययन प्रत्येक वैद्यको अवश्य करना चाहिए। विशेषतः रस चिकित्सक इस पुस्तक को पढ़कर नवीन पथ प्राप्त करेंगे। वास्तव में परीक्षा संस्थाओं को केवल टीका मात्र ग्रन्थको पाठ्यक्रम में न रख ऐसे मौलिक एवम् ठोस साहित्य पूर्ण ग्रन्थों को निर्धारित करना चाहिए ताकि विद्यार्थी जीवन से ही उनके संस्कार सुदृढ़ बनें और आयुर्वेद को लेकर वे कुछ कहने में समर्थ सिद्ध हो सकें। वैद्योंकी स्थितिको देखते हुए ग्रन्थका मूल्य कुछ विशेष है किन्तु उपयोगिता को देखते यह मूल्य नहीं के बराबर है।

अनुभूत योगमाला—बरालोकपुर, इटावा (यू. पी.)

यों तो भस्मों का विधान यत्र तत्र ग्रन्थों में वर्णित ही था परन्तु वैज्ञानिक विधिसे उनका वर्णन कहीं भी उपलब्ध न था, किस धातुमें कौन २ से अवयव कितने २ परिमाण में है? क्यों यह लाभकारी हैं? कैसे तत् प्रतिनिधि रूप में किस भस्म का उपयोग हो सकता है आदि २ विषयों की पूर्ण जानकारी को बड़ी विशिष्ट शैली से प्रतिपादन कर भस्म-विज्ञान में चार चांद लगा कर एक नवीनता ला दी गई है। पुस्तक प्रत्येक वैद्य के देखने योग्य बन गई है।

आपका लिखा उपोद्घात जो २२३ पृष्ठों में समाप्त हुआ है, बड़ा ही महत्त्व का है और ८४ सिद्धोंके सचित्र पूर्ण पते एवं विवरणात्मक विवेचन बड़ा सुन्दर है। १४६ ग्रन्थों के आधार से उपोद्घात लिखा गया है वस्तुतः इन अमूल्य अप्राप्य ग्रन्थों की खोज एवं उनके अध्ययन के बाद ग्रन्थ प्रणयन कर स्वामी जी ने अपने अदम्य साहस का परिचय दिया है। लेखक अपने विषयके ज्ञान प्रसार में सफल हुए हैं, एतदर्थ बधाई के पात्र हैं।

पूज्य श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य बम्बई

२४—५—५४ के पत्र में लिखते हैं 'भस्म विज्ञान को अक्षरशः सम्पूर्ण तो नहीं परन्तु ऊपर ऊपरसे बहुत कुछ देखा है इसमें वैद्यों के काम की और उपादेय बातें बहुत हैं।

वैद्य घनानन्द जी पन्त,

३१०१ बाजार सीताराम, देहली।

११-४-५४ भस्म विज्ञान दोनों भाग मिले। आप के पूर्व प्रकाशित क्षार विज्ञान, आसव विज्ञान लघु निबन्ध पहिले देख चुका था तदनु कूपी पक्व रस निर्माण विज्ञान बड़ा ग्रन्थ जो कि पारद विषयक उत्कृष्ट ग्रन्थ है— समस्त पढ़ा आज भस्म विज्ञान देखा जिसका २२३ पृष्ट का उपोद्घात अनेक ज्ञातव्य विषयों से परिपूर्ण है। प्रत्येक भस्म विधि पर प्राचीन विचारों का नवीन विचारों से विवेचन किया गया है। आप अपनी लगन के बड़े पक्के हैं। भस्मों के विषय वर्तमान शताब्दी में यूनानी चिकित्सकोंने आयुर्वेद से लेकर जो इसमें ऊहापोह की है उसका भी उसमें दिग्दर्शन है। अकीकादि द्रव्य जो कि यूनानी चिकित्सा में विशेषोपयोगी समझे जाते हैं उनका भी आपने समावेश कर आयुर्वेदज्ञों को यूनानी द्रव्य ज्ञानमें सहायता दी है। रत्न उपरत्नों का अनेक प्रकार से शोधन मारण गुणादि का विशद वर्णन, सरल भाषामें है। आपने इस ग्रन्थ को लिखकर भस्मोंके विषय में आयुर्वेद को ऊपर उठा दिया है। पाठ्य पुस्तकों में आलोचनोपयोगी पुस्तक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व विज्ञान

(स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य की नई रचना)

वैद्यों को देखने समझने की इसमें क्या चीज है? आयुर्वेद पढ़ते ही सबसे पूर्व यह जानने की जरूरत होती है कि शरीर की रचना किन तत्त्वों से हुई? जब तक शरीर की रचना करने वाले तत्त्वों को नहीं जाना जा सकता तब तक दोषों को नहीं समझा जा सकता। तत्त्व पांच हैं या इससे अधिक? इसका प्रत्यक्षीकरण दर्शन ग्रन्थों की रचना के समय नहीं हुआ था। न इस बात को सही तौर पर देखा समझा जा सका था कि विश्व की रचना के पंच तत्त्व ही कारण है या कोई अन्य तत्त्व। इसी बात का प्रत्यक्ष विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है कि शरीर रचना किन तत्त्वों से हुई। शरीर की रचना का और विश्व की रचना का ठीक ज्ञान होने पर ही हम आयुर्वेद में प्रवेश करने के अधिकारी बनते हैं। जो विषय दर्शन ग्रन्थ में अत्यन्त संक्षेप में था उसका प्रत्यक्ष प्रायोगिक ज्ञान इस विश्व विज्ञान में है। वास्तव में विश्व विज्ञान आयुर्वेद प्रवेश से पूर्व पढ़ने पर वैद्य निर्भय होकर शरीर के मर्म को समझने के योग्य हो सकता है। यह पुस्तक कितनी ज्ञानवर्धक है। इस पर जो समालोचनाएं अब तक प्राप्त हुई हैं पाठक उससे इसकी उपयोगिता का अन्दाजा लगा सकते हैं। २५० पृष्ठ के ठोस मैटर का मूल्य केवल ३)।

दैनिक नवभारत टाईम्स दिल्ली २५-१-५६

प्रस्तुत पुस्तक में आधुनिक विज्ञान के विभिन्न पहलुओं को सरल भाषा में समझाया गया है। संक्षेप में कह सकते हैं कि यह पुस्तक आम आदमी के लिये विज्ञान का कोष है। विश्व-विस्तार, विद्युत शक्ति, पदार्थ, पृथ्वी, जीवनोत्पत्ति, हवा मंडल, जल मंडल आदि का विवरण है। अन्त में अंग्रेजी शब्दों के हिंदी रूप दिये गये हैं।

धन्वन्तरि दिसम्बर १९५८ अंक

आयुर्वेद में मानव का महत्व है उसकी चिकित्सा का ध्येय है। इस मानव प्राणी को समझने के लिये संसार की रचना और प्रकृति का रहस्य जानना आवश्यक है। यह सजीव विश्व जिस सत्ता का अंश है उसी का अंश मानव प्राणी भी है। हमारे दर्शन शास्त्रों में विश्व रचना को सोचने में जो मान्य सिद्धान्त थे उन्हें आधुनिक विज्ञान ने प्रत्यक्ष दिखाकर परिवर्तन करा दिया है। ९८ मौलिक तत्त्वों के सम्मिलन से ही पदार्थों की रचना है। इस आधार पर लेखक ने प्राचीन के साथ नवीन विज्ञान का दृष्टिकोण उपस्थित कर आयुर्वेद के सम्मुख मानव शरीर पर सोचने का दृष्टिकोण उपस्थित कर दिया है।

हमारा प्रयोग क्रम या विदेशी विज्ञान क्रम किसी देश या जाति की निजी सम्पत्ति नहीं है जो श्रेष्ठ लाभदायक हो उसी को सहर्ष सभी अपनालें। यदि हमारे प्रयोगों से आधुनिक प्रत्यक्ष प्रयोग अच्छे हैं तो हमें उन्हें अपनों के सामने अवश्य अपना लेना चाहिए।

प्रयोग विज्ञान को जानने से पहिले यह जान लेना आवश्यक है कि वर्तमान में विज्ञान का रूप क्या है? वह कितना बढ़ा हुआ है उसके साधारण सिद्धान्त क्या हैं। बस इन बातों को जानने के लिये ही यह पुस्तक लिखी है। यह सब एक वैद्य के द्वारा संकलन हुआ है जिसमें साधारण जन या वैद्य इस समय के वैज्ञानिक उन्नति को देखें और उसे समझें। लेखक पुराने रूढ़िवादी बन्धनों, विश्वासों को तोड़ फेंकने में सदैव ही तत्पर रहे हैं उनकी दृष्टि सदैव एक वैज्ञानिक का मत रहा है यह कृति भी उनकी उसी दृष्टि की भारी रक्षा करती है। पुस्तक सुन्दर कागज पर सुन्दर टाइप में छापी गई है।

सुधा निधि प्रयोग

यद्यपि स्वामी हरिशरणानन्द जी वैद्य आयुर्वेद के कटु आलोचक हैं तथापि उनकी यह हार्दिक इच्छा है कि आयुर्वेद आजकल के विज्ञान के साथ उन्नत अवस्था में दिखाई पड़े और वैद्य आयुर्वेद के प्राप्त ज्ञान से ऊँचे उठकर विश्व के ज्ञान भण्डार का भी परिचय प्राप्त करें। इस पुस्तक में उन्होंने विश्वविख्यात वैज्ञानिक विषयों का वर्णन देकर हिन्दी भाषा के पाठक और वैद्यों की वैज्ञानिक रुचि की पूर्ति के लिये प्रयत्न किया है। पुस्तक में सात परिच्छेद हैं और प्रत्येक परिच्छेद के अन्तर्गत कितने ही अभीष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयों का विवेचन किया गय है। १६ पृष्ठों में भूमिका लिखने के बाद प्रथम परिच्छेद में विश्व का विस्तार बतलाते हुए प्रकाश, विश्व का आकार, आकाशगङ्गा, नीहारिकाएँ, लोकरचना, सूर्य की रचना और नीहारिकाओं के पदार्थों का परिचय दिया गया हैं। दूसरे परिच्छेद में विद्युत, रश्मि, सताणु, महत और महत की व्यापकता, विद्युत और महत, प्रकाश, शक्ति-गति, रश्मियां, रजाणु-सताणु, ब्रह्माण्डरश्मि, दीप्त्याणु आदि का वर्णन है। तृतीय परिच्छेद में पदार्थ, परमाणु, सताणु, रजाणु, घनताप, तत्व-अहङ्कार, तत्त्वों के भेद, पदार्थों में परिवर्तन, धातुतत्त्व, वायु और अधातुतत्त्व आदि अनेक विषयों का वर्णन है। चतुर्थ परिच्छेद में पृथ्वी के सम्बन्ध में विस्तृत विचार हुआ है। पांचवें परिच्छेद में जीवनोत्पत्ति क्रमानुसार स्तर विभेद का वर्णन और विविध जीवों का रोचक वर्णन है। छठे में वायु-हवा मण्डल का विस्तृत वर्णन है। सातवें परिच्छेद में जल-मण्डल और चेतन सृष्टि का विवरण है। अन्त के पृष्ठों में वैज्ञानिक परिभाषिक शब्दों का हिन्दी और अंग्रेजी में पर्याय है। पुस्तक पढ़ने योग्य है। कितनी ही पुरानी धारणाओं का नया स्वरूप मालूम होगा। कितनी ही पुरानी जानकारी का नया स्वरूप मालूम होगा। पुस्तक प्रत्येक विज्ञान प्रेमी विद्यार्थी के पढ़ने योग्य है। सुन्दर छपाई, सफाई और जिल्द बँधी छोटे टाइप के सवा दो सौ से अधिक पृष्ठों की पुस्तक का दाम ३) है।

डा० सत्यप्रकाश डी० एस० सी०

म्योर सेन्ट्रल कालेज प्रयाग, लिखते हैं :—

श्री हरिशरणानन्द जी वैद्य अपने आयुर्वेदिक साहित्य के लिए हिन्दी जगत में समुचित ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। वैद्य जी के लिखित अनेक ग्रन्थ अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। आपने त्रिदोष सिद्धान्त के विरोध में आयुर्वेदज्ञों का जो ध्यान आकर्षित किया था वह ऐतिहासिक महत्व का है। स्वामी जा का आयुर्वेद रसायन का व्यवहारिक और सैद्धान्तिक ज्ञान अच्छा है। आप आधुनिक रसायन के विकास से भी परिचित हैं और आप उन प्रगतिशील व्यक्तियों में से हैं जो वैज्ञानिक अनुसन्धानों से लाभ प्राप्त करने के लिए सर्वदा उद्यत रहते हैं। यह हर्ष की बात है कि श्री हरिशरणानन्द जी ने विश्व विज्ञान सम्बन्धी यह महत्वपूर्ण पुस्तक हमारे समक्ष रक्खी है। इस पुस्तक में सात परिच्छेद हैं जिसमें विश्व विस्तार, विद्युत, प्रकाश, विविध रश्मियां, परमाणु, तत्व, परिवर्तन, गुरुत्व आकर्षण, पृथ्वी और उसके पर्वतों का जन्म, भूकम्प, जीवनोत्पत्ति सम्बन्धी विविध खंड, वायु मण्डल, जल मण्डल, आदि विषयों पर रोचक, सरल और उपयोगी विवरण दिए हैं। लेखक की शैली सरल और भाषा प्रांजल है। पाठकों से हमारा अनुरोध है कि श्री हरिशरणानन्द जी के इस उपयोगी ग्रन्थ से समुचित लाभ उठावें। पुस्तक के अन्त में पारिभाषिक शब्दों की एक सूची है। लेखक से हमारा अनुरोध यह है कि वह इस पुस्तक के आगामी संस्करण में उस शब्दावली का प्रयोग करें जिसको भारतीय शासन द्वारा मान्यता प्राप्त हो चुकी है।

दैनिक स्वतन्त्र भारत लखनऊ दिसम्बर १६५८

जैसा कि भूमिका में इंगित है, अभी इसी शृंखला में मानव जीवन विकास और पाखण्ड विज्ञान शीर्षक से दो रचनाएं इसी लेखक से और प्राप्त होने वाली हैं। भूमिका में ज्ञान-विज्ञान की परिभाषा, त्रिकालज्ञ दृष्टि, आस्तिकता, पारिभाषिक शब्द, तथा संकेत व सूत्रों का विवेचन है। उसी को देखकर कोई भी बिना पूरी पुस्तक पढ़े तथा अन्य की प्रतीक्षा किये नहीं रह सकता। आज भी कुछ मनीषी यह माने बैठ हैं कि ज्ञान-विज्ञान के उच्च तत्वों पर मौलिक विचार तथा ग्रंथ रचना हिन्दी में उपलब्ध नहीं प्रस्तुत रचना उनकी मान्यता की चुनौती है। अन्त में अंगरेजी शब्दपर्याय दिये हैं जिनसे पता चलता है कि हिन्दी शब्द अधिक सरल और प्रभावशाली हैं।

रचना-शैली बडी रोचक है। कहीं-कहीं तो लेखक ने विज्ञान के क्षेत्र में कवित्व को पहुँचा दिया है।

गेटअप और छपाई स्वच्छ तथा सुन्दर है। मूल्य सामग्री को देखते हुए कम है। पुस्तक अवश्यमेव पठनीय एवं संग्रहणीय है।

दैनिक विश्वामित्र कलकत्ता २१ दिसम्बर, १६५८

श्री हरिशरणानन्द वैद्य द्वारा विरचित 'विश्व विज्ञान' सामयिक एवं मौलिक ग्रन्थ है। विज्ञान की मौलिक पुस्तकों का हिन्दी में अत्यधिक अभाव है। यह पुस्तक अपने में परिपूर्ण है इसके अध्ययन से यह पता चलता है कि लेखक को विविध सामग्री के संकलन में बड़ी कठिनाइयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सामना करना पड़ा है। यद्यपि पुस्तक आकार में विषयानुसार बहुत छोटी है (लगभग २५० पृष्ठ) परन्तु सार रूप में सभी विषयों का समावेश है। महत्वपूर्ण विषयों का जिनका आज के युग में विशेष महत्व है स्पष्टीकरण वृहद क्षेत्र में विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक ढंग से किया गया है।

महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने लेखक की विज्ञान सम्बन्धी कृतित्व की मुक्तकण्ठ मे प्रशंसा की है। इस पुस्तक की रचना उस समय जब स्वतन्त्रता संग्राम में २ वर्षों के लिए जेल में १९२९ से रखे गये थे वैद्य जी ने अपने समय का सदुपयोग करने की दृष्टि से सृष्टि रचना शास्त्र नाम वृहद् ग्रन्थ की रचना कर डाली जिसको श्री राहुल जी के परमर्शानुसार तीन भागों में (१) विश्व विज्ञान (२) मानव-जीवन-विकास (३) पाखण्ड विज्ञान में विभक्त कर दिया गया। 'विश्व विज्ञान' के अतिरिक्त अन्य दो भाग अभी अप्रकाशित है।

पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसकी भाषा विशुद्ध किन्तु सरल हिन्दी है। उर्दू या अंग्रेजी के शब्दों को ठूंस कर भाषाओं का अजायबघर नहीं बनाया गया है। पुस्तक विज्ञान प्रेमियों एवं विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तक आकर्षक आवरण पृष्ठ से युक्त सजिल्द है।

घुमक्कड़ स्वामी

श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी महाराज का जीवन चरित्र

[ले०महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी]

साधु बन कर योगाभ्यास की लगन में किसी पहुँचे योगी की खोज में किस तरह हिमालय की कंदराओं में कैलाश मानसरोवर तक उन्हें ढूंढते फिरे? किस तरह योगाभ्यास में रमे और विघ्न पड़े? किस तरह फिर वैद्य बन कर हिमालय में जड़ी बूटियां ढूंढते फिरे? फिर बिना पूंजी के लक्षाधीश बनने की अभिलाषा लेकर फार्मेसी की स्थापना की। इन सब बातों का अत्यन्त रोचक वर्णन विश्व विख्यात लेखक श्री राहुलजी की ओजस्विनी लेखनी द्वारा अंकित इस पुस्तक में पढ़िये। १५ वर्ष वैद्य बनकर घुमक्कड़ जीवन में जो अनेक देशाटन के समय उन्हें अनेक चमत्कारिक योग साधु सन्तों एवं रसायनियों से प्राप्त हुए थे, वे योग भी इस ग्रन्थ के अन्त में स्वामी जी ने प्रकट कर दिये हैं। मूल्य केवल ३)।

इस पुस्तक पर समालोचना

—डा. सत्य प्रकाश डी.एस.सी.म्योर सेण्ट्रल कालेज प्रयाग

इस पुस्तक में हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ महापंडित श्री राहुल संकृत्यायन ने श्री वैद्य हरिशरणानन्द जी के उस प्रारम्भिक जीवन का मनोरंजक विवरण दिया है जो वैद्य जी ने सन्यासी के रूप में बिताया था। राहुल जी ने अपनी शुद्ध भाषा में बहुत ही सरल और सरस शैली में श्री हरिशरणानन्द जी के कर्मठ जीवन का इसमें उल्लेख किया है। हम राहुल जी के कृतज्ञ हैं कि उन्होंने एक ऐसे व्यक्ति के जीवन की झांकी हमारे सामने प्रस्तुत की है जिसने उच्च आदर्शवाद को व्यवहारिक स्तर पर सत्य सिद्ध करके हमारे समक्ष रक्खा। पुस्तक रोचक और पठनीय है।

कूपीपक्व-रस-निर्माण-विज्ञान

यह ग्रन्थ स्वामी हरिशरणानन्दजी की मौलिक कृतियों में से एक है। इस ग्रन्थ की ऐतिहासिक पदार्थ सामग्री संचित करने में आपने १५-१६ वर्ष व्यतीत किये और जिन कूपीपक्व रसों को आप अनेक प्रकार से बनाकर इस विषय को आज ३० वर्ष से समझते व अनुभव लेते आ रहे हैं उन्हीं रहस्यों का उद्घाटन आपने अपने इस ग्रन्थ में किया है। इस ग्रन्थ की आयुर्वेदमार्तण्ड यादवजी त्रिकम जी आचार्य ने आयुर्वेद विद्यापीठ के रसतन्त्र की पाठ्यविधि के आलोच्य ग्रन्थों में रखने की सिफारश की है।

२०×३० सोलह पेजी ऐण्टिक पेपर पर पृष्ठ संख्या ५००आर्ट पेपर पर मनोहर १४चित्रों से सुसज्जित, सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ५) रुपया, पोस्ट और पैकिंग खर्च भिन्न

इस ग्रन्थ पर सम्मतियां

(२)श्रीयुत बालचन्द्र जी नाहटा सरदार शहर,बीकानेरसे १९-२-४२ के पत्र में लिखते हैं—बहुत अर्से के बाद आप को यह पत्र लिख रहा हूँ। दो कारणों से-एक तो आप को बधाई देने के लिये और दूसरे कुछ जानने के लिये।

बधाई! आपके अनुपम ग्रन्थ'कूपीपक्व-रसनिर्माण-विज्ञान के प्रकाशनार्थ है जिसको पढ़कर मैंने बहुत अधिक व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कियामें आपके उक्त ग्रंथ में दिये विधानकी विद्युत भट्टी बनाने की बहुत इच्छा रहने पर भी समयाभाव से कलकत्ते में न बना सका। किन्तु सामान लाकर एक विद्युत शास्त्री की सहायता से यहां उसे तैयार किया और उसमें १०तोला पारद,१०तोला गन्धक,१ तोला सुवर्ण डालकर उस विद्युत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भट्टीमें मकरध्वज चढ़ाया। १००० हजार वाट प्रति घण्टे के हिसाबसे विद्युत् शक्ति खर्च करके ६ घण्टेमें मकरध्वज बना ही लिया।

जिस परीक्षणकी इच्छा वर्षोंसे थी और जिसकेलिये कलकत्ता की एक फर्मने विद्युत् भट्टीकी कीमतका इस्टीमेट २५०) का दिया था यह विद्युत् भट्टी आपकी कृपासे १५) या २०) रुपये में ही बना कर देखली, देखही नहीं ली उसपर कूपीपक्व रस तय्यार भी कर लिया।

इसके लिये आपको बधाई नहीं अनेकानेक धन्यवाद देना चाहिये। किन्तु यदि इतना ही होता तो धन्यवाद देकर ही रह जाता. आपने तो उसमें और इतनी अधिक प्रायोगिक बातें दी हैं जिसके लिये धन्यवाद पर्याप्त नहीं। बधाई इस लिये कि आप अपने प्रयत्न में सफल हुए।

(२) आयुर्वैदिक कालेज पत्रिका, कांशी विश्वविद्यालय अक्टूबर १६४१

उपर्युक्त पुस्तक कूपी द्वारा पके हुए रसों पर लिखी गई है। लेखक उन वैद्योंमेंसे हैं जो हर एक विषयको वैज्ञानिक तरीकों से समझने और समझानेका प्रयत्न करते हैं। पूरी पुस्तक इस बात का प्रमाण है। उपोद्घात विद्वत्तापूर्ण है। रसशास्त्र और उससे सम्बन्धित अन्य विषयोंके इतिहास का संग्रह जिस परिश्रमसे किया गया है वह प्रशंसनीय है। स्थान स्थान पर विषय को नवीन विज्ञानके अनुसार स्पष्ट किया गया है। कई रसों पर प्रयोगोंका वर्णन किया गया है। अग्नि देनेके विषय में निश्चित शतांश देकर लेखक ने रसशास्त्रकी दृष्टि से आयुर्वेदज्ञ लोगोंका उपकार ही किया है पृष्ठ १५५ से अन्त तक शास्त्रोक्त कूपीपक्व रसों का वर्णन है। नवीन आयुर्वेद जगत्को ऐसी ही पुस्तकोंकी आवश्यकता है। आशा है वैद्य समुदाय इस पुस्तक का स्वागत करेगा।

(३) नृसिंहदेव शर्म्मा शास्त्री B. A. आयुर्वेदाचार्य, कविरत्न, रावलपिंडी

श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी

अध्यक्ष 'पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, अमृतसर द्वारा रचित रसायनकी नवीन पुस्तक, कूपीपक्व-रस-निर्माण-विज्ञान मैंने आद्योपान्त पढ़ी है। स्वामी जी की यह मौलिक कृति है, जिसे पढ़कर कोई भी वैद्य रसों को बिना कुछ हानि उठाये निर्माण कर सकता है। स्वामी जी ने वैज्ञानिक सिद्धान्तोंके इस विषय पर गम्भीर और मौलिक विवेचन किया है। पुस्तकके प्रत्येक पृष्ठ से स्वामीजीके अत्यन्त गम्भीर अध्ययन, मनन और विशाल अनुभव का पता लगता है। पुस्तक वैद्य समाजके लिये अत्यन्त उपयोगी और विद्वानोंके लिये संग्रहणीय है।

(४) वैद्य-रत्न कविराज डा. प्रतापसिंह जी

(भू० पू० डायरेक्टर आफ आयुर्वेद राजस्थान)

मैंने श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी द्वारा लिखित 'कूपीपक्व रस निर्माण विज्ञान, का आपात अवलोकन किया। श्री स्वामी जी सिद्ध-हस्त लेखक हैं।

इसके पूर्व स्वामी जीने 'कूपीपक्व रसायन' और 'त्रिदोष-मीमांसा'नामक पुस्तकें प्रकाशित की हैं और उससे वैद्यसमाज में नवीन चिन्तन का प्रादुर्भाव किया है।

स्वामीजी क्रान्तिवादी हैं। आयुर्वेद समाज के मृत-जीवन में पुनः क्रान्ति करके नवीन जीवन संचार करने के अभिलाषी हैं,इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये कठिन परिश्रम करते रहते हैं।

कूपीपक्व-रस-निर्माण-विज्ञान इसी मनोवृत्ति का परिणाम है। पुस्तक का प्रकाशन बड़ा ही सुन्दर हुआ है। इसका उपोद्घात् प्रत्येक वैद्यके लिये मनन करने योग्य है। इस उपोद्घात् में पौर्वात्य एवं पाश्चात्य रसायन शास्त्र का क्रमबद्ध अच्छा इतिहास है। यदि पाश्चात्य मौलिक तत्वोंके सामने उनके प्रचलित वैज्ञानिक नाम अंग्रेजी भाषा में भी दे दिये जाते तो पाठकों के लिये अधिक सरलता होती।

मैं स्वामी जी को इस वृद्धावस्था में भी कठिन परिश्रम के लिये हार्दिक बधाई देता हूँ।

आशा है स्वामी जी 'धातुवाद' पर भी विशेष प्रयोग कर आज के आणविक रसायनवाद का विवेचन कर वैद्यों के ज्ञान में परिवर्धन करने का यत्न करेंगे।

भगवान् जगन्नियन्ता से प्रार्थना है कि स्वामी जी को दीर्घायु करे और स्वास्थ्य प्रदान करे ताकि आपने अनुभव और प्रयोगोंसे चिरकाल तक आयुर्वेदका उपकार करते रहें।

क. प्रतापसिंह. १६-६-५२.

आसव विज्ञान

(तृतीय परिवर्द्धित संस्करण)

यह किसी से छिपा नहीं कि आयुर्वेद का एक चमत्कार-पूर्ण अंग आसवारिष्ट का निर्माण क्रम हमारे पास कितने अपूर्ण रूप में रह गया है। सौ बार आसव बनाइये कठिनता से दो-चार बार खराब होने से बचता है। इसका मुख्य कारण है हमारी प्राचीन रीति का लुप्त हो जाना। इसी लुप्त प्राय: विधि को स्वामी जी ने बड़े परिश्रम से पुनः प्राप्त किया है और उसे आधुनिक विज्ञान से परिमार्जित कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त पुस्तक में सरल सुस्पष्ट रूप में अंकित किया है। जिसका विस्तार निम्न रूप में है—

[१] आसव की प्राचीनता और उसका ज्ञान, [२] आसव का व्यवहार और उसकी मादकता का अनुभव, [३] नाड़ी यन्त्र का आविष्कार और उसके भिन्न-भिन्न सचित्र रूप, [४] आसव व सुराकी ऐक्यता और उसके प्रभाव, [५] आयुर्वेद में आसव का स्थान [६] आसव बनाने का प्राचीन क्रम व भेद, [७] बने विगड़े आसव की परीक्षा, [८] आसव बिगड़ने का कारण और उसका विकृत रूप, [९] आसव और चुक्र अम्लादि में भेद, [१०] आसव बनने का कारण, [११] आसव में परिवर्तन और किण्व कीटाणु [१२] आसवोत्पादक वस्तुएं और उनका परिमाण, [१३] उत्ताप ऋतु परिवर्तनादि से आसव का बनना, बिगड़ना, [१४] भिन्न-भिन्न ऋतुओं में आसव का बनाना, [१५] आसव को सुरक्षित रखने का अनुभूत उपाय, [१६] आसव बनाने का अधिकार व राज्य नियम, [१७] आसव का शुद्ध रूप और उसका वैज्ञानिक विश्लेषण [१८] आसव के मौलिक पदार्थ व उनका गुण इत्यादि बातों का खूब अनुभवजन्य वर्णन है। स्वामी जी ने इस पुस्तक को दस वर्ष के परिश्रम के पश्चात् लिखा है।

दूसरे संस्करण की विशेषता

इस पुस्तक का जब पहिला संस्करण निकला तो अनेक रूढ़िवादी वैद्यों ने उस पर पेट भर कर आलोचनायें की। दूसरे संस्करण के प्रकाशन समय में स्वामी जी ने उनकी आलोचनात्मक बातों का जब प्रामाणिक व तर्कसिद्ध उत्तर दिया और उन वैद्यों का आह्वान किया गया कि वे पुनः इन पर अपने पक्ष को पुष्ट करने के साधन ढूंढें, इस पर उन वैद्यों से कुछ न बन पड़ा। तीसरे संस्करण तक उन वैद्यों में से एकने भी उत्तर देने का साहस नहीं किया, न स्वामीजी के दिये तर्कों का किसी ने खण्डन किया। इससे स्पष्ट हो गया कि स्वामी जी के तर्क प्रायोगिक आधार पर स्थित हैं। आसव बनाते समय उन प्रायोगिक बातों की सचाई जब स्पष्ट दिखाई देती है तो वे अपनासा मुंह लेकर चुप हो जाते हैं।

तीसरा संस्करण

इस तीसरे संस्करण में स्वामी जी ने कई संदिग्ध तथा अन्य कई ऐसी बातों की भी व्याख्या दे दी है जिसे वैद्यों द्वारा प्रश्न रूप में उपस्थित किया गया था। पुस्तक अपने विषय की इतनी जानकारी से पुष्ट हो गई है कि वैद्यों को अन्य पुस्तक की आवश्यकता नहीं रहती। ऐसी अत्युपयोगी पुस्तक का मूल्य डेढ़ रुपया पोस्ट खर्च भिन्न।

त्रिदोष-मीमांसा

"गवेषणापूर्ण-नव्यउपोद्घातयुक्त विवर्द्धित"

द्वितीय संस्करण

लेखक—स्वामी हरिशरणानंद वैद्य

प्रथम बार जब यह पुस्तक प्रकाशित हुई थी, वैद्य संसार में खलबली मच गई थी। बहुतसे वैद्योंने उसे पढ़कर अपनी राय दी—कि "स्वामीजीने यह आयुर्वेद जगत् पर एक बड़ा ही जबरदस्त बम मारा है।" यदि उस समय त्रिदोष मीमांसा वैद्य संसारके लिये बमवत थी तो निश्चय ही इसबार उसका उपोद्घात परमाणु बमका रूप ही समझिये।

उस समय वैद्य संसार त्रिदोष-मीमांसामें दिये स्वामीजी के प्रत्यक्ष अकाट्य वैज्ञानिक तर्कों को एलोपैथीके बताकर अपने मनको सान्त्वना देताथा, पर इस बारके दिये उपोद्घातको पढ़कर अब काल्पनिक मृग मरीचिकासे उनकी प्यास नहीं बुझ सकती।

त्रिदोष-मीमांसाका यह उपोद्घात ऐसे वैसे तर्कों व प्रमाणोंसे युक्त नहीं प्रत्युत, यह निबन्ध शुद्ध वेद भगवान् की सर्वोपरि अकाट्य प्रामाणिकताके आधार पर संकलनकर सिद्ध किया गया है कि हमारी प्राचीन चतुर्विध चिकित्सामें आयुर्वैदिक चिकित्साका उद्गम स्थान कहांसे है और वैद्यक वृत्ति का वास्तविक आदि स्रोत कहांसे चलता है।

यदि वैद्य संसार त्रिदोष-मीमांसाके इस दूसरे संस्करणको पढ़ कर भी उस अन्ध प्रगाढ़ निद्रासे न उठा और समयको न पहिचाना तो मानना पड़ेगा कि वैद्य जगत्का अस्तित्व नाम मात्र को है वास्तवमें वह समाप्त हो चुका है। वैद्य संसारको प्रबल उद्बोधन कराने वाली ३०० पृष्ठ की सर्वोत्तम पुस्तक का मूल्य २रु०–५० न. पं., पोस्ट खर्च भिन्न।

सम्मतियां

श्रीयुत डाक्टर सत्यप्रकाश जी एम. डी-लिट्.

वेलीएवन्यू, इलाहाबाद ता० १८-२-४८

"त्रिदोष मीमांसा" के द्वितीय परिवर्धित संस्करण की प्रति के लिये अनेक धन्यवाद।

आपका उपोद्घात मैंने आद्योपान्त देखा। मैं नहीं समझता था कि "त्रिदोष-मिमांसा" जैसे ग्रन्थ के उपोद्घात में प्राच्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयों का इतना सुन्दर समीचीन विवेचन होगा। वैदिक युग पर आपने बहुत अच्छा प्रकाश डाला है इसकेलिये बधाई है। वैद्यवर्ग में त्रिदोषवादके प्रति जो विप्लव आपने आरम्भ किया है, उसका समस्त श्रेय आपको ही रहेगा। न जाने कब हमारा आधुनिक वैद्य समाज रूढ़ियों को त्याग कर सत्यके अन्वेषण के लिये उसी प्रकार अग्रसर होगा, जैसा कि अपने पुरातन ऐतिहासिक काल में था। सत्यप्रकाश

आयुर्वेदाचार्य श्री हरदयालु जी

भूतपूर्व प्रिंसिपल श्रीमद्दयानन्दायुर्वैदिक कालिज, अमृतसर
प्रधान—आयुर्वैदिक एण्ड यूनानी रजिस्ट्रेशन बोर्ड, पंजाब

त्रिदोष मीमांसा—जनवरी १९४८ में प्रकाशित द्वितीय संस्करण मेरे सामने है।

इस संस्करण में लेखक ने विद्वत्तापूर्ण उपोद्‌घात के ९६ पृ. और बढ़ा दिये हैं। इस उपोद्‌घात से अनेक भ्रम दूर होजाते हैं, वास्तव में यह उपोद्घात सर्वप्रथम पठनीय है। इसमें संशयात्मक स्थलों पर प्रकाश डाला गया है तथा नये और प्राचीन प्रमाणों से सन्देह स्थलों को बोध गम्य बनाने का सफल प्रयास हुआ है।

त्रिदोष मीमांसा के प्रथम संस्करण को पढ़कर वैद्य समुदाय में एक विशेष प्रकार का वायुमण्डल उत्पन्न हुआ था, उन सब प्रश्नों तथा आक्षेपों का उत्तर पूर्ण प्रयत्न से दिया गया है। यदि इससे वैद्य समुदाय का सन्तोष हो जाय तो निःसन्देह लेखक का प्रयत्न सफल समझना चाहिये।

इस विचार से लेखक महोदय अवश्य धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने आयुर्वेदोन्नति के सम्बन्ध में निर्भीकता से अपने विचारों को लेखबद्ध करके आयुर्वेद के महारथियों को सचेत कर दिया है। मत भिन्नता के आधार पर किसी का विरोध करना आर्यत्व का चिन्ह नहीं है। विचारास्पद गहन विषय सर्वदा गूढ़ मनन और तद्विषयक सम्भाषा परिषदों द्वारा निर्णय-स्थान तक पहुँच पाते हैं, लेखक के हृदय में आयुर्वेद के प्रति अश्रद्धा व घृणा नहीं है, प्रत्युत वह उसे विज्ञानानुमोदित शिलातल पर देखना चाहते हैं।

हरदयालुवैद्य १३-४-४८

ज्वर-मीमांसा

आयुर्वेद-ग्रन्थों में जिन ज्वरों व सन्निपातों का उल्लेख आता है, इस समय उनमें से कौन-कौन से ज्वर तथा सन्निपात मिलते हैं उनके इस समय नाम रूप और लक्षण क्या हैं? तथा कौन-कौन से ज्वर व सन्निपात इस समय नहीं मिलते, लुप्त हो चुके हैं। इसका ठीक-ठीक ज्ञान बहुत कम वैद्योंको है।

चिकित्सा के लिये रोगका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना बहुत जरूरी बात है। लक्ष्य को जिसने लक्षित नहीं किया वह ठीक निशाना नहीं लगा सकता। जो वैद्य रोग को (ज्वर) नहीं पहचान पाते निश्चयही वह चिकित्सामें कभी सफल नहीं होते।

इस प्रकार के कठिन कामों को करनेका काम तो निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के संचालकों का था, वह वैद्य समुदायको प्राचीन और अर्वाचीन ज्वरों (रोगों) का विवेचन करके आधुनिक समय के अनुकूल उन्हें मार्ग प्रदर्शित कर चिकित्सामें उनकी सहायता करते। किन्तु उन्हें अपने ही कामों से अवसर कहां; अकर्मण्यताको देखकर स्वामीजी ने समयानुसार इस कमी को पूर्ण करने का दृढ़ संकल्प किया। उसी के परिणाम-स्वरूप यह ज्वर-मीमांसा है।

स्वामीजी ने ज्वर-सम्बन्धी विषय को लेकर निदानार्थ जो सुझाव पेश किए हैं तथा रोग-परिज्ञान-सम्बन्धी उनका अपना २५ वर्ष का जो अनुभव था, विस्तृत रूप से दिया है। पुस्तक कितनी उपादेय है वैद्य स्वयं पढ़कर इसकी गम्भीरता का अनुभव ले सकते हैं। मूल्य १रु–५० न० पै०

मन्थर-ज्वर-विज्ञान

(दूसरा संस्करण)

लेखक—स्वामी हरिशरणानन्द जी वैद्य

पाठकों को ज्ञात होगा इस पुस्तक का प्रथम संस्करण 'मन्थर-ज्वरकी अनुभूत चिकित्सा' के नाम से प्रकाशित हुआ था। आज से २५ वर्ष के मध्य मन्थर-ज्वर पर बहुत ही खोजें व छान-बीन हुई, न जाने कितनी नई नई सैद्धान्तिक बातें सामने आई, हजारों रोगियों की चिकित्सा करने पर इतने समय के बाद जो अधिक अनुभव व ज्ञान लेखक को प्राप्त हुआ, उन सबका इस बार के संस्करण में संकलन कर दिया है। चिकित्सा क्षेत्र में पुस्तक की क्रियात्मक उपयोगिता बढ़ाने के लिए आधुनिक प्रत्यक्ष विज्ञान के अनुसार मन्थर ज्वर जीवाणु की उत्पत्ति, वृद्धि एवं संचार का विस्तृत वर्णन उसमें दिया है जिसे पूर्ण तरह से समझ लेने पर इस रोग के प्रसार को रोकने सम्बन्धी समस्त ज्ञान पाठकों को प्रत्यक्ष हो जाता है। मन्थर ज्वर जीवाणु का शरीर के किन अंगों पर क्या २ प्रभाव पड़ता है और क्या २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपद्रव होते हैं। तथा उनकी चिकित्सा का भी पूरा वर्णन है। लेखक के चिरकालिक अनुभव के आधार पर कुछ ऐसे सांकेतिक लक्षणों का वर्णन दिया है जिन्हें देख कर सन्दिग्धावस्था में न रह कर निश्चयात्मक निदान करने में सहायता मिलती

चिकित्सा में भी स्वामी जी के चिरकाल से अनुभूत सिद्ध प्रयोगों के साथ २ नवीन आविष्कृत प्रभाव शाली औषधियों का वर्णन भी है जिससे बिगड़े से बिगड़े रोगी के उपचार में चिकित्सक को सहायता मिल सकती है।

शरीर की रोग रोधक शक्ति (क्षमता) क्या है वह कैसे बढ़ाई जा सकती हैं? रक्त के श्वेताणु किस प्रकार रोगों के आक्रमण का मुकाबला करते हैं इत्यादि सब बातों का विस्तृत वैज्ञानिक वर्णन भी पुस्तक में किया गया है जो ज्ञान के पिपासु पाठकों के लिये अवश्य ही सन्तोषप्रद सिद्ध होगा। अकेले मन्थर ज्वर पर इतना विस्तार पूर्वक तथा ज्ञानवर्द्धक ग्रन्थ आपको अन्यत्र न मिलेगा। नव्य ज्ञान विज्ञान से पूर्ण होने के कारण ही पुस्तक का नये सिरे से नाम करण करना उचित समझा गया।

पुस्तक को जो भी वैद्य एक बार पढ़ कर इसमें लिखी विधि अनुसार मन्थर-ज्वर या टायफाइड का निदान करेगा तथा उसकी चिकित्सा में प्रवृत्त होगा वह कभी भी असफल नहीं होगा। मूल्य २) डाक खर्च भिन्न।

वैद्य समाज तथा जनसाधारण का परमसहायक

औषध-गुण-धर्म-विज्ञान

(अर्थात् औषधि गुण परिचय तथा सेवन-विधि)

संशोधित एवं परिवर्धित—तृतीय संस्करण

छप कर तैयार हो गया है जिसकी सहायता से वैद्य समाज के अतिरिक्त साधारण मनुष्य भी आयुर्वेदोक्त प्रत्येक औषधि प्रयोग कर लाभ उठा सकता है क्योंकि इस पुस्तक में रोग-व्यवस्था तथा समस्त विख्यात आयुर्वेदिक औषधियों का परिचय, गुण, सेवन-विधि तथा मात्रादि का निरूपण बहुत ही उत्तम शैली और सरल भाषा में किया गया है। इस बार स्वामी जी ने औषधियों के सम्बन्ध में अपने आज तक के अनुभवों को इस पुस्तक में संकलित कर दिया है।

तृतीय संस्करण की विशेषता यह है कि इसमें आयुर्वेदिक औषधियों के अतिरिक्त स्वामी जी की अपनी जितनी भी अनुभूत पेटेंट औषधियां हैं उन सबका विशद विवेचन तथा लाभ सेवन-विधि मात्रादिक का वर्णन भी अच्छी तरह किया गया है। मूल्य १) डाक खर्च भिन्न।

क्षार-निर्माण-विज्ञान

यह किसी से छिपा नहीं कि आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति में भिन्न-भिन्न वानस्पत्योद्भूतक्षारों का काफी प्रयोग होता है। किन्तु हम देखते हैं कि वैद्यों द्वारा बनाये हुए क्षार प्रायः मैले धूसर वर्ण और देखने में चित्ताकर्षक नहीं होते।

स्वामी जी ने बड़े परिश्रम से क्षार-निर्माण विज्ञान का अनुभव किया और उसको वैद्यों के लाभार्थ क्रमबद्ध कर दिया है। उसमें निम्नलिखित विषयों का समावेश है :—

१. आयुर्वेदिक-चिकित्सा-पद्धति में क्षारों की उपयोगिता। २. वनस्पतियों के मौलिक तत्व व क्षारोद्भव धातुएं। ३. भिन्न-भिन्न क्षारों का रासायनिक रूप। ४. भिन्न-भिन्न वनस्पतियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के क्षारजन्य धातुओं की मात्रा। ५. भिन्न भिन्न वनस्पति भस्म से क्षार निकालने की विधि। ६. क्षारों का विशुद्ध स्वच्छ बना कर उसको कण रूप में लाना। ७. भिन्न भिन्न क्षारों के गुण और वज्र-क्षार आदि के बनाने का क्रम तथा क्षारों का उपयोग इत्यादि विषय का खूब खुलासा वर्णन है।

मूल्य प्रति पुस्तक ५० नये पैसे

रुद्रयामल तन्त्र

भैरवानन्द योगी कृत

भैरवानन्द योगी ने तान्त्रिक काल के अन्तिम दिनों में एक तन्त्रविषयक रुद्रयामल तन्त्र लिखा था। उस ग्रन्थ के भीतर धातु निरूपणम् नाम से एक अध्याय भिन्न दिया गया था। उस अध्याय के रसायन विषयक-प्रमाणिक ग्रंथ के कुछ उद्धरण डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय ने हिन्दू रसायन शास्त्र का इतिहास लिखकर उसके परिशिष्ट में उद्धृत किये थे। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ अप्राप्य था। श्रीयुत यादव जी त्रिकम जी आचार्य की कृपा से इस की हस्तलिखित प्रति प्रकाशनार्थ प्राप्त हुई, दूसरी प्रति कृष्ण गोपाल जी काशी निवासी से प्राप्त हुई दोनों ही प्रतियां लेखन प्रमाद से काफी अशुद्ध थी। उन्हें पं श्रीधर मायाधारी जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य से यथाशक्य शुद्ध कराकर प्रकाशित किया है।

मूल्य ३) रु, पोस्ट खर्च भिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्युत् की भट्ठियां और औषधि निर्माण की मशीनें

हम अभी तक धातु भस्में उपलों की अग्नि में तय्यार करते हैं। उपलों की आंच देने में यह त्रुटि सदा रहती रही है कभी आंच कम कभी अधिक लग जाती है, इसके नियन्त्रण के जो भौतिक साधन बताये हैं उन्हें अपनाने पर भी यह त्रुटि दूर नहीं होती, इसीलिये अन्य साधन ढूंढने पड़े। उनमें से विद्युत् की भट्ठियां सर्वोत्तम सिद्ध हुईं। विद्युत्भट्ठी में ताप नियन्त्रण की पूर्ण व्यवस्था होती है, जितनी भी मात्रा में आंच देना चाहें आप प्रसन्नता से दे सकते हैं। प्रत्येक धातु भस्में बनाने पर देखा गया है कि उन्हें एक जैसी आंच नहीं चाहिये। किस धातु भस्म को कितनी आंच देना है? इसका सही-सही ज्ञान आप हमारे लिखे भस्म विज्ञान नामक ग्रन्थ में प्राप्त कर सकते हैं।

और वह भस्में विद्युत् भट्ठी पर ही एक मात्रा में आंच देकर बन सकती है इसका अनुभव लिया जा रहा है और उस पर एक भिन्न ग्रन्थ तैयार हो रहा है। हमने ऐसी विद्युत् भट्ठियां निर्माण की हैं जिन पर धातु भस्म और कूपी-पक्व रस दोनों ही बन सकते हैं। छोटे बड़े कई आकार की भट्ठियां तय्यार करके हम उन पर अनुभव ले रहे हैं जो वैद्य इन भट्ठियों का उपयोग करेंगे वह निश्चिन्त बैठे हुए भस्में व कूपी-पक्व रस निर्माण कर सकते हैं। जिन्हें भट्ठी लगाने की इच्छा हो वह पत्र-व्यवहार करें।

आज-कल औषधियों की मांग इतनी बढ़ गई है कि हाथ से औषधियां कूट, पीस कर उतनी जल्दी रस, वटी तय्यार नहीं होतीं जितनी मशीनों से होती हैं। हाथ तो लगातार घंटा, आधा घंटा काम कर सकते हैं फिर थक जाते हैं पर मशीन तो लगातार ८-९ घंटा या जितनी देर चाहें उन्हें चलावें क्या वह थकने वाली हैं? फिर खूबी सबसे बड़ी हमारी मशीनों में यह है कि जिस तरह आयुर्वेद के ग्रन्थों में औषधियों की कुटाई, पिसाई और घोटाई (भावना) का जो विधान दिया है जिससे औषधियों का सार भाग गरम न हो कर वह नष्ट नहीं होते, बिलकुल उसी विधि के अनुसार हमारी मशीनों से कुटाई, पिसाई घुटाई होती है और औषधियां घुट कर इतने सूक्ष्म अणु-अंशों में आ जाती हैं कि जिनका प्रभाव शीघ्र होता है। प्रत्येक मशीन बिजली की शक्ति से चलने वाली है। मशीनें निम्न हैं:-

चट्टू मशीन, ढोल मशीन, खरल मशीन, गोली मशीन, टिकिया मशीन, पालिश मशीन, आसव छानने की मशीन फिलटर आदि। अधिक मात्रा में औषध निर्माण-कर्ता यह मशीनें हमारे कारखाने में आकर देखें और सारी व्यवस्था समझ कर अपने यहां यह मशीनें लगाएं।

पता—मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी,
६०-६१ अकाली मार्केट, अमृतसर।

ब्रांच—खारी बावली दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सूचीपत्र से पूर्व के सूचीपत्र रद्द किए गये। १-४-६०

जगत् प्रसिद्ध व अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन द्वारा सम्मानित तथा
म्युनिसिपल कमेटियों, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों, धर्मार्थ औषधालयों के लिये मान्य
व

पञ्जाब सरकार द्वारा स्वीकृत

पञ्जाब आयुर्वैदिक फार्मेसी

का

षाण्मासिक-सूचीपत्र

[केवल रजिस्टर्ड चिकित्सकों, अस्पतालों, अथवा प्रयोग शालाओं के लिये]

आवश्यक सूचना

१. कुछ समय से सरकार ने केन्द्रीय बिकरी कर (अर्थात् एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाने वाले माल पर लगने वाला बिकरी कर) की दर बढ़ा कर ७ प्रतिशत अर्थात् ७ नये पैसे प्रति रुपया कर दी है। कृपया ग्राहक महानुभाव नोट कर।

जो वैद्य तथा व्यापारी केन्द्रीय बिकरी कर कानून के आधीन रजिस्टर्ड हैं, उन्हें अपने आर्डर के साथ 'सी' फार्म हस्ताक्षर करके अवश्य भेजना चाहिये। इस प्रकार उनके आर्डर पर केवल एक प्रतिशत केन्द्रीय बिकरी कर लगेगा। आर्डर के साथ 'सी' फार्म न आने पर अनिवार्य रूप से केन्द्रीय बिकरी कर ७ प्रतिशत के हिसाब से लिया जायगा। कृपया ध्यान रखें।

२. एजेण्टों को अधिक सुविधा देने के उद्देश्य से फार्मेसी की प्रस्तुत औषधियों पर कमीशन दर १२॥ प्रतिशत से बढ़ा कर १५ प्रतिशत कर दी गई है। आशा है एजेण्ट महानुभाव इस सुविधा से पूर्ण लाभ उठाते हुये अधिकाधिक बिकरी करने में प्रयत्न शील होंगे। एजेन्सी नियम दूसरे पृष्ठ पर देखें।

मैनेजर

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

अध्यक्ष–पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी,

६०-६१, अकाली मार्केट, अमृतसर

दूसरा पता-

पंजाब आयुर्वैदिकफार्मेसी, खारी बावली, देहली।

१०५वीं आवृत्ति, } संस्थापित १९१९ [१ अप्रैल १९६०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एजेन्सी के नियम

(१) आयुर्वेदिक रस, भस्म, आसव, अरिष्ट, घृत, तैल, पाक, अवलेह, चूर्ण, गुटिका आदि औषधियां ही एजेन्सी में दी जायेंगी। (बनस्पतियां, खनिज तथा प्राणिज द्रव्य, क्षार और शुद्ध वस्तुयें इसमें शामिल नहीं)

(२) कोई भी विक्रेता या वैद्य जो एक बार १००) रु० की उक्त बनी औषधियों का आर्डर देगा वह एजेंयट स्वीकृत होगा।

(३) कम्पनी की आविष्कृत औषधियां जो व्यक्ति १००) रु० की एक बार खरीदेगा वह भी एजेंयट स्वीकृत होगा।

(४) जो व्यक्ति प्रस्तुत और आविष्कृत दोनों का मिश्रित आर्डर १००) रु० का देगा वह भी एजेंयट स्वीकृत होगा।

(५) मंगाई हुई औषध ६ मास तक एजेंयट से न बिक सके तो ऐसी औषध—यदि ठीक पैकिंग में बन्द हो—एजेयट अपने खर्च पर उसे वापस कर उसके स्थान पर अन्य औषध मंगा सकता है।

(६) सूची पत्र में अङ्कित जिस वजन के मूल्यका पैकट नियत होगा उतनेही वजन के पैकट उस मूल्य पर भेजे जाएंगे। छोटे वजनके पैकट—जिनकामूल्य अधिक है यथा ढाई ढाई तोला, पांच पांच तोला के पैकट, २० तो० के पैकट के भाव पर नहीं भेजे जाएंगे। १ तो० का मूल्य ५ तो० का ⅕ होगा। १ तोला से कम का पैकट मंगाने पर १ तोला के हिसाब से मूल्य लगाकर प्रति पैकट उससे एक आना अधिक लिया जावेगा।

(७) औषधियां वी० पी० पार्सल से या बैंक द्वारा भेजी जायंगी। उधार या जामन पर नहीं भेजी जाएंगी।

(८) १०००) रु० नकद जमानत जमा कराने पर माल उधार पर भेजा जा सकता है।

एजेंसी कमीशन दर और सुविधा

(१०) धारा नं० २ के अनुसार बनने वाले एजेयटों को कम्पनी की प्रस्तुत आयुर्वेदिक औषध पर १५ प्रतिशत।

(११) धारा नं० ३ के अनुसार बनने वाले एजेयटों को कम्पनी की आविष्कृत औषध पर २५ प्रतिशत।

(१२) धारा नं० ४ के अनुसार बनने वाले एजेयटों को कम्पनी की मिश्रित औषध पर १५ प्रतिशत।

(१३) जो व्यक्ति सौ रुपये का बना माल जब २ मंगावेगा पैकिङ्ग खर्च और गुडस ट्रेन का किराया फ्री होगा अर्थात F. O. R. जहां ग्राहक मंगावेगा। यदि ग्राहक पार्सल ट्रेन से माल मंगावेगा तो आधा किराया उसे देना होगा।

नोट—नं० १३ का यह नियम मद्रास तथा आन्ध्र राज्यों के ग्राहकों, एजयटों पर लागू न होगा।

(१४) ५०रु० अथवा अधिक के माल पर पैकिङ्ग खर्च माफ होगा। इससे कम माल मंगाने वालेको यह सुविधा नहीं दी जाएगी

(१५) एजेण्ट बन जाने पर बने माल के थोड़े से थोड़े आर्डर पर भी उक्त हिसाब से बराबर कमीशन मिलता रहेगा।

(१६) विज्ञापन के लिए हमारी फार्मेसी इस समय सिर्वाय सूचीपत्र के और साधन नहीं जुटाती। प्रचार का प्रबन्ध स्वयम् एजेण्ट अपने खर्च से कर सकता है।

विशेष बातें नोट करें

१. प्रत्येक आर्डर के साथ पेशगी आनी आवश्यक है। अथवा एकबार १०) रुपये स्थायी ग्राहक के रूप में जमा करा छोड़ें। उन्हें ग्राहक नम्बर मिल जायगा, ऐसे ग्राहक को फिर पेशगी भेजने की जरूरत न होगी

२. यहां से पैकिंग अच्छी तरह देखकर किया जाता है। पोस्ट या रेल कर्मचारियों की असावधानी से माल की जो हानि हो जाएगी उसकी जिम्मेवारी फार्मेसी की नहीं होगी। हां प्रामाणिक व्यक्ति के सामने बन्द माल का पैकिंग खोलने पर कोई माल कम होगा तो उसकी पूर्ति की जा सकती है।

३. जिन ग्राहकों के पास केन्द्रीय बिक्री कर का लाईसेंस हो वह कृपया आर्डर के साथ "सी" फार्म अवश्य भेज दिया करें।

मैनेजर

ग्रन्थ संकेत

० प्र० सु०	रस प्रकाशसुधाकर	फा० वि०	फार्मेसी विधि	रसे० सं०	रसेन्द्रसार संग्रह	र० यो० सा०	रसयोग-सागर
० वि०	यूनानी विधि	बृ० यो०	बृहदयोग-तरंगिणी	भै० र०	भैषज्य रत्नावली	रसा० सं०	रसायन संग्रह
ा० प्र०	आयुर्वेद प्रकाश	र० र० स०	रसरत्न-समुच्चय	वै० सा० सं०	वैद्यकसार संग्रह	च०	चरक
० प्र०	भावप्रकाश	शा० ध०	शार्ङ्गधर	र० चं०	रसचण्डांशु	वै० जी०	वैद्यजीवन
० रा० सु०	रसराज सुन्दर	यो० र०	योगरत्नाकर	च० द०	चक्रदत्त	र० हृ०	रसहृदय
० मृ०	वैद्यामृत	यो० त०	योगतरंगिणी	यो० चि०	योगचिन्तामणि	भा० र०	भारतीय रसायनशास्त्र
० का०	रसकामधेनु	सि० भै० म०	सिद्धभैषज्यमणिमाला	नि० र०	निघण्टु-रत्नाकर		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्जाब आयुर्वैदिक फार्मेसी अमृतसर

का

सूचीपत्र

साधारण मूल्य की भस्में

नाम	२० तो.	१० तो.	५ तो.
अकीक (यू० वि०)	१४—००	७—५०	४—००
अभ्रक वज्र (भा.प्र) २१ पु.	२०—००	१०—५०	६—००
अभ्रक श्वेत (र.रा.सु.)	५—००	३—००	१—६०
कान्तलोह भस्म (र.रा.सु.)	१२—००	६—७५	३—८०
कांस्य भस्म (आ.प्र.)	१२—००	६—७५	३—८०
कपर्दिका भस्म (आ.प्र.)	५—००	३—००	१—६०
कसीस भस्म (रसे. सं)	३—००	१—७५	१—००
कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म (वै.मृ.)	१४-००	७—५०	४—००
केकड़ा भस्म (यू.वि) रक्तष्ठीवने	१८—००	१०—५०	६—२५
जहर-मोहरा भस्म (यू.वि.)	५—००	३—००	१—६०
ताम्र सोमनाथी भस्म (र.रा. .)	२०—००	१०—५०	६—००
ताम्रकूपीपक्व भस्म (र.रा.सु.)	२०—००	१०—५०	६—००
तुत्थ भस्म (र०रा०सु०)	१०—००	५—५०	३—००
त्रिवंग भस्म (आ०प्र०) २१ पुटी	२८—००	१५—००	८—००
नागभस्म पीत (वृ ० यो०)	८—००	४—५०	२—६०
नागभस्म श्याम (र०का०)	१०—००	५—५०	३—००
नीलांजन भस्म (सुरमा) (आ०र०	८—००	४—५०	२—६०
प्रवालभस्म अग्निपुटी (आ० प्र०)	१८—००	१०—५०	६—२५
प्रवालभस्म चन्द्रपुटी (यू०वि०)	१८—००	१०—५०	६—२५
पीतलभस्म (आ. प्र.)	७—००	३—७५	२—००
वंगभस्म हरितालेन (आ. प्र.)	१८—००	१०—५०	६—२५
वंग भस्म श्वेत (र. रा. सु.)	१५—००	९—००	५—००
बेरपत्थर भस्म (यू० वि०)	१५—००	९—००	५—००
मण्डूरभस्म (र० रा० सु०)	७—००	३—७५	२—००
मृगश्रृङ्ग भस्म (शा. ध.)	७—००	३—७५	२—००
यशद भस्म (यो० र०)	१०—००	५—५०	३—००
रौप्यमाक्षिकभस्म (र० का०)	८—००	४—५०	२—६०
लोहभस्म हिंगुलाग्नियोगेन (आ०प्र०)	१८—००	१०—५०	६—२५
लोहभस्म स्वयमति (र. रा. सु.)	१४—००	७—५०	४—००
लोहभस्मवनस्प (फा. वि.)	१०—००	५—५०	३—००
शंखनाभी भस्म (र. का.)	४—००	२—५०	१—६०
संगजराहतभस्म (आ. प्र.)	४—००	२—५०	१—६०

नाम	२०तो.	१०तो.	५तो.
स्वर्णमाक्षिकभस्म (र. रा. सु.)	१०—००	५—५०	३—००
सीपभस्म (मोती) (र. रा. सु.)	१०—००	५—५०	३—००
सीपभस्म (र. रा. सु.)	४—००	२—५०	१—६०
सुरमा श्वेत भस्म (फा. वि.)	४—००	२—५०	१—६०
हरताल गोदन्ती भस्म (आ. प्र.)	३—००	१—७५	१—००

मूल्यवान् भस्में

मूल्यवान् भस्में	२॥तो.	१तो०
अभ्रक वज्र भ. (आ.प्र.) ६०,,	५—५०	२—५०
कहरवा भस्म (यू० वि०)	७—००	३—००
गोमेद भस्म (र.का.) मस्तिष्करोगे	२४—००	१०—००
तीक्ष्णलोह भस्म (फा० वि०) शक्तिवर्द्धक	७—००	३—००
तुरमली भस्म (फा० वि०) ,,		४८—००
दानायेफिरंगभस्म (यू०वि०)		८—००
नागभस्म (आ०प्र०) ५० पुटी	५—५०	२—५०
नीलमभस्म (र०का०) उन्मादे		१५—००
पन्नाभस्म (यू०वि०) मस्तिष्करोगे		१५—००
पुखराज भस्म (र०का०) हृद्रोगे		२०—००
फिरोजाभस्म (यू०वि०) हृद्रोगे		१२—००
फौलादभस्म अपूर्व (फा०वि०) शक्तिवर्धने		१२—००
मयूर पुच्छभस्म (र० रा० सु०) छर्दिरोगे	७—५०	३—५०
माणिक्यभस्म (यू० वि०) हृद्रोगे		९—००
रजतभस्म (चांदीभस्म) हरितालेन	१४—००	६—००
रजतभस्म (चांदी भ०) पारदयोगेन	१४—००	६—००
राजावर्तभस्म (यू०वि०) उन्मादरोगे		६—००
लहसुनिया भस्म (फा. वि.)		१०—००
वैक्रांतभस्म (रसा. सं.) मस्तिष्करोगे	४—५०	२—००
सर्पास्थि भस्म (फा. वि,) कण्ठमालाव्रणे	७—००	३—००
संगयशव भस्म (यू. वि.)	४—५०	२—००
संखियाभस्म (फा. वि.) शक्तिवर्द्धने	१२—००	५—००
हरताल पत्राख्य भस्म		५—००
हिंगुलभस्म (फा. वि.) क्लीवत्वरोगे	१२—००	५—००
मुक्ता भस्म (र०का०) शक्तिवर्द्धने	९०—०० तोला	८—०० माशा
मुक्ता भस्म चन्द्रपुटी (यू०वि०)	,, ,, ,,	,, ,, ,,
स्वर्णभस्म (शा. ध.) रसायने	१८—०० प्रति माशा	
हीरा (वज्र) भस्म	४०—०० प्रति रत्ती	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस, रसायन, गुटिका, गुग्गुल आदि

रस	२० तो.	१० तो.	५ तो.
अग्निकुमार वृ. (रसे. सं.) अजीर्णे	१८—००	९—५०	५—००
अग्निसून (रसा. सं.) ग्रहण्याम्	१४—००	७—५०	४—००
अग्निमुख (नि. र.) अग्निमांद्ये	१०—००	५—५०	३—००
अग्निरस (र. र. स.) कासे, उरःक्षते	१०—००	५—५०	३—००
अग्नितुण्डीरस (भै. र.) उदर रोगे	१४—००	७—५०	४—००
अजीर्णकण्टक (भै. र.) अजीर्णे	१८—००	९—५०	५—००
अजीर्णारि (र. रा. सु) अजीर्णे	१४—००	७—५०	४—००
अतिविषादिगुटिका (र. चं) बालरोगे	७—००	३—७५	२—००
अपचिविनाशी (फा. वि.) अपचिरोगे	१४—००	७—५०	४—००
अश्वकंचुकी (वै. सा. सं.) सर्वरोगे	२०—००	१०—५०	६—००
अर्शोघ्नी वटी (फा. वि.) रक्तार्शे	१०—००	५—५०	३—००
अश्विनीकुमार (अनु. तं.) सर्वरोगे	२०—००	१०—५०	६—००
अहिफेन मुक्तिदाता फा. वि.)	२८—००	१५—००	८—००
आनन्दभैरव (रसेन्द्र) ज्वरातिसारे	१४—००	७—५०	४—००
आमवातारिरस (भै. र.) आमवाते	१८—००	९—५०	५—००
आमवातेश्वर (भै. र.) "	१८—००	९—५०	५—००
आरोग्यवर्द्धनी (र. र. स) कुष्ठाधिकारे	१८—००	९—५०	५—००
इच्छाभेदी (रसे. सं.) उदररोगे	१४—००	७—५०	४—००
उपदंशकुठार (र. चं.) उपदंशरोगे	१८—००	९—५०	५—००
एलादिवटी (च. द.) कासाधिकारे	४—५०	२—७५	१—६०
एकांगवीर (र. रा. सु) वातरोगे	१८—००	९—५०	५—००
कनकसुन्दर (रसे. सं.) अतिसारे	१४—००	७—५०	४—००
कफकेतु (रसे. सं) कफाधिकारे	१४—००	७—५०	४—००
कफचिन्तामणि (रसे. सं) कफाधिकारे	१८—००	९—५०	५—००
कफकुठार (र. प्र. सु) श्लेष्मरोगे	१८—००	९—५०	५—००
कर्पूरादिरस (र. रा. सु) प्रमेहाधि.	१४—००	७—५०	४—००
क्रव्यादरस वृ. (र. रा. सु) उदररोगे	२८—००	१५—००	८—००
कांचनारगुग्गुल (शा. ध) कण्ठमाला	७—००	३—७५	२—००
कांकायनी गुटिका (यो. र.) अर्शरोगे	७—००	३—७५	२—००
कामदुघा (रसा. सं.) अम्लपित्ते	२०—००	१०—५०	६—००
कासहर (फा. वि.) कासरोगे	७—००	३—७५	२—००
कालारिरस (यो. र.) वातव्याधौ	१८—००	९—५०	५—००
किशोर गुग्गुल (भै. र) वातरक्ते	७—००	३—७५	२—००
कृमिधूलिजलप्लव (रसे. सं.) कृमिरोगे. १	१८—००	९—५०	५—००
खदिरादिवटी (भै. र.) मुखरोगे	१०—००	५—५०	३—००
गगनादिलोह (रसे. सं) सोमरोगे	१८—००	९—५०	५—००
गर्भपालरस (र. चं) गर्भिणीरोगे	१४—००	७—५०	४—००
गर्भविनोदरस (रसे. सं) गर्भिणीरोगे	१४—००	७—५०	४—००
गर्भचिन्तामणि (भै. र.) सूतिकारोगे	२४—००	१४—००	७—४०
गन्धकवटी (र. रा. सु.) जठररोगे	१०—००	५—५०	३—००
गन्धकरसायन (रसे. सं) रक्तविकारे	२०—००	१०—५०	६—००
गन्धर्व रस (र. र. स) कम्पवाते	१८—००	९—५०	५—००
गुल्मकालानल (भै. र.) गुल्मे	१४—००	७—५०	४—००
गुल्मनाशनरस (र. र. स.) गुल्मे	१४—००	७—५०	४—००
गुल्मारिरस (र. का.) गुल्माधिकारे	२०—००	१०—५०	६—००
ग्रहणीकपाट (र. रा. सु) ग्रहण्याम	२०—००	१०—५०	६—००
गोक्षुरादिगुग्गुल (यो. र.) प्रमेह	७—००	३—७५	२—००
चतुर्मुख रस (फा. वि.) सन्निपाते	२५—००	१४—००	७—४०
चन्दनादिलोह (भै. र.) जीर्णज्वरे	२०—००	१०—५०	६—००
चन्द्रप्रभावटी (शा. ध) प्रमेहाधिकारे	१२—००	६—५०	३—६०
चन्द्रकला (भै. र.) प्रमेहाधिकारे	१८—००	९—५०	५—००
चन्द्रामृत लोह (भै. र.) जीर्णकासे	१५—००	८—००	४—४०
चित्रकादि वटी (चक्र) अजीर्णे	८—००	४—५०	२—६०
ज्वरघ्नी वटी (र. र. स.) ज्वरे	१३—००	७—००	३—६०
ज्वरमुरारि (भै. र.) सन्निपाते	१५—००	८—००	४—४०
ज्वरार्यभ्रम् (भै. र.) जीर्णज्वरे	१४—००	७—५०	४—००
ज्वरांकुशचोक्युक्त (शा. ध.) विषमज्वरे	१४—००	७—५०	४—००
ज्वरांकुश वृ. (भै. र.) ज्वराधिकारे	१४—००	७—५०	४—००
ताम्र पर्पटी (रसे. सं.) ग्रहण्याम्	२०—००	१०—५०	६—००
त्वक्रोगान्तकवटी (फा. वि.) चर्मरोगे	१०—००	५—५०	३—००
त्रयोदशांगगुग्गुल (भै. र.) वातव्याधौ	१०—००	५—५०	३—००
त्रिभुवनकीर्ति (यो. र.) ज्वरे	१५—००	८—००	४—४०
त्रिपुर भैरव (र. रा. सु.) नवज्वरे	१४—००	७—५०	४—००
दुर्जरजलजेता (र. च.) अजीर्णाधिकारे	१४—००	७—५०	४—००
दुग्धवटी नं. २ (भै. र.) ग्रहण्याम्	१४—००	७—५०	४—००
धात्रीलोह (रसे. सं.) कामलायाम्	१८—००	९—५०	५—००
नवायसलोह (र. रा. सु.) पाण्डुरोगे	१८—००	९—५०	५—००
नारायणज्वरांकुश (यो. र.) ज्वरे	१४—००	७—५०	४—००
नाराचरस (रसे. स.) उदररोगे	१४—००	७—५०	४—००
नित्यानन्द (भै. र.) श्लीपदे	१८—००	९—५०	५—००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस	२०तो.	१०तो.	५तो०
नित्योदित रस (रसे. सं.) अर्शरोगे	१४-००	७-५०	४-००
नृपतिवल्लभरस(र.रा.सु.)ग्रहण्याम्	१८-००	९-५०	५-००
पंचामृत पर्पटी(रसे.सं.)ग्रहण्याम्	२५-००	१४-००	७-४०
पंचवक्र रस (रसे.सं.) सन्निपाते	१४-००	७-५०.	४-००
प्रतापलंकेश्वर(वृ.यो.)सूतिकारोगे	१९-००	१०-००	५-४०
प्रदरान्तकलोह(फा.वि.)प्रदरानुभूत	२५-००	१४-००	७-४०
प्रदरारिवटी (फा. वि.) स्वेतप्रदरे	१५-००	८-००	४-४०
प्रदररिपु (रसे.सं.) प्रदरे	१५-००	८-००	४-४०
प्राणदागुटिका (भै. र.) अर्शरोगे	७-००	३-७५	२-००
प्रमदानन्दरस (रसे.सं.) रसायने	२०.००	१०-५०	६-००
पुनर्नवागुग्गुल (भै.र.)शोथाधिकारे	७ ००	३-७५	२-००
पुनर्नवादिमण्डूर (भै.र.)पाण्डुरोगे	१०-००	५-५०	३-००
बालरस(र.रा.सु.) बालरोगे	१४-००	७-५०	४-००
बालशोषान्तकवटी(फा.वि.)बालशोषे	१४-००	७-५०	४-००
बोल पर्पटी (रसा.सं.) रक्तपित्ते	२०-००	१०-५०	६-००
बोलबद्धरस(वृ.यो.त.)अर्शाधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
मण्डूरवटी(भै.र.)पाण्डुरोगे	१०-००	५-५०	३-००
मरिचादि वटी(शा.ध.) कासरोगे	७-००	३-७५	२-००
मृत्युञ्जय रस(भै.र.) सन्निपाते	१२-००	६-५०	३-६०
मृत्युञ्जयलोह(रसे.सं.)उदराधिकारे	१८-००	९-५०	५-००
मृतप्राणदायी रस(नि.र.) ज्वरे	२०-००	१०-५०	६-००
योगराज गुग्गुल महान् १। लक्ष चोट— समस्त धातुयुक्त (शा. ध.) वातव्याधौ	२०-००	१०-५०	६-००
योगराज गुग्गुल साधारण(शा.ध.)	४-५०	२-७५	१-६०
यकृदरिलोह वृ.(भै.र.)यकृताधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
रजःप्रवर्तिनी (भै.र.) ऋतुकष्टे	१४-००	७-५०	४.००
रसचन्द्रिकावटी(रसे.सं.)शिरोरोगे	१८-००	९-५०	५-००
रक्तपित्तकुलकण्डन(र.रा.सु.)रक्तपित्ते	२५-० ०	१४-०	७-४०
रसमाणिक्य(तालवाला)रक्तविकारे	१८-००	९-५०	५-००
रामबाणरस(भै.र.) अजीर्णाधिकारे	१०-००	५-५०	३-००
राजचण्डेश्वर(र.चं.) सर्वरोगे	१८-००	९-५०	५-००
लवंगादि वटी(वै.जी.) कासरोगे	१०-००	५-५०	३-००
लक्ष्मीनारायणरस(र.चं.)वातरोगे	२५-००	१४-०	७-४०
लक्ष्मीविलासवृ.(र.रा.सु.)शिरोरोगे	२०-००	१०-५०	६-००

रस	२०तो.	१०तो.	५तो.
लशुनादि वटी(शा.ध.)वातरोगे	७-००	३-७५	२-००
लीलावतीवटी(र.रा.सु.)उदररोगे	१५-००	८-००	४-४०
लोकनाथरस वृहत्(शा. ध.) क्षये	१४-००	७-५०	४-००
लोकनाथ रस लघु(शा. ध.)क्षये	१०-००	५-५०	३-००
लोहरसायन (वं.से.) रसायने	२८-००	१५-००	८-००
लोह पर्पटी (रसे.सं.) सर्वरोगे	२०-००	१०-५०	६-००
वातगजांकुश(रसे.सं.) वातरोगे	२५-००	१४-००	७-४०
वातविध्वंस(वृ.यो.त.) वातव्याधौ	२५-००	१४-००	७-४०
विश्वतापहरणरस(र.रा.सु.)सन्नि.	२०-००	१०-५०	६-००
विषमुष्टिवटी(फा.वि.) आमवाते	१४-००	७-५०	४-००
व्योषादि वटी(यो. चि.) कासे	७-००	३-७५	२-००
श्वासकुठार वृ.(र.रा.सु.)श्वासे	१५-००	८-००	४-४०
शम्बूकादिवटी(भै.र.)शूलाधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
श्वासारिलोह(भै.र.)श्वासे	१४-००	७-५०	४-००
श्वासान्तकरस (फा.वि.) श्वासे	१९-००	१०-००	५-४०
शिरःशूल वज्रारि(भै.र.)शिरःशूले	१४-००	७-५०	४-००
शीतगजकेसरी(भा.प्र.)शीतज्वरे	१४-००	७-५०	४-००
शीतारिरस(भै.र.) ज्वराविकारे	१४-००	७-५०	४-००
शूलवज्रणी(रसे.सं.)शूलाधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
शूलगजकेशरीताम्र(शा.ध.) शूलरोगे	२५-००	१४-००	७-४०
शूलगजकेशरीवटी(फा.वि.)पार्श्वशूले	१२-००	६-५०	३-६०
शृङ्गाराभ्ररस(रसे.सं)कासे जीर्णज्वरे	१८-००	९-५०	५-००
शोथ कालानल(भै.र.) शोथे	१०-००	५-५०	३-००
शंखवटी वृहत्(भै.र.)अग्निमान्द्य	८-००	४-५०	२-६०
सर्वज्वरहरलोह(र.सं.)ज्वराधिकारे	१९-००	१०-००	५-४०
सिद्धप्राणेश्वर(रसे.सं.)ज्वरातिसारे	१८-००	९-५०	५-००
सिंहनाद गुग्गुल(यो.चि.)वातरक्ते	७-००	३-७५	२-००
सुखविरेचनी(फा.वि.)सुखविरेचने	१४-००	७-५०	४-००
सूतिकाविनोद(भै.र.)सूतिकारोगे	१४-००	७-५०	४-००
सौभाग्य वटी (भै.र.) कासज्वरे	१४-००	७-५०	४-००
संजीवनी वटी(शा. ध.) अजीर्णे	८-००	४-६०	२-६०
स्मृतिसागर(यो.र.)अपस्मारे	२८-००	१५-००	८-००
स्वच्छन्द भैरव(भै.र.)ज्वराधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
हुताशनरस(यो.र.)श्लेष्मरोगे	१४-००	७-५०	४-००
हृदयार्णव रस(यो.र.) हृद्रोगे	१४-००	७-५०	४-००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्यवान रस, रसायन, गुटिका आदि

नाम वस्तु	२॥ तो.	१तो.
अमीर रस(सि.भै.म.)उपदंशरोगे	१३-००	६-२५
कस्तूरी भैरव वृ.(भै.र.) ज्वराधिकारे		२८-००
कस्तूरीभूषण (भै. र.) सर्वरोगे		२०-००
कामदुधामोतीयुक्त(रसा.सं.)अम्लपित्ते	१८-००	८-००
कालकूट रस (वै.चि.) सन्निपाते	७-००	३-००
कुमारकल्याण (भै. र.) बालरोगे		४८-००
केशरादिवटी(फा.वि.)जीर्णप्रतिश्याये	९-००	४-००
कृष्णमाणिक्यरस (र.रा.सुं) कुष्ठाधिकारे	९-००	४-००
चिन्तामणि चतुर्मुख(भै.र.)सर्वरोगे	२४-००	१०-००
जयमंगलरस (भै.र.) ज्वराधिकारे		२४-००
जीर्णज्वरारिरस (फा.वि.)जीर्णज्वरे	४-५०	२-००
जौहररसकपूर(फा.वि.)उपदंशरोगे	१३-००	६-२५
जौहर त्रिविष(फा.वि.)उपदंशरोगे	१३-००	६-२५
जौहर दारचिकना (फा.वि.)उपदंशरोगे	१३-००	६-२५
जौहरसंखिया (फा.वि.) शक्तिवर्द्धने	९-००	४-००
जौहर संखिया पीलेका, वातरोगे	९-००	४-००
जौहर हरतालपत्राख्य, कुष्ठरोगे	१२-००	५-००
जौहर नौसादर (स्वर्णवंग का) उदरविकारे	१-१०	०-५०
ताप्यादिलोह(रसे.सं.)रसायने	९-००	४-००
तालसिन्दूर(रसा. सं.) रक्तविकारे	१२-००	५-००
त्रिवंगवटी (फा.वि.) स्वप्नदोषे	९-००	४-००
नागरस कस्तूरीयुक्त(र.च.)श्वासे	१८-००	८-००
प्रवालपंचामृत(यो.र.)गुल्माधिकारे	२७-५०	१२-००
पुष्पधन्वारस(भै.र.)रसायने	७-००	३-००
पुटपक्वविषमज्वारन्तकलोह(भै.र.)ज्वराधिकारे	२४-००	१०-००
पूर्णचन्द्ररस वृ. (रसे.सं.)रसायनाधिकारे	२७-५०	१२-००
बालार्क रस(रसा.सं.)बालरोगे	१८-००	८-००
मल्लसिन्दूर (रसा.सा.) सर्वरोगे	१२-००	५-००
मन्मथाभ्ररस (रसे.सं.) वाजीकरणे	९-००	४-००
मृगाङ्क स्वर्णसंयुक्त (शा.ध.) क्षये		६०-००
रसमाणिक्य(र.रा.सु.) कुष्ठाधिकारे	९-००	४-००

नाम वस्तु	२॥ तो.	१ तो.
रससिन्दूर द्विगुण (र.का.)	७-००	३-०
रससिन्दूरचतुर्गुणगन्धकजीर्ण	९-५०	४-०
रससिन्दूर षड्गुणगन्धकजीर्ण	१४-००	६-२
रसपर्पटीहिंगुलोत्थ(र.रा.सु.)ग्रहण्याम्	४-५०	२-०
रसपर्पटी विशुद्ध रसेन ,, ,,	९-००	४-०
राजमृगाङ्क (शा.ध.) क्षयरोगे		४८-०
लक्ष्मीनारायण वृ.(रस.योग.)रत्नोपरत्नयुक्त		८४-०
वसन्तकुसुमाकर (शा.ध.) सर्वरोगे		३६-०
विजयपर्पटी (भै.र.) ग्रहण्यधिकारे		२०-०
विषमज्वरान्तकलोह(भै.र.) ज्वराधि.	४-५०	२-०
वृ०वातचिन्तामणि (भै. र.) वातव्याधौ		३६-००
वंगेश्वर वृहत (भै.र.) प्रमेहाधिकारे		२४-०
शिलासिन्दूर (र.रा.सुं.) कुष्ठरोगे	१२-००	५-००
शीतवातेश्वर(फा.वि.)हृदयावसादे	४-५०	२-००
शीतांकुश रस (र.प्र.)चातुर्थिकज्वरे	४-५०	२-००
समीरपन्नग रस(र.चं.) वातरोगे	१४-००	६-२५
सर्वांगसुन्दर (र.सं.) शूलरोगे	९-००	४-००
सिद्धमकरध्वज (पिष्ट) स्वर्णभस्मयुक्त		७२-००
सूतशेखर(नि.र.) अम्लपित्ताधिकारे		१२-००
स्वर्णचन्द्रोदय षडगुणगन्धकजीर्ण		३०-००
स्वर्ण पर्पटी (र.रा.सु.) क्षयाधिकारे		२४-००
स्वर्णवसन्त मालती (भै.र.) क्षयरोगे		३०-००
स्वर्णवंग नं० १ (र.रा.सु.) प्रमेहे	७-००	३-००
पारे की गोली (वाजीकर)एक गोली का मूल्य	४-००	

अंजन तथा नेत्रवर्ती

नाम वस्तु	५ तो.	१ तो.
चंद्रोदयावर्ती (शा.ध.) नेत्ररोगे	२-५०	०-६५
चन्द्रप्रभावर्ती(यो.र.) नेत्ररोगे	२-५०	०-६५
नागार्जुनीवर्ती (भै.र.) ,, धुन्धजालायां	५-००	१-२५
मुक्तादि महाञ्जन (यो.र.) नेत्ररोगे	१०-००	२-२५
नयनामृत सुरमा (शा.ध.) ,, ज्योतिवर्द्धने	११-००	२-५०
सुरमाज्योतिवर्द्धक(फा.वि.) ज्योतिवर्धने	१८-००	४-००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसव अरिष्ट

नाम आसव	१०पौं.	५पौं.	२पौं.
अमृतारिष्ट (आयु. वे. सं) ज्वरे	२२–५०	११–५०	५–००
अर्जुनारिष्ट (भै.र.) हृद रोगे	२२–५०	११–५०	५–००
अशोकारिष्ट ,, ,, प्रदरे	२२–५०	११–५०	५–००
अश्वगन्धारिष्ट (वं. से.) प्रमेहे	२२–५०	११–५०	५–००
अभयारिष्ट (भै. र.) अर्शरोगे	२२–५०	११–५०	५–००
कुटजारिष्ट ,, अतिसारे	२२–५०	११–५०	५–००
खदिरारिष्ट(भै. र.) कुष्ठरोगे	२२–५०	११–५०	५–००
ीरकाद्यरिष्ट (भै. र.) प्रसूतरोगे	२२–५०	११–५०	५–००
शमुलारिष्ट (शा.ध) प्रसूतरोगे	२४–००	१३–५०	६–००
शमूलारिष्ट (कस्तूरीयुक्त),,	३६–००	१९–००	८–००
ाचारिष्ट (शा. ध.) क्षये	२२–५०	११–५०	५–००
ोहितकारिष्ट (भै.र.) प्लीहारोगे	२२–५०	११–५०	५–००
द्मणारिष्ट (फा.वि)	३२–५०	१७–००	७–००
ारस्वतारिष्ट (भै.र.)मानसिकरोगे	२४–००	१३–५०	६–००
ेवाद्यरिष्ट(भै.र.)कुष्ठे,रक्तविकारे	२२–५०	११–५०	५–००
शीरासव (शा. ध.) रक्तपित्ते	२२–५०	११–५०	५–००
नकासव (भै. र.) श्वासरोगे	२२–५०	११–५०	५–००
ुमार्यासव (शा. ध.) उदररोगे	२४–००	१३–५०	६–००
न्दनासव (भै. र.) प्रमेहे	२२–५०	११–५०	५–००
ाक्षासव (शा. ध.) अर्शोदरे	२२–५०	११–५०	५–००
नर्णवासव (भै. र.) शोथे	२२–५०	११–५०	५–००
िप्पल्यासव (शा.ध.) अर्शे, गुल्मे	२४–००	१३–५०	६–००
ोहासव (शा. ध.) पाण्डुरोगे	२२–५०	११–५०	५–००
ध्रासव (गदनिग्रह) पाण्डु,अर्शे	२२–५०	११–५०	५–००

द्राव (र. का.) गुल्मे १०तो. के ४–५०, ५तो. के २–५०

सवनिर्माणार्थ किण्व (सुराबीज) ५ तोला का २–००

प्रसिद्ध अवलेह पाक

नाम वस्तु	२॥सेर	१सेर	१पाव
जावलेह (शा. ध.) अतिसारे	१६–५०	७–००	२–००
ाण्डाक्लेह (शा.ध.) रक्तपित्ते	१६–५०	७–००	२–००
कार्यवलेह (वं. से.) कासे	१६–५०	७–००	२–००
्यवनप्राशावलेह (च.) रसायने	१२–००	[illegible]	[illegible]
भार्गी गुड़(भै.र.)हिक्का,श्वासे	१६–५०	७–००	२–००
मदनानन्दमोदक (र. रा. सु.) वाजीकरणे		१९–००	६–००
मूसलीपाक (यो.चि.) क्लीवत्वे	३३–००	१४–००	४–००
वांसावलेह (भै. र.) क्षय,कासे	१६–५०	७–००	२–००
श्लेष्मान्तक अवलेह (फा. वि.) शुष्कश्वासे कासे		१४–००	४–००
सौभाग्यशुंठी(यो.चि.)प्रसूतारोगे	१६–५०	७–००	२–००
सुपारीपाक (यो. चि.) प्रदररोगे	२१–५०	९–००	२–५०
हरिद्रा खण्ड (भै.र.) शीतपित्ते	१६–५०	७–००	२–००
हरीतकी खण्ड ,, शूले	१६–५०	७–००	२–००

सिद्ध घृत

नाम वस्तु	१ सेर	४ औंस
फलघृत (चक्रदत्त) योनिरोगे	२४–००	३–५०
ब्राह्मीघृत (चक्रदत्त) रसायने	२०–००	३–००
महात्रिफलादि घृत (चक्रदत्त) नेत्र रोगे	२४–००	३–५०

सिद्ध तैल

नाम वस्तु	२पौंड	४औंस
अर्क तेल (शा. ध.) कुष्ठे	१०–००	१–५०
आमला तेल (फा. वि.) शिरोरोगे	१२–००	१–७५
अपामार्गक्षार तेल (भै. र.) कर्णवधिरतायां	१०–००	१–५०
इरिमेदादि तेल (शा. ध.) मुखरोगे	१०–००	१–५०
कासीसादि तेल (शा. ध.) अर्शरोगे	१५–००	२–००
केशराज तेल (फा. वि.) केशवर्द्धने	१२–००	१–७५
चन्दनादि तेल (भै. र.) जीर्णज्वरे	१५–००	२–००
दशमूल तेल (भै. र.) वातरोगे	१०–००	१–५०
ब्राह्मी तेल (फा. वि.) बुद्धिवर्धनार्थे	१५–००	२–००
भृंगराज तेल (भै. र.) क्षुद्ररोगे	१२–००	१–७५
महानारायण तेल (शा. ध.) वातरोगे	३०–००	४–००
मरिच्यादि तेल (चक्रदत्त) कुष्ठे	१२–००	१–७५
महालाक्षादि तेल (शा. ध.) जीर्णज्वरे	१५–००	२–००
विषगर्भ तेल (यो. र.) वातरोगे	१२–००	१–७५
शुष्कमूलाद्य तेल (धन्वन्तरि) कर्णस्रावे	१२–००	१–७५
षटबिन्दु तेल (चक्रदत्त) शिरोरोगे	१५–००	२–००
[illegible] तेल (शा. ध.) [illegible]	१२–००	१–७५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रीय प्रचलित चूर्ण

नाम वस्तु	१ सेर	२०तो.	५तो.
अजमोदादि चूर्ण (शा.ध.) वातरोगे	७-००	२-००	०-६५
अग्निमुख (वं. से.) अजीर्णाधिकारे	१२-००	३-५०	१-०५
अपचिविनाशी (फा.वि. कण्ठमालारोगे	१०-००	३-००	०-९०
अविपत्तिकर (वं.से.) अम्लपित्ते	७-००	२-००	०-६५
अष्टांगलवण (च.) अग्निमांद्ये	१२-००	३-५०	१-०५
अश्वगन्धादि (शा.ध.) वाजीकरणे	७-००	२-००	०-६५
अर्कलवण (वं.से.) उदररोगे	११-००	३-५०	१-०५
उलट कम्बल चूर्ण, ऋतुकष्टे	१०-००	३-००	०-९०
कामदेव चूर्ण (यो.र.) क्लीवत्वे	१०-००	३-००	०-९०
गंगाधर वृहत् (शा.ध.) अतिसारे	७-००	२-००	०-६५
गोक्षुरादि चूर्ण (वा.भ.) वाजिकरणे	१०-००	३-००	०-९०
चन्दनादि चूर्ण (यो.त.) प्रदरे, रक्तपित्ते	१०-००	३-००	०-९०
ज्वरनाग मयूर चूर्ण (भै.र.) सर्वज्वरे	२८-००	८-००	२-१५
तालीसादि चूर्ण (शा.ध.) ज्वरे, कासे	१२-००	३-५०	१-०५
दाड़िमाष्टक चूर्ण (शा.ध.) अरुचिरो	७-००	२-००	०-६५
न्यग्रोधादि चूर्ण (यो. र.)	७-००	२-००	०-६५
नारसिंह चूर्ण (च.द.) क्लीवत्वे	८-००	२-५०	०-८०
नारिकेल लवण (वं.से.) शूले	१२-००	३-५०	१-०५
पंचसम चूर्ण (शा.ध.) उदररोगे	७-००	२-००	०-६५
नारायण चूर्ण (शा.ध.) उदरविकारे	७-००	२-००	०-६५
प्रदरान्तक चूर्ण (फा.वि.) प्रदररोगे	७-००	२-००	०-६५
पुष्यानुगचूर्ण केसरयुक्त (भै.र.) प्रदरे	२६-००	७-००	२-००
महाखाण्डव (शा.ध.) अजीर्ण रोगे	१२-००	३-५०	१-०५
लवणभास्कर (शा.ध.) अग्निमांद्ये	१०-००	३-००	०-९०
लाईचूर्ण 'नायिका' (भै.र.) ग्रहण्याधिकरे	१०-००	३-००	०-९०
लवंगादि वृ. (शा.ध.) ज्वरे, कासे	१२-००	३-५०	१-०५
शिवाक्षार पाचन (फा.वि.) पाचने	१०-००	३-००	०-९०
सारस्वतचूर्ण (भै.र.) मस्तिष्क रोगे	८-००	२-५०	०-८०
सर्पगन्धा चूर्ण (ब्लडप्रेशर पर)	१२-००	३-५०	१-०५
स्वादिष्ट विरेचन (फा.वि.) मृदुरेचने	१०-००	३-००	०-९०
सितोपलादि चूर्ण (शा.ध.) कासे, क्षये	२४-००	७-००	२-००
सुदर्शनचूर्ण वृ. (शा.ध.) ज्वराधिकारे	१०-००	३-००	०-९०
सुदर्शन चूर्ण (चक्रिका)	१२-००	४-००	१-१५
हिंग्वाष्टक चूर्ण (शा.ध.) उदररोगे	१०-००	३-००	०-९०
हिंग्वादि चूर्ण (शा.ध.) उदररोगे	१०-००	३-००	०-९०
त्रिफला चूर्ण	७-००	२-००	०-६५
द्राक्षादि चूर्ण (यो. र.)	१०-००	३-००	०-९०

लेप और मरहम

नाम वस्तु	४०तो.	५तो.
अर्शघ्न मरहम, अर्शे	७-००	१-०
कालीमरहम, व्रणशोधनार्थे	३-००	०-५
दशांग लेप, विसर्प रोगे	५-००	०-७
नीली मरहम, व्रण रोपक	२-००	०-३
पीली मरहम, व्रण रोपक	२-००	०-३
पारदादिमरहम, जन्तुघ्न या कीटाणुनाशन	१४-००	२-०
श्वेत कुष्ठहरलेप, श्वित्र कुष्ठे	३-००	०-५
सिघ्महरलेप, सिघ्मरोगे, खर्जु रोगे	७-००	१-०

क्वाथ

नाम वस्तु	१ सेर	२०
दशमूल क्वाथ (शा.ध.) प्रसूतारोगे	१-७५	०-५
देवदार्व्यादि क्वाथ (शा.ध.) ज्वरे	२-५०	०-७
पुनर्णवादि क्वाथ (भै. र.) शोथ	२-५०	०-७
लघुमंजिष्ठादि क्वाथ ,, , रक्तविकारे	२-५०	०-७
महामंजिष्ठादि ,, ,, कुष्ठे	३-५०	१-०
महारास्नादि क्वाथ ,, वातरोगे	३-५०	१-०
सुदर्शन क्वाथ (शा.ध.) सर्वज्वरे	३-५०	१-०
हवन सामग्री	१-५०	०-४

फार्मेसी द्वारा प्रस्तुत शुद्ध वस्तुयें

शुद्ध वस्तु	१सेर	५तो.
कज्जली शुद्ध पारदसे		८.००
कान्तलोह	५.००	०.४०
कुचला	३.२५	०.२५
कुचलाचूर्ण	६.००	०.५०
गन्धकआमलासार	१०.००	०.७५
गुग्गुल	६.००	०.५०
जमालगोटा	२०.००	१.५०
तुत्थ	४.००	०.३०
दालचिकना		१०.००
धतूर बीज श्याम	८.००	०.६०
पारदअष्ट-संस्कारपूर्ण		१६.००
पारदहिंगुलोत्थ		१०.००
भल्लातक	३.००	०.२५
मण्डूर	१.५०	०.१५
मैनसिल	१८.००	१.२५

शुद्ध वस्तु	१सेर	५तो.
रस कपूर		१[illegible]
रसौंत	७.००	[illegible]
राजावर्त 'मशगूल'		२[illegible]
लोहचूर्ण रेतीका	४.००	
वंग	२०.००	
वज्राभ्रक (धान्याभ्रक)	५.००	
शंख टुकड़े	१.५०	
शंखनाभी	१.५०	
शिगरफ		
श्रृङ्गिक (काला)	८.००	
श्रृङ्गिकचूर्ण	१०.००	
सीप मोती	१०.००	
संखिया		
हरताल वर्की		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वानस्पतिक क्षार

नाम वस्तु	२०तो.	५तो.	नाम वस्तु	२०तो.	५ तो.
…मार्ग क्षार	३-००	१-००	पलाश क्षार	४-००	१-२५
„	३-००	१-००	पुनर्नवा „	४-००	१-२५
…ायण „	४-००	१-२५	मूली „	३-००	१-००
…ती „	४-००	१-२५	यव „	३-००	१-००
…टकारी „	३-००	१-००	वज्र „	५-००	१-५०
…ली „	३-००	१-००	वांसा „	३-००	१-००
…तुरु „	३-००	१-००	स्नुही „	४-००	१-२५
…ा „	३-००	१-००	सत्यानाशी „	४-००	१-२५
„	३-००	१-००	सज्जी „	१-००	०-२५

वानस्पतिक तेल व प्राणिज स्नेह

नाम वस्तु	१पौण्ड	२औं.	१तो.	नाम वस्तु	१पौण्ड	२औं.	१तो.
…यन तेल	७.००	१.१०	०.३०	धतूरा तेल			२.२५
…चीजापानी	५.००	०.८०	०.२५	नीम तेल	३.००	०.५०	०.२०
… विलायती	२०.००	३.००	०.७५	बादामरोगन	१५.००	२.००	०.४५
…यल आगरा	१.५०	०.३०		बावचीतेल	६.००	१.२५	०.३०
… तेल		४.००	१.००	बिरोजा तेल	८.००	१.२५	०.३०
…खास रोगन	७.००	१.१०	०.३०	बिरोजा तै.वि.	१४	२.००	०.५०
… रोगन	३.००	०.६५	०.१६	भिलावा तेल		२.००	०.५०
…ल मोंगरा	५.००	०.७५	०.२०	मालकंगनीतेल	८.५०	१.२५	०.३०
…गोटा तेल	४०.००	६.००	१.५०	यूक्लिप्टसआइल	७.००	१.१०	०.३०
…ल तेल	३०.००	४.५०	१.२५	रीछ की चर्बी	५.००	०.७५	
…न तेल	६.००	१.००	०.३०	लौंगतेल	२५.००	३.५०	१.००
…रक तेल	८.००	१.२५	०.३५	वराहकी चर्बी	५.००	०.७५	
…पीन तेल	१.००	०.२०		सूस मछलीकातेल		४.५०	१.००
…तचीनीतेल	३०.०	४.५०	१.२५	सौंफतेल	२४.००	४.००	१.००
				सांडेकातेल			३.००
				चन्दनतेल		९.००	२.००

विषोपविष

निम्नलिखित विष मंगाते समय लाइसेन्सदार अपने लाइसेन्स का …र व पूरा २ पता, डिवीजन के साथ दें तथा डाक्टर व वैद्य …दिय पत्र में यह शब्द अवश्य लिखें कि "हम व्यवहार के लिये …ते हैं", तभी माल भेजा जायगा।

नाम विष	१ सेर	५तोला	नाम विष	१सेर	५तो
…ला	१-२५	०-१२	धतूर बीज श्याम	८-००	०-६५
…या सफेद	१२-००	१-००	धतूर बीज सफेद	८-००	०-६५
…या खनिज	१५-००	१-२५	मीठातेलिया सफेद	८-००	०-६५
…या पीला	१५-००	१-२५	मीठातेलिया काला	९-००	०-७०
…या लाल	१५-००	१-२५	हरतालवर्कीबढ़िया	८०-००	६-००
…कपूर	९०-००	६-७५	हरतालवर्कीनं०१,	५४-००	३-७५
…र पपड़ी	९०-००	६-७५	हरतालवर्कीनं०२,	४०-००	३-००
…चिकना	९०-००	६-७५	हरताल वर्कीचूरा	[illegible]	२-५०

प्राणिज व खनिज द्रव्य

नाम वस्तु	१सेर	१तो०	नाम वस्तु	१ सेर	१तो.
अम्बर अशहब नं०१		३६-००			
अम्बर अशहब नं०२		२०-००	नौसादर डण्डा	२-००	
अभ्रकश्यामबढ़िया	२-५०		पन्ना नं० १		८-००
अभ्रकवज्र नं०२,	१-५०		पन्ना नं०२		५-००
अकीक दाना नं० १		१-५०	पन्ना खरड		२-००
अकीक दाना नं० २		१-००	प्रवालशाखा	४०-००	
अकीक दाना नं० ३		०-५०	प्रवाल मूल	२-००	
अकीक खरड	४-००		पारद	८०-००	
कस्तूरी(खुतन)दानेदार		१५०-००	पीतल चूर्ण	४-००	
कस्तूरी नैपाली		१४०-००	पत्थर का दिल		३-००
कस्तूरी काश्मीरी		१२०-००	पुखराज		८-००
कछुआ खोपड़ी	२-००		फिटकरी लाल	०-५०	
कसीस हरा	०-५०		फिटकरी श्वेत	०-६५	
कासीस लाल	४-२५		मधुश्वेत	४-००	
कान्तलोहग्वालियर	३-००		राजावर्त		२-००
केंचुवे धुलेनं.१,	५-००		फिरोजा		१०-००
कौड़ी पीली मोटी	४-००		वंग ईंट की	१३-००	
कौड़ी पीलीछोटी	२-२५		वीर बहूटी	९०-००	१-२५
गोरोचन असली नं० १		२०-००	बारासिंगा	१-००	
गोमेद			वेरपत्थर	३२-००	
जहरमोहराबढ़िया	१०-००	८-००	मुर्दासंग	३-००	
ज़हरमोहरानं.१;	५-०		मण्डूर पुराना	१-००	
ज़हरमोहरानं.२;	३-०		मैनसिल	४-५०	
जस्ता पटड़ी का	३-००		मैनसिल चूरा	३-००	
जस्ता फूला	३-७५		माणिक्य 'चूनी' नं० १		८-००
जंगार असली	१५-००		माणिक्य „ नं० २		४-००
जुन्द वेदस्तर		२-५०	माणिक्य „ नं० ३		२-५०
जोंक	४०-००		माणिक्य खरड		१.००
तुरमली बढ़िया		०-७५	मोतीबसरई नं० १		८०-००
ताम्रतारबिजली	६-००	२०-००	मोतीबसरई नं० २		७२-००
नखू (नख)	६०-००		मोती आस्ट्रेलियानं ०१		६०-००
नमक काला	०-३७	१-००	मोती आस्ट्रेलियानं० २		४२-००
„ विड	०-५०		मोती चावला बड़ादाना		४०-००
„ कांच	०-७५		मोती चावला छोटा दाना		४८-००
„ सांभर	०-२५		मोती वेडोल		३२-००
नाग (सीसा)	२-२५		मोती बिंधा हुआ		४०-००
नीला थोथा	२-००		मोती छिलका		८-००
नीलम नं० १		१२-००			
नीलम खरड		१-००			
नौसादर देशी	२-५०				

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम वस्तु	१सेर	१तो.
मोम देशी असली	६–००	
रूपामक्खी चतुष्कोण	३–५०	
रूपामक्खी(गोलदाना)	३–००	
रेगमाही	२८–००	०.३७
लोहचूर्ण रेतीका	२–००	
वैक्रान्त नं० १,	८–००	
वैक्रान्त नं० २,	३–००	
शिलाजीत पत्थर पा.	२–५०	
शिलाजीतपत्थर अ.	३–००	
शिलाजीत सूर्यतापी	३०–००	०.७५
शिलाजीतअग्नितापी	२४–००	०.६०
शोरा कलमी	१–५०	
शंख कीट		२.००
शंख टुकड़े	१–००	
शंखनाभी	१–५०	
संग सरमाही	२८–००	
सर्प की केंचुली		४.००

नाम वस्तु	१सेर
संग्रासक	८–००
सफेदा काशगरी	२–००
समुद्रफेन	४–५०
सरतान	६–००
सिंगरफ रूमी	८०–००
सिंदूर	२–५०
सीप मोती बाजारी	२६–००
सीप मोती असली	८–००
सुरमा काला	४–२५
सुहागा	२–००
सुहागा चौकिया	४–५०
सोना गेरू	०–७५
सोनामक्खी अ.नं.२,	१२–००
हरताल गोदन्ती बढ़िया	१–५०
हरतालगोदन्तीनं०२;	१–००
हरताल पीली	९–००
हाथी दांत बुरादा	२–००

आयुर्वैदिक तथा यूनानी वनस्पतियां

नाम वस्तु	१सेर
अकरकरा असली बारीक	१४०–००
अकरकरा मोटा	१००–००
अकाकिया	४–५०
अगर बुरादा	४–००
अतीस श्वेत कड़ु नं०१	३२–००
अतीस मीठी	८–००
अतिबला पंचांग (कङ्घी)	१–००
अनन्तमूल (बंगाल)	२–५०
अनन्तमूल (देशी)	१–००
अपराजिता (विष्णुक्रांता)	२–५०
अपामार्ग बीज	२–२५
अमलतास गूदा	०–५०
अम्बा हल्दी	१–५०
अम्लबेद गुच्छी (चूका)	३–००
अर्जुन त्वक्	०–७५
अरणी छाल	०–७५
अशोक छाल असली	२–००
असगन्ध नागौरी	२–००
अफतीमून	२८–००
अबरेशम	२४–००
अजवायन खुरासानी	२–००
अफसनतीन	१–००
अजवायन देशी साफ	१–५०
अजवायन दाना	१–००
अनारदाना	३–००

नाम वस्तु	१ सेर
अजमोद	०–७५
अष्टवर्ग	८–००
अंकोल छाल	२–००
अंकाल बीज	१–००
अंजीर मूल	२–००
अंजीर फलसूखे	३–००
अंजबार	०–७५
आंवला	०–५०
इक्षुमूल	०–७५
इन्द्रयव मीठे	१–२५
इन्द्रयव कड़वे	१–२५
इन्द्रायण मूल	१–२५
इन्द्रायण फल	१–००
इमली बीज	२–००
इलायची छोटी नं० १,	३०–००
,, ,, नं०२,	२५–००
इलायची बड़ी(डोडा)	४–५०
इलायची दाना	८–००
इरिमेद छाल	०–७५
ईसबगोल भूसी असली	५–५०
ईसबगोल दाना	१–५०
ईश्वर मूल	२–००
उटंगन बीज	३–५०
उन्नाब	४–००
उशवा मगरबी असली	९–५०
उलट कम्बल	७–००

नाम वस्तु	१ सेर	१तो.
उशक	३–००	
उस्तेखदूस	५–००	
ऊंटकटारा	०–७५	
ऊद सलीब	७–५०	
एरगडमूल	०–६५	
एरगड बीज	१–००	
एलवालुक फल	३–००	
एलुवा(मुसब्बर)असली	९–००	
ऋषभक(बहमनश्वेत)	४–००	
कचूर	१–५०	
कतृण (रोसाघास)	०–७५	
कदम्बछाल	०–७५	
कपित्थ फल	१–७५	
कपूर कचरी	१–००	
कमरकस नं.१	६–००	
कमरकस नं. २	३–००	
कमल केसर	६–००	
कनेर मूल	२–५०	
कत्था	१०–००	
कंकोल छाल	२–५०	
कंकोल बीज	३–५०	
कंचन फल बीज	८–००	
कचनार छाल	१–००	
कपित्थ फल	१–५०	
कबीला छना हुआ	४–००	
कश्मीरी पत्ता	२–५०	
कपूर देशी डली का	४५–००	
कपूरभीमसेनी असली		४–५०
,, ,, बाजारी		३–५०
कमल गट्टे	१–७५	
कमल फूल	३–००	
करंज पत्र	१–२५	
करंज बीज	१–५०	
कलिहारी(लांगुली)मूल	५–००	
कहरवाशमईनं. १;		२–००
कहरवा शमई नं.२		१–५०
कहरवा चूरा		१–००
कहरुबा खाका		०–५०
काकनासा(काकनज)	२–५०	
काकनासा(वाघनखी)	०–७५	
काकोली श्याममूसली	१–२५	
काकोली (बंगाल)	१०–००	
काकोली (देहरादून)	४–००	
कालमेघ	१–००	
काकजंघा पंचांग	०–७५	
काकड़ासिंगी	७–५०	
कालादाना	०–७५	

नाम वस्तु	१ सेर	१तो
कासनी बीज	१–७५	
कायफल	१–००	
कालीजीरी	२–५०	
काहू	१–५०	
कुकरौंधा	०–६५	
कुलंजन	२–००	
कुन्दरगोंद	२–२५	
कुटकी	४–५०	
कुठ मीठी	१–००	
कुष्ठ उत्तम नं०१;	८–००	
कुष्ठ ,, ,, २;	४–५०	
कुटज (कूड़ा) छाल	०–६५	
केसरमोंगरा काश्मीरी		१६.००
केसर तुरला		१६.००
कौंचबीज(कालेछोटे)	१–५०	
कंटकारी लघु पचांग	०–६५	
कंटकारी फल	१–५०	
कंटकारी वृहती पंचांग	०–६५	
कंकुष्ठ(उशारारेवन्द)	५५–००	
खतमी	२–००	
खब्बाजी	१–००	
खस (बम्बई)	१–५०	
खदिर छाल	०–६५	
खसखास	२–००	
खुरफा	२–२५	
खूबकलां	३–००	
गजपीपल	०–७५	
गम्भारी छाल	०–७५	
गन्ध प्रसारणी	०–७५	
गारीकून	२८–००	
गावजबां	२–००	
गिलोय	०–५०	
गुञ्जा श्वेत	५–००	
गुञ्जा लाल	१–५०	
गुग्गुल महिषाक्ष साफ	३–५०	
गुड़ ५०साल पुराना	८–००	
गुड़मार बूटी	१–००	
गुड़हल	६–००	
गुल गावजबां	२०–००	
गुलबनफशानं०१;	१०–००	
गुलबनफशा नं०२,	८–००	
गुल सुर्ख पेशौरी	६–००	
गुल सुर्खदेशी(पङ्खड़ी)	६–००	
गोखरू पञ्चाङ्ग	१–००	
गोखरू फल लघु	१–२५	
गोखरू फल वृहत	२–५०	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम वस्तु	१सेर
गोंदबबूल	४-००
गोंदकतीरा	४-५०
गोंद छुहारा	७-००
गोरखमुण्डी	०-६२
गोरखपान	१-२५
गौरीसर (सिलारा)	१-५०
गैंगेरन छाल	१-२५
चन्दन काष्ठ श्वेत	६-५०
चन्दन बूरा श्वेत	७-२५
चन्दन बूरा लाल	१-२५
चव्य (कृष्ण मिर्च मूल)	१-५०
चक्रमर्दबीज	०-६५
चन्द्रसूर (हालौं)	१-२५
चावल मोंगरा बीज	४-००
चाकसू	२-००
चित्रक मूल छाल	३-५०
चिड़िया कन्द	६-००
चिरायता	२-००
चिरौंजी	५-५०
चोकमूल पञ्जाब	२-००
चोपचीनी असली	६-५०
चोरक (ग्रन्थिपर्ण)	१-५०
जलपीपल	०-७५
जलनिम्ब	१-५०
जलापा	२०-००
जरिश्क मीठा	५-००
जवासा	१-००
जायफल	६०-००
जावित्री	६५-००
जामुन गुठली	०-५०
जीवक (हरा)	४-००
जीवपुत्रक (जियापोता)	१-५०
जीरा श्वेत	३-५०
जीराकाला असली नं. १,	१२-००
जीवन्ती (बंगाल)	३-५०
जूफा	४-००
जैपाल बीज(जमालगोटा)	४-५०
जंगली प्याज सूखा	१-५०
तज नं. १	३-५०
" नं. २	१-५०
तगर (सुगन्ध बाला मूल)	३-००
तालमखाना	२-००
तालीस पत्र असली	२-५०
तिंतडीक(समाक दाना)	२-५०
तुरञ्जबीन असली	५-५०
तुख्म रेहां	१-००
तुख्म कसूस असली	२-५०

नाम वस्तु	१सेर
तुख्म खिरनी	५-००
तुख्म धनन्तर	५-००
तुख्म बालंगा	२-५०
तुलसीपत्रअसली	४-००
तेजपत्र	०-७५
तेजबल बीज (कबाबा)	१-५०
तेजबल त्वक्	१-५०
तोदरी लाल	१४-५०
तोदरी श्वेत	२०-००
दन्तीमूल	१-२५
दरूनज अकरबी	५-००
दरियाई नारियल	१७-००
दशमूल चूर्ण (क्वाथ)	१-७५
दशमूल बिना कुटा	१-००
दालचीनी	१६-५०
दारूहल्दी (लकड़ी)	०-४०
दारुहल्दी बुरादा	१-५०
देवदारु	०-७५
देवदारु बुरादा	१-७५
देवदालीफल(बन्दालडोडा)	३-५०
द्रोणपुष्पी	०-७५
धवलबरुआ (चांदमरुआ)	१२-००
धतूरा पंचांग	०-७५
धातकी (धावेके) फूल	०-७५
धनियां	२-००
धमासा	१-००
धूपलकड़ी	२-००
नकछिकनी	१-५०
नगन्ध बावरी	१-५०
नागरमोथा	०-६०
नासपाल	०-७५
नागकेसर असली	३५-००
नागकेसर बाजारी दाना	२-५०
नागबला	०-७५
निर्गुण्डी पंचांग	१-००
निर्मली	१-२५
निम्बत्वक	०-५०
निंबोली नीम की	०-५०
निम्बफूल	१-५०
निर्विसी (जदवार)	१०-००
निसोत(त्रिवृता)	१२-००
नीलकण्ठी	२-००
नीलोफर फूल	२-००
पतङ्ग काष्ठ	१-७५
पतङ्ग बुरादा	३-००
पटोलपत्र	२-००

नाम वस्तु	१सेर
पद्मकाष्ठ (पद्माख)	०-५०
परस्योशां (हंसराज)	१-२५
पलास पापड़ा	०-७५
प्रसारणी	०-७५
पाटला त्वक्	०-५०
पाठा पंचांग	१-००
पाठा मूल(पाढ़ मूल)	१-००
पाषाण भेद	०-६५
पिप्पली लघु	१२-००
पिप्पली बृहत्	५-००
पिप्पली मूल नं० १	७-००
पिप्पली मूल नं. २;	५-००
पीपल जटा	३-००
प्रियंगू फल (बङ्गाल)	८-००
प्रियंगू (पञ्जाब) असली	१-५०
पित्तपापड़ा (शाहतरा)	०-७५
पियाबांसा	०-७५
पिपरमेन्ट६६)पौंड	२-०० तो०
पृश्निपर्णी लम्बा पत्रसेर	३-००
पृश्निपर्णी	१-००
पुनर्नवा मूल	१-५०
पुष्कर मूल	४-७५
पुदीना पंचांग	१-००
पुदीना जंगली	०-७५
फरफीऊन बिलायती १पौंड	२-००
फालसा छाल	१-००
फिन्दक	३-५०
फिरंजमुश्क	२२-००
बच मधुर	३-५०
बच मधुर बारीक	३-००
बला पञ्चांग (खेरटी)	०-७५
बहमन सफेद	४-००
बहमन लाल	१०-००
बहुफली	०-७५
बच तीक्ष्ण	०-७५
बकायन छाल	०-५०
बकायन फल	०-७५
बेबूल छाल	०-५०
बरना छाल	२-००
बहेड़ा	०-५०
बृद्धि (सालब कसेरू)	४-००
ब्रह्म दण्डी	०-७५
ब्रह्मीबूटी धुली हुई	२-००
ब्रह्मीबूटी	१-५०
बराहीकन्द	१-००
बावची	०-६५
[illegible]	१५-००
बालछड़ (बिल्लीलोटन)	३-५०

नाम वस्तु	१सेर
बादरंजबूया	०-५०
बादावरद	८-००
बायविडंग	१-५०
बासा मूल त्वक्	३-००
बांसा पत्र (पञ्चाङ्ग)	०-५०
बांसा मूल	०-७५
वट जटा	०-७५
विजया बीज मोटे	१-२५
बिहीदाना	१०-००
विदारी कन्द	१-२५
बिधारा बीज	१६-००
बिधारा मूल	१-०
बिरोजा सूखा	१-७५
बिरोजा गीला	१-५०
बिस्फायज	२-००
बिजयसार छाल	१-००
विजयसार लकड़ी	०-७०
विजयसार गोंद (दमुलखैवन)	१००-०
बिल्वछाल	०-७५
बीजाबोल (मुरमकी)	१३-००
बीजबन्द (काले)	१-५०
बीजबन्द लाल	०-७५
बेलगिरी	०-५०
बोजीदान	१०-००
बंशलोचन नं. १;	८०-००
बंसलोचन नं. २	६०-००
बंशलोचन नं. ३	४५-००
भारंगी	०-७५
भांगरा	१-५०
भिलावां	०-५०
भूआंवला	१-५०
भोजपत्र	१-२५
मकोय दाना	२-५०
मगज कद्दू	३-५०
मगज खरबूजा	५-५०
मगज खीरा	५-५०
मगज तरबूज	१-५०
मगज बादाम	१२-००
मस्तगी रूमी असली	१८-००
मत्स्याक्षी	१-५०
मयूर शिखा	१-५०
ममीरी मूल	६-००
महाबला (सहदेवी)	०-७५
महामेदा	८-००
मूषाकर्णी असली	२०-००
मरोड़फली	०-६५
मैनफल	१-००
महुआ फूल	१-५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम वस्तु	१ सेर
माजूफल	५—००
माल कंगनी	२—००
माषपर्णी	१—००
माईं	१—५०
मिर्च श्वेत	६—००
मिर्च काली नं० १	७—५०
मुनक्का काला (असली)	३—५०
मुश्कतरामसी	३—००
मुश्क वाला गांठ	३—००
मुद्गपर्णी	०—७५
मुलहठी	२—००
मूर्वा	२—००
मूसली श्वेत	१५—००
मूसली श्याम	१—००
मेदा (शकाकल)	६—००
मेढ़ासिंगी	२—००
मैदा लकड़ी	०—५०
मोचरस असली	३—००
मौलश्री छाल	२—५०
मंजीठ	३—५०
रतन जोत	२—७५
रसौत	३—००
रास्नापत्र असली	२—००
रास्ना मूल बंगाल	१—७५
राल	४—५०
रुद्रवन्ती	२—००
रेणुका बीज	२—५०
रेशा खत्मी	४—५०
रेवन्द खताई	४५—००
रेवंद चीनी	२—००
रोहितक छाल	१—००
लता कस्तूरी	७—००
लवंग (लौंग)	२८—००
लाख पीपल	२—५०
लाजवन्ती बीज (छोटे)	४—००
लोध पठानी	०—७५
लोबान कौड़िया	८—००
शरपुंखा	०—६५
श्योनाक छाल	०—७५
शालपर्णी	०—७५
शिला रस	५—५०
शिवलिंगी बीज	७—००

नाम वस्तु	१ सेर
शङ्खपुष्पी	१—००
समुद्रशोष	१—२५
सत्यानासी बीज	१—००
सप्तपर्णछाल	१—५०
सपिस्तान(लसूड़ियां)	०—७५
सकमूनिया ऊंटनी	१पौ.४५—००
सतावर	सेर २—७५
सनाय	२—००
समुद्र फल	०—७५
स्थौणेयक (जम्बू)	४—००
सातला (शिकाकाई)	१—५०
सालब प्याजी	६—५०
सालब लहसुनिया	४—५०
सालब मिश्री	५५—००
सालब पंजा नं०१;	५२—००
सालब पंजा ,, २;	३०—००
सिरसबीज सफेद	२—००
सिरस बीज काले	३—५०
सिम्बलमूसली	१—००
सीतलचीनी(सर्दचीनी)	१०—००
सुपारी काठा	७—५०
सुपारी दक्षिणी	८—००
सुगन्धवाला पंचांग	१—००
सत्व गिलोय	१०—००
सत्व अजवायनप्रतिपौंड	२५—००
सत्व पुदीना ,, ,,	६६—००
सत्व लोबान ,, ,,	६—००
सत्व निम्बू सेर	७—००
सत्व मुलेठी	१८—००
सुरञ्जां शीरीं (मीठी)	२०—००
सुरञ्जांतलख (कड़वी)	१४—००
सुहांजना छाल	०—६५
सोंठ पूर्वी (बम्बई)	२—५०
सोमवल्ली(ईफेड्राबलगेरिस)	१—५०
सोया	१—००
सौंफ	२—००
सौभाञ्जन बीज	३—००

नाम वस्तु	१ सेर
हरमल बीज	१—००
हल्दी बढ़िया	२—००
हाथी सुण्डी	०—७५
हाऊबेर	१—७५
हिरन तूतिया	२०—००
हिरनखुरी	०—६५
हिंगु पत्री	२—००
हींग तालाब	४०—००
हींग अंगूरी	३६—००
हींग हीरा	३२—००
हींग बाजारी	२०—००
क्षीर काकोली(बंगाल)	६—००
क्षीर विदारी	१—५०
त्रायमाण	४—००

वर्क (पत्र) सोना चांदी

स्वर्णदफ्तर१२०पत्र४रत्ती	८.५०
स्वर्ण दफ्तरी१२०पत्र५रत्ती	९.००
स्वर्ण ,, ,, १ मा.	१४.००
स्वर्ण ,, ,, २ ,,	२६.५०
स्वर्ण ,, ,, ३ ,,	४० ००
स्वर्ण का चूरा १ ,,	१३.००
चांदी १ दफ्तरी ३ ,,	१.५०
चांदी दफ्तरी ४॥ ,,	२.००
चांदी ,, ६ ,,	२.५०
चांदी ,, ८ ,,	३.००
चांदी ,, १० ,,	४.००
चांदी चूरा १ तो.	३.५०

हरीतकी भेद

नाम वस्तु	१ सेर
हरड़ जीवन्ती नं० १	२४-०
हरड़ जीवन्ती नं० २	१६-०
हरड़ जीवन्ती- नं०३,४,५	१२-००,८-००,४-०
हरड़जीवन्ती साधारण	२-०
हरड़अभया(लघुबीजा)न०१,	१२.०
हरड़ अभया-नं० २, ३, ४	८-००, ६-००, ४-०
हरड़ विजया गोल	२०-०
हरड़ अमृता (काबली)- नं० १, २, ३;	१०-००,४-००,२-०

हरीतकी प्रति नग

हरीतकी१नग३तो.८मा.	६०-०
हरीतकी नग एक ३।)तो.	४०-०
हरीतकी ,, ,. ३) ,,	३०-०
हरीतकी ,, ,,२।।।) ,,	१५-०
हरितकी ,, ,, २।।) ,,	१०-०
हरीतकी ,,,, २।=) ,,	८-०
हरीतकी ,, ,, २।-) ,,	६-०
हरीतकी ,, ,, २।) ,,	४-०
हरीतकी ,, ,, २≡) ,,	३-५०
हरीतकी ,, ,, २=) ,,	३-०
हरीतकी ,, ,, २-) ,,	२-५
हरीतकी ,, ,, २) ,,	२-०
हरीतकी१तो.११माशा की	१-५

आयुर्वेदीय सिद्धांतों की विज्ञान सम्मत विवेचना के लिये एवं नव्य ज्ञान विज्ञान की नित्यप्रति हो रही प्रगति से अपने आपको परिचित रखने के लिये प्रसिद्ध मासिक पत्र 'आयुर्वेद विज्ञान' का स्वाध्याय करें। वार्षिक मूल्य केवल ३)

आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय
खारी बावली, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी द्वारा आविष्कृत

गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया से रजिस्टर्ड

हजारों बार की परीक्षित औषधियां

अनेमीन

(पाण्डु, कामला, की औषध)

लाभ——विषम ज्वर के पश्चात् यकृत, प्लीहा बढ़ जाने पर यह दवा लाभ करती है। शरीर में रक्त की कमी को दूर करती हैं। एक सप्ताह के सेवन से कुछ न कुछ लाभ दिखाईदेता है। रक्त की कमी, शोथ, जलोदर आदि रोगों में लाभ करती है। मात्रा १ गोली सुबह, १ गोली शाम को।

सेवन विधि—दही, तक्र व दूधसे दोनों समय सेवन करावें

१४ गोली के पैकट का मूल्य २—००

अमीरी जुलाब

योग—**गुलाब की गुलकन्द में कुछ सरल रेचक द्रव्य मिलाये गये हैं।**

गुण—नाजुक और अमीर मिजाज के आदमी या निर्बल स्त्रियों के लिये जुलाबी गुलकन्द बड़ी स्वादिष्ट है और बच्चे से लेकर बड़ों तक जिनका मृदुकोष्ठ हो बड़ी मुफीद है। इसके खाने से न तो जी मचलाता है, न पेट में दर्द, जलन व मरोड़ ही होता है; रात्रि को सोते समय ३-४ माशा पानी से या दूध से खा लो सुबह को १-२ दस्त खुलकर आ जाते हैं। जुलाब लेना हो तो सुबह को गर्म दूध या गर्म जल से ३-४ माशे के लगभग दवा खा लें २-३ दस्त खुलकर आ जाएंगे।

२॥ तोले दवा के पैकट का मूल्य २—००

अनिद्रांतक वटी

(उन्माद और रक्तचाप की उत्तम दवा)

गुण—जिन रोगियों को खून का दबाव बढ़ जाने के कारण नींद नहीं आती या किसी मानसिक रोग जैसे उन्माद, मालीखोलिया, चिन्ता या अन्य ऐसे विकार जिनका प्रभाव दिमाग पर बना रहता है और नींद नहीं आती-ऐसी हालत में इस दवा को दो चार दिन खिलाने से ही रोगी को आराम की नींद आने लगती है। उक्त कारण के उन्माद रोगियों में से ८० प्रतिशत को यह पूरा लाभ पहुँचाती है। **बढ़े हुये रक्त चाप में भी बहुत लाभ करती है।** २॥ तोला के पैकट का मूल्य २—००, ५ तोला का ४—०० है

मात्रा—१ से २ टिकिया पानी या दूध से दें।

अलसोरीन

(मुँह के छालों की दवा)

लाभ—किसी भी रोग के कारण मुँह में छाले पड़े रहते हों और जख्म बने रहते हों, यह दवा उक्त छालों को ठीक करने **के लिये उत्तम है।** मुँह में छिड़कते ही **दर्द को आरामा मिलता है।**

½ औंस का पैकट मूल्य २—००

ऑपथलमीन

लाभ——आंख आना या आंख दुखना, आंख की पुरानी लाली, आंख के गोलकों का दर्द, धुन्ध, जाला, आंख से पानी जाना और खारश **और आंख में हुये क्षति में** फौरन लाभ दिखाती है। **बहुत थोड़ी दवा सलाई** द्वारा आंख में लगावें। दो ड्राम की शीशी का मूल्य २—००।

आस्थमीन

(बलगमी दमा की उत्तम दवा)

लाभ—यह दवा बलगमी दमा पर अच्छा काम देती है, जिसका दौरा प्रभातको अधिक होता हो और बलगम गाढ़ी, पीली अधिक मात्रामें निकलती हो, कुछ दिन सेवन करने पर दमा जड़ से जाता रहता है।

सेवन—१ गोली पानी या दूध से दें।

१४ गोली के पैकट का मूल्य २—००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एट्रोफील

(सूखिया मसान रोग की **उत्तम** दवा)

गुण—यह दवा बच्चों के सूखा रोग (मसान) में अत्यन्त गुण करती है। जिसे लोग सूखिया मसान या परछाई पड़ना भी कहते हैं, उसमें यह दवा अत्यन्त लाभ करती है। कुछ दिन सेवन करने से बच्चा खूब मोटा ताजा हो जाता है। १ गोली सुबह १ शाम पानी से दें। १४ गोली के पैकट का मूल्य २–००

एलोप्सीन

(बालचर की **उत्तम** दवा)

गुण—कभी-कभी एकाएक सिर के या दाढ़ी मूँछ के बाल गिरने लग जाते हैं और दुवन्नी चुवन्नी के बराबर जगह बिल्कुल साफ हो जाती है। इस रोग को बालचर या बालखोर भी कहते हैं। इसके लिये हमारी यह औषध लाभदायक है। सेवन-थोड़ी सी मरहमको अँगुलीसे उस जगह पर लगाकर मालिश करें जहां गंज हो। आधे औंस के पैकट का मूल्य २–००।

एस. टुथ पौडर

(सर्वश्रेष्ठ सुगन्धित मंजन)

लाभ—दांतों का दर्द, दांतों में पानी लगना, दांतों का कमजोर होना, हिलना, मुँहसे दुर्गन्ध आना इत्यादि दांतों व मसूढ़ों की बीमारियों में लाभ करता है।

एक औंस का पैकट मूल्य १–००

एस. डिस्पेप्सोल

शाही हाजमा

(बड़ा स्वादिष्ट, पाचक चूर्ण)

लाभ—बदहजमी, खट्टे डकार, वमन, मितली, अतिसार, उदरपीड़ा आदि को दूर करता है। १ पाव के पैकट का मूल्य २–५०।

एस. पायोरीन

(पायोरिया की **उत्तम** औषध)

लाभ—एस. पायोरीन के प्रयोग से एक तो गला हुआ मांस ठीक होकर पुनः भरने लगता है, दूसरे हिलते हुए दांत मजबूत हो जाते हैं।

प्रयोग—ब्रश या दातुन पर दवा को लगा कर मसूढ़ों की जड़ों में मंजन की तरह लगाओ, और कुल्ला कर डालो। एक औंस के पैकट का मूल्य २–५०

एस. बाल घूंटी

प्रायः देखा जाता है कि जहां पेट में नुक्स हुआ कि बच्चों के पेट में दर्द, अतिसार, ज्वर आदि के उपद्रव दिखाई देने लगते हैं। ऐसे समय यह बाल घूँटी बड़ी ही लाभदायी है। इसकी १-२ माशे तक की मात्रा जलमें घोलकर पिला देने से एक दो दस्त खुलकर आ जाते हैं। यदि १ माशेसे कम दिया जाय तो मल का पाचन होजाता है जिससे आते हुए दस्त बन्द होजाते हैं और ज्वर आदि उपद्रव सब जाते रहते हैं। इस घूँटी को सप्ताह में एक दोबार बच्चों को देते रहें तो किसी प्रकार की बीमारी होने का भय नहीं रहता।

मूल्य २॥ तो० का २–००

एस. बाल शर्बत

(बच्चों की ताकत के लिए आयुर्वेदिक शर्बत)

यह शर्बत बच्चों की प्रत्येक निर्बलता में अत्यन्त लाभदायक है। बीमारी से उठे हुए बच्चों के लिए तो यह शर्बत अमृततुल्य है। अत्यन्त रक्त-वर्द्धक तथा शक्ति वर्द्धक है। पाण्डु, रक्त की कमी आदि रोगोंमें बड़ों को भी फायदा करता है। मू० २औंसकी शीशी १–००; ४ आस रु० २–००

एस. वेजीटेबोल

(विष्टब्धहर और रेचक गोली)

लाभ—रात्रि को सोते समय ३ से ४ गोली तक यदि खाई जायें तो सुबह तक एक दो पाखाने साफ आ जाते हैं, ४ से ६ गोली दिनमें खाई जावें तो चार पांच जुलाब आकर उदर साफ हो जाता है।

२० गोली का पैकट ०–६० न. पै.

८० गोली का पैकट मूल्य २–००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओजीना

नये-पुराने जुकाम की फलप्रद औषध

लाभ—जिन व्यक्तियों का जुकाम के कारण दिमाग कमजोर हो या जुकाम बिगड़कर नजला या पीनस बन गया हो, कोई औषध शरीर के अनुकूल न बैठती हो ऐसी दशा में ओजीना की दो चार खुराकें ही जुकाम ठीक कर देती हैं।

१० तोला माजून का पैकट मूल्य २—००

कटारीन

लाभ—दमा व पुरानी खांसी में सुबह के समय जब काफी बलगम खारिज होती हो और बलगम की अधिकता से रोगी अधिक कमजोर हो चुका हो तो कटारीन के सेवन से अत्यन्त फायदा होता है।

सेवनविधि—सारी दवाको १० तोला खांड में डालकर मिलालें और शीशी में भर कर रख लें खुराक १-१½ माशे दोनों समय पानी से खांय। १ मास की दवा के पैकट का मूल्य २—००

कर्णदुःख हर तेल

लाभ—यह तेल कान के दर्द को फौरन बन्द करताहै। इससे भिन्न इसमें सबसे बड़ी खूबी यह है कि कान से पानीवत् पाक या राद सदा बहता हो, कान भीतर जख्म हो रहे हों तो इसके कुछ दिन डालतें रहने से कान का बहना बिल्कुल बन्द हो जाता है। २॥ तोले की शीशी १—५०

कफसोल

(खांसी की दवा)

लाभ—राजयक्ष्मा की खांसी को छोड़ कर बाकी प्रत्येक खांसी में इसके सेवन से अवश्य लाभ होता है। श्लेष्मज श्वास व दौरे के श्वास को भी रोकती है। इसके सेवन से पुरानी से पुरानी खांसी भी जाती रहती है

मात्रा—आधी रत्ती से एक रत्ती तक शहदमें दें।

१ औंस के पैकट का मूल्य २—००

१ तोले के पकट का मू० १—००

कायाकल्पवटी

लाभ--जिन आदमियों को अस्थि व्रण हो रहे हों गम्भीर व्रण निकलते हों, नासूर हो गया हो, जिनके जख्म जल्दी न भरते हों, शरीर पर रक्त विकार के भयङ्कर चिन्ह बने रहते हों, ऐसे व्यक्तियों को इन गोलियों के सेवन करने से पूरा लाभ होता है

५० गोली पैकट २—००

१०० गोली पैकट ३—००

कार्बंकोलीन

लाभ—कार्बंकल फोड़ा, शराविका, कच्छपिका अदीठव्रण आदि जिसके नाम हैं, यह मरहम उस व्रण को राजी करने में पूरा प्रभाव दिखाता है। यह मरहम-केन्सर में भी लाभदायक हैं। जो व्रण प्रसरण शील भयङ्कर उपद्रव वाले दाहकारी हों जिनमें मांस, त्वचा गलती चली जाती हो उनमें अत्यन्त शांति देता है।

२॥ तोले के पैकटका मूल्य ४—००

कुन्तल-जीवन

(केशवर्धक लेपन)

लाभ—जिन व्यक्तियों के बाल अधिक झड़ते हों या किसी निर्बलतादि कारणों से टूटते रहते हों या आधुनिक कृत्रिम सुगंधित तेलों के बुरे प्रभाव से गिरने लग रहे हों, किसी चिन्ता, शोक के कारण निर्बल होकर झड़ रहे हों अर्थात सामूहिक रूप में समय से पूर्व ही बाल कमजोर होकर गिर रहे हों तो उस दशा में इस लेप को एक सप्ताह लगा कर स्नान करने से बालों को पुनः नवजीवन प्राप्त होता है। बालों की ग्रंथियां इस लेप से पुनः पुष्ट होकर दृढ़ बालों को जन्म देती हैं और इसके १—२ मास इस्तेमाल से बाल इतने सघन लम्बे और दृढ सचिक्कण हो जाते हैं कि स्त्रियां उन्हें देख कर प्रसन्न हो जाती हैं।

प्रयोग विधि—स्नान से पूर्व १ तोला दवा को पानी में घोटकर बारीक करलें और उसे सिर में लगालें। कुछ देर मलें और उसके सूखजाने पर स्नान करलें। चाहे साबुन लगा कर स्नान करें या नहीं। यही सरल इसकी प्रयोग विधि है।

२० तोले के पैकट का मूल्य २—००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोराञ्जन

(पड़वाल का सुरमा)

लाभ-जिन व्यक्तियों की पलकें सुर्ख और मोटी होकर उनमें फुन्सियां निकला करती हैं तथा आंखों में बाल चुभते रहते हैं, जिन्हें पड़वाल या पद्मकोप भी कहते हैं, इस अञ्जन के लगाने से उक्त रोग में लाभ होता है।

३ माशा की शीशी का मूल्य ०–७५

६ माशा की शीशी का पैकट १–५०

गनरोल

(पूयमेह, मूत्रकृच्छ्र की दवा)

लाभ--यह योग तीव्र और जीर्ण से जीर्ण पूयमेह में लाभ करता है कृच्छ्रता दवा खाने के दो तीन घंटे बाद बंद हो जाती है और जख्म दो तीन दिन में भर जाता है।

२४ कैपसूल का पैकट मूल्य ४—००

डाईसैंट्रोल

(पेचिस मरोड़ की दवा)

लाभ-यह औषध पेचिस में लाभ करती है। मरोड आंव और खून जाता हो गुद-भ्रंश या कांच निकलती हो, दिन में तीन-चार मात्रा खाते ही आराम आजाता है। पुराने से पुराने पेचिश वाले भी इसके सेवन से निराश नहीं हुए।

सेवन विधि-प्रथम हल्का जुलाब देकर पश्चात ६-८ माशे औषध दिन में दो या तीन बार तक्र से दें।

२ औंस के पैकट का मूल्य १—००

४ औंस का पैकट मूल्य २—००

छूमंत्र

लाभ-सिर दर्द, दाढ़ दर्द और इनके अतिरिक्त कहीं भी कोई दर्द हो जरासी दवा लगाते ही दर्द छू-मन्त्र हो जाता है, बिच्छू, बरैंया, ततैय्या (भिड़) आदि के काटने पर इसके लगाने से जहर जाता रहता है।

मूल्य प्रति शीशी १–००, १ दर्जन ६—००।

न्यूरेलजीन

(आधाशीशी की त्वक्वेधी औषध)

लाभ--आयुर्वेद में सर्वप्रथम त्वक्वेधन द्वारा सिर दर्द को लाभ पहुँचाने वाली यह औषधि है। एकबार के त्वक्वेधन करने पर दर्द इस तरह जाता है जिस तरह मन्त्र द्वारा भूत। एक शीशी ५०-६० बीमारों के लिये काम में आ सकती है। मूल्य प्रति पैकट २—००

नज़लोल

(नजले की औषध)

लाभ--नजला चाहे हलक में गिरता हो या नाक के रास्ते से बहता हो प्रत्येक प्रकृति के व्यक्ति को अवश्य ही लाभ करता है। उष्ण प्रकृति व्यक्ति इसे शर्बत के साथ सेवन करें। ४० गोली के पैकट का मूल्य १—००, ८० गोली का पैकट मू० २—००

न्यूमोनिओल

(न्यूमोनिया में लाभकारी दवा)

लाभ-न्यूमोनिया की प्रत्येक अवस्था में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवन कराते रहने से फेफड़े व श्वास नाली पर पड़ा हुआ न्यूमोनिया का प्रभाव दब जाता है। हृदय की निर्बलता में, व हार्टफेल की स्थिति में यह बहुत लाभ करता है। १४ गोली का मूल्य २–००

पुंसोलीन (तिला)

लाभ—ध्वजभंग चाहे प्रकृति विपरीत मैथुन से हुआ हो अथवा अति मैथुन से, एकबार तो यह अपना फल अवश्य दिखाता है और नष्ट हुई शक्ति को पुनः लौटा लाता है।

एक सप्ताह के सेवन योग्य दवा का मूल्य २–००

पुंसोल

(ध्वजभंग पर खाने की दवा)

लाभ—इच्छानुसार समय पर चैतन्योदय न हो, या समय पर शिथिलता आ जाय है वह विकार चाहे किसी कारण से हो, सब में लाभ करता है।

१४ खुराक का मूल्य २–००

प्रोराईगोन

(खारिश, खुजली की दवा)

लाभ—यह औषध प्रत्येक प्रकार की गीली सूखी छूतदार खारिश (खुजली) में लाभप्रद है।

प्रयोग – दवा में १० तोला तेल सरसोंका मिलाकर मालिश करें और बाद में साबुन लगाकर स्नान करें।

१ पैकट का मूल्य २–००

प्लोरीन

(पार्श्वशूल या दर्द पसली की दवा)

लाभ—सर्दी लगकर या न्यूमोनिया के आरम्भ में जो श्वास के साथ पसलियों के नीचे दर्द उठ रहा हो और दर्दके कारण श्वास न लिया जाता हो, उस हालत में इसकी एक मात्रा देते ही दर्द जाता रहता है। यह जोड़ों के दर्द, बदन के दर्द, पेट के दर्द में भी लाभ करती है। आधे औंस के पैकट का मूल्य २–००

फीवर पिल्स

लाभ—हमने हजारों रोगियों पर उक्त दवा को आरम्भिक ज्वरावस्था में देकर इसका खूब अनुभव लिया है। हर प्रकार के साधारण ज्वर को यह दवा एक से दो दिन में ही अवश्य उतार देती है। जिनका बुखार दूर नहीं होता उनके ज्वर के रूप को भी यह दवा प्रकट करदेती है और वह चौथे पांचवें दिन ज्वर का रूप स्पष्ट हो जाता है। इसके सेवन से कभी कोई कष्ट नहीं बढ़ता। १०० गोली का मूल्य २–००

मकर ध्वजवटी

शक्ति वर्धक प्रसिद्ध योग

योग—स्वर्ण-घटित मकरध्वज, केसर, कस्तूरी आदि मूल्यवान द्रव्यों के योग से यह दवा तय्यार की गई है। निर्बलता, प्रमेह, आदि में लाभदायी है। इस योग की मांग अधिक देखकर हमने भी निर्माण करना आरम्भ कर दिया है।

१४ गोली का पैकट मूल्य ३–००

माजून सिर दर्द

लाभ—कुछ व्यक्तियों को दौरे से सिर दर्द की बीमारी होती है। दर्द इतना जोर का होता है कि रोगी अत्यन्त व्याकुल हो जाता है। कुछ बीमारोंको वमन भी आती है। सिर दर्द दो तीन दिन रह कर जाता रहता है कई व्यक्तियों को दर्द आरम्भ होने के समय पीठ की ओर से दर्द सिरकी ओर बढ़ता प्रतीत होता है। यह दर्द ऐसा खराब है कि कई २ साल पीछा नहीं छोड़ता। हमने उक्त माजून का अनुभव कई वर्ष से किया है। इस माजून को यदि दो चार महीना सेवन किया जाय तो पुराने से पुराना सिर का दर्द जाता रहता है।

मात्रा—६ माशे से १ तोलातक। दोनों समय पानी से सेवन करना चाहिए। मूल्य एक पाव का पैकट ४–५०

मेहोरीन

लाभ—पेशाब के साथ मिलकर आने वाली या पेशाब के पीछे आने वाली लहेस को रोकती है तथा बहुमूत्र में भी लाभ करती है। बलवर्द्धक, शक्तिवर्द्धक है। १४ गोली की शीशी का मूल्य २–००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेमो

[सूखी खांसी, तालुकण्टक, कौवा गिरने की दवा)

लाभ—जब बच्चोंके दांत निकलने वाले होते हैं तो प्रायः बच्चों का तालु लटक जाता है और हरे पीले दस्त आने लग जाते हैं। बच्चा रात दिन सिर मार कर रोता रहता है। गर्दन सूख जाती है, कान की लौर पतली पड़ जाती है,मन्द-मन्द ज्वर बना रहता है। ऐसी हालत में रोगीके तालु भागको उक्त दवा लगी अंगुली से दो-चार बार उठाने पर और इसी दवाको दिनमें दो तीन बार खिलाने पर अवश्य ही लाभ होता है। इससे भिन्न जिन व्यक्तियों को सोते समय सीधा लेटने पर सूखी खांसी उठती है उनको इसके सेवन से अद्भुत लाभ होता है। मूल्य १ औंस का पैकट २—००

रसवटी

(संग्रहणी के लिये आविष्कृत)

लाभ—पुराने अतिसार ग्रहणी जिसमें भोजन अपक्व रूप में ही दस्तों के द्वारा निकल जाता है पेट में गुड़-गुड़ाहट होकर प्रायः दस्त आते हैं। यह रसवटी ऐसी तकलीफ को दो चार दिन में ही ठीक करदेती है मल तो दो तीन दिन में बन्ध कर आने लगता है और भूख बढ़ जाती है।

इसमें अफीम, धतूरा बीज आदि कोई नशीली चीज नहीं पडती, यह तो कुछ वनस्पतियों **के सत्व से बना योग** है।

सेवन—तक्र से १—२ गोली (मात्रा ४ माशे तक)
मूल्य ५ तोला २—५०, १० तोला ४—००

रोमेटीन

(गठिया या आमवात की दवा)

लाभ—यह औषधि सन्धिवात, चलितवात,नुकरस, गठिया आदि नये हों या पुराने सब में लाभ करती है।

मूल्य५०गोली का पैकट३—००,१००गोली का५—५०

रिनालकोलीन

(पथरी निकालने वाली दवा)

लाभ—यह दवाई दर्द गुर्दा व पथरीकी उत्तम औषध है। १ मात्रा देते ही दस मिनट में वृक्कशूल बन्द हो जाता है और मूत्र साफ आता है। कुछ दिन में धीरे-धीरे सारी पथरी घुलकर बाहर आजाती है, हजारों बार की आजमाई हुई औषध है। १० तोला कच्चे दूधमें पाव भर पानी मिलाकर उसके साथ दोनों समय सेवन करें। मात्रा ६ माशे। ४ औंस पैकट का मूल्य २—५०

रक्त शोधक अर्क

(५० के लगभग रक्तशोधक औषधियों का अर्क)

लाभ—बरसातके दिनोंमें बच्चों को सफेद पानीवाली फुन्सियां निकलती व फूटती रहती हैं जहां फुन्सी निकलती है वहां छाले जैसी सूरत बन जाती है। बड़े आदमियों को उपदंश, आतशक आदि के कारण रक्त के विकार हो जाते है। उनको यह अर्क बहुत फायदा करता है। हजारों बार आजमाया हुआ उत्तम रक्त-शोधक अर्क है। मूल्य एक पौंड अर्क २—००

ल्यूकोरीन टेबलेट

(प्रदर की औषध)

लाभ—जब स्त्रियों को **प्रदर हो** जाताहै जिसके कारण कमर में दर्द,भूख की कमी व निर्बलतादि बढ़ जाती है,इस दवा के सेवन से दूर हो जाती है। १४ टिकियों का पैकट मूल्य २—००

ल्यूकोरीन वर्तिका

(प्रदर-विनाशनी-वर्ती)

लाभ—यह वर्तिका **पानी में डुबो कर** रात्रि को अन्दर रखने पर अगले दिन फल दिखाई देता है। अनेक बार केवल वर्ती के प्रयोग से ही प्रदर की शिकायत जाती रहती है।
१४ बत्ती के पैकट का मूल्य २—००

विषमोल

(कुनैनसम लाभकारी मैलेरिया की दवा)

लाभ—सर्दी लगकर चढ़ने वाले बुखारों में तो यह दवा रामबाण है और कुनैन से निम्न बातों में विशेष है—एक तो कड़वी नहीं, दूसरे चढ़े बुखार में दीजिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरे गर्मीखुश्की नहीं करती, चौथे शर्वत निम्बू खटाई आदि के साथ दें, पांचवें लम्बे चौड़े परहेज की जरूरत नहीं। सेवन--१ टिकिया सुबह एक टिकिया शाम को निम्बू के शर्बत या पानी से सेवन करायें। मलेरिया के दिनों में यदि ५--७ दिन एक २ गोली नित्य सेवन कर ली जाय तो फिर मलेरिया ज्वर के होने का भय नहीं रहता। मूल्य ८० गोली का पैकट २–००

व्रणोद्धूलन

(फोड़ा फुन्सी का पांउडर)

लाभ—छोटे-छोटे बच्चों को वर्षाकाल में प्राय: फोड़े फुन्सियां व पाका निकलता रहता है और कई कई महीने बच्चे विचारे इन फोड़े फुन्सियों से तकलीफ उठाते रहते हैं। हमारा यह धूड़ा ऐसा है जिसे लगाते ही जलन दर्द, पीप, पानी सब बन्द हो जाते हैं और रोते हुये बच्चों को अपूर्व शान्ति मिलती है। यह धूड़ा या उद्धूलन स्फोटी (छाले) फैलने वाली फुन्सियां, खारश के जख्म व एक फुन्सी के लाग से बनने वाली अन्य फुन्सियां सब में अच्छा लाभ करता है।

मूल्य ५ तोला २–००

शाही नस्य

लाभ–सिर दर्द, जुकाम, नजला नाक में छिछड़ा और नकसीर जाना आदि कष्टों में सेवन करके चमत्कार-पूर्ण लाभ देखिये। १ तोला वाली शीशी का मूल्य १–०० एक दर्जन शीशी का मूल्य ६–००

शाही सुरमा

लाभ—नेत्र ज्योति का कम हो जाना, चश्मा लगाने की आदत पड़ना, नेत्रकी खारिश, पानी जाना व मैल आना आदि कष्ट इसके सेवन से दूर होकर अद्भुत लाभ होता है।

१॥ माशा छोटी शीशी ०–२५, १ दर्जन का २–५०

३ माशा बड़ी शीशी ०–५०, १ दर्जन का ५–००

श्लेष्मान्तक अवलेह

(दमा की नव्य आविष्कृत औषधि)

कटारीन और अस्थमीन तो दमा की विशेष विशेष अवस्था में लाभ करते है। किंतु श्लेष्मान्तक अवलेह प्रत्येक प्रकार के दमा पर अद्भुत लाभ दिखाता है। यह दौरा तो नहीं रोकता, पर एक एक तोला इसे दोनों समय सेवन करने पर धीरे धीरे दौरा कम होता चला जाता है। यही नहीं दमा का मूल कारण-सुबह सोकर उठतेही खांसी आना और बलगम निकलना-यह जो नित्यप्रति होता रहता है इसे शनैः २ कम करता है। धीरे धीरे रोगी को इतना आराम मिलता है कि वह चित्त चारपाई पर लेटने लग जाता है। और चित्त लेटने पर गले में खराश होकर जो खांसी आती है वह बिलकुल जाती रहती है। थोड़े दिन में ही इसके सेवन से बलगम का उत्पन्न होना, गले में सरसराहट, नाक का बन्द होना, दमकशी वगैरह जितने भी दमे के चिह्न हैं सब जाते रहते हैं। प्रयोगविधि–१ तो० अवलेह को १० तोला श्वासान्तक अर्क के साथ दोनों समय सेवन करें। मूल्य १ पाव के पैकट का ४–००

श्वासान्तक वटी

कुछ वर्ष पूर्व न जाने कहां से श्वास रोगियों संख्या एकाएक हमारे औषधालय में बढ़ गई। रोगी ऐसे पुराने आये जिनको "श्लेष्मान्तक अवलेह" से लाभ तो होता था पर प्रभातको श्वासारम्भक खांसी का जो ठसका उठता था वह जल्दी न रुकता था वही ठसका धीरे २ कुछ मिन्टों में श्वासावरोध की ओर रोगी के श्वासको बदल देता था इसको कैसे रोका जाय ? इसके निवारणार्थ कई योग बनाये, अन्त में यह गोलियाँ कारगर सिद्ध हुईं। इन गोलियों को मिश्री की डली के साथ मुंह में डालकर सुबह, शाम व रात तक ८–१०–१२ गोली तक चूसते रहने से इसका इतना प्रबल प्रभाव देखा गया कि श्वासावरोध के साथ श्वास के खिंचकर आनेका कष्ट घटा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिल्कुल घटगया और रोगी अनुभव करने लगा कि मेरा दमा दम के साथ न जाकर "श्लेष्मान्तक अवलेह और श्वासान्तक वटी" से अवश्य जाता रहेगा

इन दोनों औषधियों के दो दो, तीन तीन माह सेवन से स्वस्थ होने की सम्भावना विश्वास में परिणत होते देखी गई है। मूल्य ५० गोली के पैकट का २—००, १०० गोली के पैकट का ४—००

श्वासान्तक अर्क

यह अर्क भी श्वासके रोगियोंके लिये ही तय्यार किया गया है। कई रोगियों पर श्लेष्मान्तक अवलेह के साथ दिया गया। जिनका गला खुश्क रहता था या बलगम बहुत खुश्क थी खांसी भी आती रहती थी उन्हें इस अर्कके पीते ही श्लेष्म शीघ्र निकलने लग पड़ी और रोगी को उससे चैन मिला।

मूल्य प्रति पौंड १—५०

शीतपित्तान्तक रस

शीतपित्त या उदर्द ऐसा साधारण किंतु अत्यन्त कष्टदायक रोग है जो कई२ वर्षों तक रोगी का पीछा नहीं छोड़ता। वैद्य और डाक्टर इसे रक्तविकार समझ कर जो चिकित्सा करते हैं उसमें सफल नहीं होते। १० वर्ष से अनुभव लेते २ अनुभव से यह रस ऐसा सिद्ध हुआ है कि ४-६ मात्रा देने पर पुराने से पुराना उक्त रोग जड़ से चला जाता है। पथ्य कोई नहीं, मात्रा १ रत्ती शहद से दोनों समय।

मूल्य १ तोला २—०० रु०।

शीत वातेश्वर रस

प्रभाव—हृदय पर होता है।

गुण—बहुतसे हृदय रोगसे पीड़ित रोगियों को यह कष्ट देखा जाता है कि एकाएक ठण्डा पसीना आने लगता है और स्पर्श से शरीर ठण्डा लगता है हाथ पैर भी ठण्डे शीत होजाते हैं। हृदय बैठता हुआ या उड़ता हुआ प्रतीत होता है कुछ व्यक्ति तो व्याकुलतावश बतला भी नहीं सकते, कुछ कहते हैं हमें कुछ हो रहा है। हृदय की गति रुक-रुक कर चलती है, उस समयहृदयावसादके लक्षण दिखाई देते हैं, इस दशा में यह 'शीत-वातेश्वर रस' अमोघ सिद्ध हुआ है, नव्य आविष्कृत सद्यफल-प्रद रस है।

मात्रा—१ रत्ती शहदसे मिलाकर चाट लें या खांडमें डालकर पानी से सेवन करें। कुछ दिन सेवन करने पर हृदय रोगसे मुक्ति मिल जाती है।

मूल्य १ तोला २—००।

श्री सुख धारा

(प्रत्येक घर में सदा सर्वदा रहनी चाहिये)

(१) पेटका दर्द, दांत दर्द, सिरदर्द वगैहरा कोई दुःख दर्द हो उसको फौरन हरन कर सुख देने वाली धारा

(२) बिच्छूके डंक का दर्द, वर्य्या, ततैय्या के डंक का दर्द और कनखजूरा के जहर का दर्द दूर कर सुख लाने वाली धारा।

(३) वमन, रेचन से उत्पन्न कष्ट, विशूचिका की भयंकर व्यथाको मिटाकर सुख पहुंचाने वाली धारा।

प्रयोग—पेटदर्द, वमन, कालरा में ५—१० बूंद खांड में डालकर पानी से दें। बिच्छू, वर्य्या, ततैय्या के डंक मारे स्थान पर लगावें। दांत दर्द, दांत में कीड़ा लगा हो, रूई की फुरेरी बनाकर लगावें, बहुत अच्छी कीट विनाशक, कीटाणु नाशक, शरीर संरक्षक है।

छोटी शीशी का मूल्य १—०० बड़ी शीशी २—००
छोटी शीशी १ दर्जन १०—०० बड़ी शीशी १ दर्जन २०—००

सारस्वत वटी

(हिस्टीरिया की दवा)

यह औषध अभी तैयार की है और कई रोगियों पर आजमाया है दिमागी कमजोरी से या मानसिक व्यथा से हिस्टीरिया का दौरा होता हो तो उसमें लाभ करती है। यह गोलियां नींद न आना मानसिक उद्वेग आदि मानसिक कष्ट में भी लाभ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती हैं। १०० गोली का मूल्य ३—००रु० वी. पी. खर्च भिन्न।

सेवनविधि–पानी से एक-एक गोली दोनों समय। वैद्य लाभा-लाभ से सूचित करें।

स्वदेशी चाय

जुकाम, खांसी, गले की खर्खरी, साधारण ज्वर, दर्द बदन, सर्दी लगना, हड़ फूटन इत्यादि में इसका सेवन चाय की तरह करें। इसमें चाय जैसे नशे का दुर्गुण नहीं। मूल्य प्रतिपैकट आधा पाव ५० नये पैसे,

सिफलोल

(उपदंश-आतशक की दवा)

लाभ—बिना मुँह आये ही यह दवा उपदंश में लाभ करती है और पुराने रोग के फिसाद को दो सप्ताह में दूर कर देती है।

सेवन विधि—दवाई जो केपसूल में बन्द है केपसूल सहित पानी से निगल जाना चाहिये, दोनों समय।

१४ केपसूल का बन्द पैकट मूल्य ३—००

सुरमा ज्योतिवर्द्धक

(नेत्र ज्योति बढ़ाने वाला सुरमा)

लाभ–जिन व्यक्तियोंकी नेत्र ज्योति किसी भी कारण से कम हो रही है वह एकबार अवश्य ही प्रयोग कर के देखें नेत्र की ज्योति बढ़ाने में इस जैसा उत्तम सुरमा नहीं मिलेगा। ३ माशे का पैकट मूल्य १—००

६ माशे का ,, २—००

हिमसोल

(गर्मी, बुखार, घबराहट को दूर करने वाली दवा)

लाभ-बुखार की अधिक घबराहट, अधिक गर्मी, धूप से लू लगना, चक्कर, प्यास आदि कष्ट बढ़नेपर इसका सेवन कराइये और अमृततुल्य लाभ देखिये। इसकी समता की शीतलता उत्पन्न करने वाली अन्य औषधि आपको किसी भी चिकित्सा में नहीं मिलेगी।

एक औंस का पैकट मूल्य —२—००

हुपीन

(बच्चों की काली खांसी की दवा)

लाभ–काली खांसी या कुत्ता खांसी, ऐसी बुरी बीमारी है कि इसकी चिकित्सा कठिन है, किन्तु इस दवा के सेवन से अच्छा लाभ होता है। मात्रा ½ रत्ती। औंस के पैकट का मूल्य २—००,

लक्ष्मणारिष्ट

(आसव-विज्ञान)

मुझे यह योग एक तपस्वी बाबा ने बताया था। योग बनाने का अवसर १६२१ में लगा था। मैंने जिन वन्ध्या स्त्रियों को सेवन कराया इसके सेवन से ५० प्रतिशत के सन्तानें हुई किन्तु पुरुषों में यदि वन्ध्यत्व हो उसमें इससे लाभ होता है या नहीं? इसका मुझे ज्ञान नहीं था, मैंने यह योग अपने लिखे आसव-विज्ञान में प्रकाशित कर वैद्यों से प्रार्थना की कि इस योग को बना कर उसके लाभालाभ से हमें सूचना दें। इस ३५ वर्ष में एक दर्जन वैद्य इस योग को बनाकर समय-समय पर हमें सूचना देते रहे हैं, उनमें से तीन वैद्यों ने लिखा है कि यह योग स्त्री-वन्ध्यत्व में जितना लाभ करता है उससे अधिक पुरुषों को लाभ करता है ६० वर्ष की आयु को पहुंचे व्यक्ति इसके सेवन से सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ हुए ऐसा उनके पत्रों से प्रकट हुआ। इसीलिए हमने इसे विक्रयार्थ निर्माण करने का निश्चय किया। आशा है जो वैद्य इसे बनाने में असमर्थ हैं इससे लाभ उठायेंगे। मूल्य प्रति पौण्ड ३–५० सेवन विधि साथ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुटाई, पिसाई, गोली, टिकिया बनवाई भाव

कोईभी दवाई जो एक सेरसे कम होगी कुटाई १—०० सेर
१ सेर से ५ सेर तक दवाई की कुटाई ०—७५ „

नोट नं० १—अधिक दवाई का चूर्ण कराना हो तो रेट विशेष पत्र-व्यवहार द्वारा तय करें।

नोट नं० २—कुचला, निर्मली, चिरायता, विधारा-मूल आदि कठोर चीजें यदि कोई सेर दो सेर कुटावेगा तो इनकी कुटाई १—५० प्रति सेर होगी। मन दो २ मन कुटाने के लिये पत्र-व्यवहार करें।

गोली, टिकिया बनवाई

½ रत्ती से २ रत्ती तक का भाव २—५० पौण्ड।
२ रत्ती से ३ रत्ती तक का भाव २—०० पौण्ड।
३ रत्ती से ५ रत्ती तक १—५० पौण्ड।
६ रत्ती से १ मासे तक १—०० पौण्ड।

इस रेट पर पालिश करी कराई गोलियां मिलेंगी।

चिकित्सा सम्बन्धी उपकरण

शरीर-ताप-मापक (Thermometer)—जील का मूल्य ४—५०
„ जापानी २—५०
दवाई मिलाने की छुरी (Spatula)—मूल्य—बढ़िया १—२५
साधारण १—००
गरम पानी की रबड़ की बोतल (Hot Water Bottle)—
मूल्य बढ़िया ५—०० साधारण ४—००
फुफ्फुस परीक्षा यन्त्र (Stethoscope)—
मूल्य बढ़िया २२—०० साधारण १३—००
सूचिकाभरण पिचकारी (English Record Syringe)
२ c.c. का मूल्य २—५०, ५cc ३—५०, १० c.c. ६—००
प्रोब (शलाका)—मरहम-पट्टी के लिए मूल्य ०—५०
कान धोने की पिचकारी (Ear Syringe)—२ औंस ५—००
४ औंस ६—००
दांतों का जम्बूर (Universal Tooth Forceps)—मूल्य ४—५०
द्रव औषध मापक ग्लास (MeasureGlass)—
२ ड्राम ०—८५, १ औंस १—२५, ४ औंस १—५०
ड्रापर (Droppers)—बढिया १—०० दर्जन
दुग्धआचूषक-ब्रेस्टपम्प (Breast pump)— मूल्य १—५०
ग्लिसरीन सिरिंज (Glycerine Syringe)—२ औंस ६—००
बस्ति यंत्र (Irrigator) नाली व टूटी सहित—मूल्य ५—५०
स्पिरिट लैम्प (Spirit lamp) कांच की— मूल्य २—५०
पीतल २—००

पावर और हाथ से चलने वाली टिकिया बनाने की मशीन

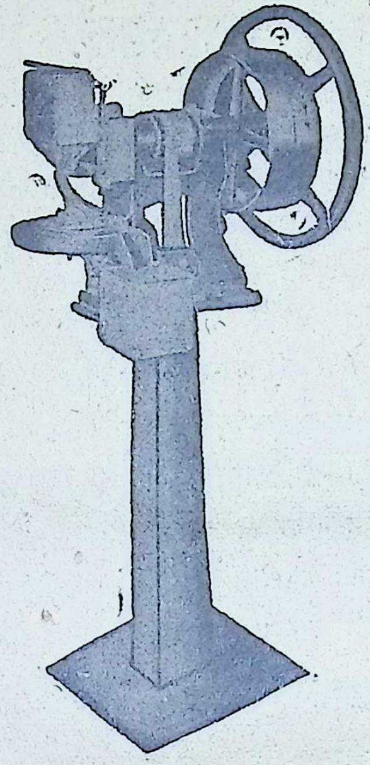

½ रत्ती से लेकर 1½ माशे तक की टिकिया बनाने वाली बड़ी मशीन। मशीन के साथ दो साइज डाई पंच होंगे। मूल्य ४००—००

स्थायी ग्राहकों के लिये विशेष रियायत

कार्यालय के नियमानुसार पेशगी भेजना आवश्यक है। यदि आप १०) रुपये एक बार भेज कर स्थाई ग्राहक बन जांएगे तो आप को निम्न सुविधाएं दी जाएंगी।

(१) फार्मेसी की प्रस्तुत तथा पेटेन्ट दवाईयों पर ७ पैसे प्रति रुपया (एजण्ट न होने पर) कमीशन दिया जाए।

[२] बार-बार पेशगी भेजने की आवश्यकता न रहे। स्थाई ग्राहक नम्बर देना पर्याप्त होगा।

[३] यह रकम स्थाई ग्राहक न रहने पर वापिस दी जायगी।

मैनेजर
पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी
अमृतसर, व देहली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवास पेटिका नं० १ जर्मन डिजाईन

स्टील क्लिप सहित
ऊपर चमड़ा चढ़ा
हुआ
साईज
१२×५½×८ इंच
इसमें होमियोपैथिक
१ ड्रामकी ४८, १
औंसकी १२ और
२ औंस खुले मुंह की
४ शीशियां आती हैं।
मूल्य ३४-००

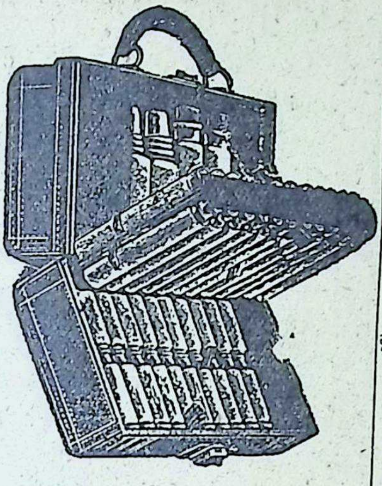

प्रवास पेटिका नं० २, जर्मन डिजाईन

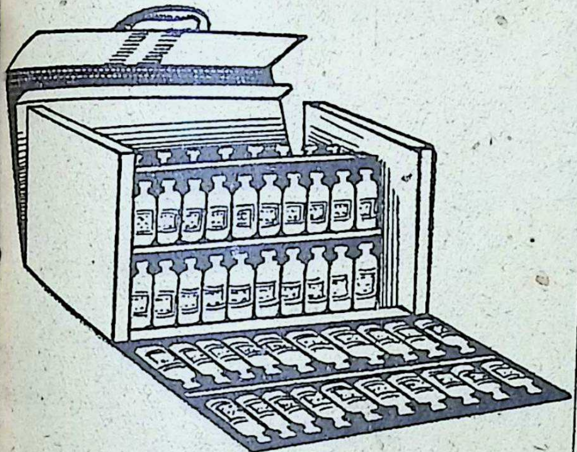

इसमें होमियो-पैथिक २ ड्राम्वाली ६ दर्जन शीशियां आती हैं
मूल्य २४-००

प्रवास पेटिका नं० ३

बहुसंख्यक वैद्यों के हमें पत्र प्राप्त हुए हैं जिस में प्रार्थना की गई है कि प्रवास पेटिका में दो साइज आने चाहियें। अर्थात् बड़ी शीशियोंके साथ छोटी शीशियां भी आसकें अब हमने प्रवास-पेटिका नं० ३ भी तैयार कराई है। इसमें होमियोपैथी की २ ड्राम वाली २४ शीशी, ४ ड्राम वाली १८ शीशी तथा १ औंस की लम्बी गोल ८ शीशी होती हैं। इस का साईज़ 9¼×6½×3½ इंच है। मूल्य २१-००

औषध पाकेट बक्स नं० १

यह बक्स बटुए के समान है। बक्स सुन्दर और छोटा होने से जेब में आ सकता है। प्रत्येक वैद्य को यह बक्स अवश्य रखना चाहिए। इस में २ ड्राम होमियोपैथिक की १८ शीशी आ सकती हैं। अगर आप वैद्य हैं और दूर रोगी देखने जाना है बड़ा बक्स नहीं ले जा सकते तो इसे आराम से जेब में डालकर ले जाइये। मूल्य शीशी युक्त ६-००

औषध पाकेट बक्स नं० २

इसमें २ड्राम होम्योपैथिक की १२शीशियां आसकती हैं।मूल्य५-००

नोटः-प्रवास पेटिकाएं ग्राहक की इच्छानुसार डिजाईन प्राप्त होने पर भी बना कर भेजी जाती हैं। परन्तु आधी रकम पेशगी आनी आवश्यक है।

हाथ से गोलियां बनाने की मशीन

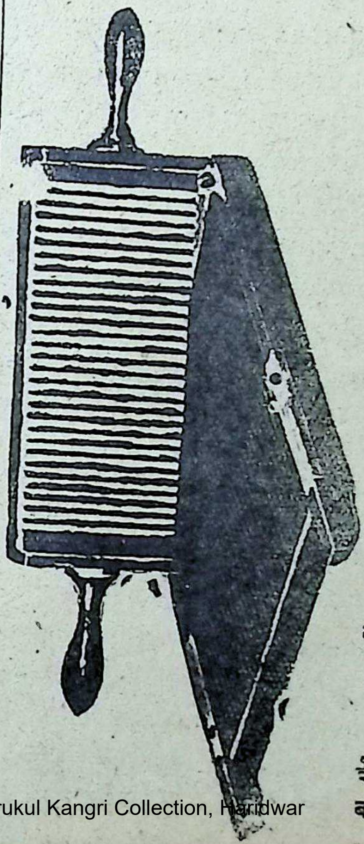

इस मशीन से
बड़ी आसानी से
एक व्यक्ति दिन
में ४-५सेर दवाई
की गोलियां तैयार
कर सकता है।
२½ से ३ रत्ती
साइज की गोली
बनाने की मशीन
का मूल्य ३०-००
१ रत्ती साईज
की गोली बनाने
की मशीन का
मूल्य ४०-००
½ रत्ती की गोली
बनाने वाली मशीन
मूल्य ५०-००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद विज्ञान पर कुछ सम्मतियां

सम्पादक, स्वास्थ्य सन्देश, पटना

आयुर्वेद विज्ञान—प्रकाशक : —आयुर्वेद विज्ञान आफिस, खारी बावली, देहली। वार्षिक मूल्य—३)।

यह मासिकपत्र स्वामी हरिशरणानन्द जी के सम्पादकत्व में सम्पादित होता है। प्रकाशक भी आप ही हैं। कुछ दिन पूर्व भी आप इस नाम का मासिक पत्र निकालते थे। अब पुनः इसी वर्ष इस पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया है। मेरे सामने तीसरा अंक है आपकी लेखनी द्वारा लिखा गया लेख बड़ा ही जोश पूर्ण होता है। आप प्राचीन आयुर्वेद अर्थात् त्रिदोष और पंचभूत वाद के विरोधी रहे हैं। आपका यह मासिक पत्र आपके विचार का प्रचारक है। आपका तर्क भी अपने ढंग का होता है। पत्र तर्क की दृष्टि से सुन्दर है। इसे वैद्यों को अवश्य पढ़ना चाहिए।

आयुर्वेदाचार्य श्री सरयूप्रसादशास्त्री साहित्यालंकार

विश्वबन्धु आयुर्वेद भवन, गोपालगंज, सारन ८-४-५८

आपका अप्रैल सन् १९५८ का भेजा हुआ 'आयुर्वेद-विज्ञान' मिला। पत्र देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। पत्र की छपाई और सुन्दरता सराहनीय है। जिस लगन और परिश्रम के साथ आयुर्वेदीय तत्त्वों का अनुसंधान किया जा रहा है वह समाज के लिये अमृत देन है। आयुर्वेद को देश के राष्ट्र चिकित्सा पद पर आसीन करने के पहले इस प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आवश्यक था जिस को आप पूरा कर रहे हैं। मैं आयुर्वेद-विज्ञान की कला की भूरि-भूरि प्रशंसा कर वैद्य बन्धुओं से अनुरोध करता हूं कि इसके ग्राहक बनकर आयुर्वेदिक जागरण पैदा करें।

प्रिंसिपल क० जगदीशचन्द्र भारद्वाज B. A. M. S.

अध्यक्ष श्री राम आयुर्वेदिक फार्मेसी

पनाकितान भवानी (हिसार

आप का प्रेषित "आयुर्वेद विज्ञान" नामक मासिक पत्र अप्रैल १९५७ का प्राप्त हुआ। जो कि देखने में छोटा परन्तु उसकी सामग्री तथा प्रस्तुत लेख अति सुन्दर तथा सुपाठ्य थे जिसके द्वारा जनता भी लाभ उठा सकती है। विशेषतः चिकित्सक बन्धुओं को तो इस पत्र का ग्राहक बनना आवश्यक है। क्योंकि यह आयुर्वेद क्रांति का अग्रदूत है। अतः इस पत्र की मैं हृदय से उन्नति चाहता हूं। भगवान इसे सफलता प्रदान करता रहे।

कविराज माधव प्रसाद जी शास्त्री
सम्पादक जय आयुर्वेद जोधपुर
(राजस्थान)

"आपके द्वारा सम्पादित "आयुर्वेद विज्ञान" के ५ अंक प्राप्त हुए, धन्यवाद !

पत्र में प्रकाशित लेखों की निर्भीकता वास्तव में आयुर्वेद जगत् को रसातल जाने से अवश्य ऊपर उठाने में समर्थ सिद्ध होगी। आजके पत्र किसी की गुण-गाथा या विज्ञापन करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं करते प्रसन्नता की बात है कि आप इन बातों से बहुत ऊपर उठे हुए हैं आपके सुलझे हुए विचार आयुर्वेद महारथियों के उलझे हुए दिमागों की इसी प्रकार सफाई करते हुए उन्हें स्वस्थ बनाते रहेंगे। आपका पत्र आयुर्वेद-विरोधियों से डट कर मुकाबला लेने वाला है। हम इसकी उत्तरोत्तर उन्नति चाहते हैं।"

वैद्यरत्न पं० श्री प्रभुदत्त शास्त्री भिषगाचार्य
प्रिंसिपल—श्री परशुराम पुरीया राजस्थान
आयुर्वेद कालेज सीकर (राजस्थान)

"आपके द्वारा प्रेषित 'आयुर्वेद विज्ञान' मासिक पत्र का अक्टूबर मासीय अंक देखने को मिला।

आयुर्वेद को आधुनिक विज्ञान के सम्पुटसे समृद्ध बना कर इसके वैभवका विस्तार और व्यावहारिक उपयोगिता की पराकाष्ठा से वैज्ञानिक जगत् को नवीन आलोक प्रदान करने वाला यह पत्र अविलम्ब ही वैद्य महानुभावों द्वारा कराम्बुज स्पर्श से उद्दीप्तिमान् हो उठेगा। इसमें संदेह जरा भी नहीं, चूंकि यह आपकी ओजस्विनी लेखनी से आपूरित सम्पादन कला—वैचित्र्य का उत्कृष्ट प्रतीक है। आधुनिक युग में ऐसे ही नूतन दृष्टिकोण से उन्मेष पाने वाले पत्रों की पाश्चात्य जगत पर धाक जमाने के लिये आवश्यकता है। धन्यवाद !"

आयुर्वेद वाचस्पति डा० रघुवंशलाल शर्मा
(M. Sc. A.)

श्री रविनन्दन आयुर्वेद भवन, मुरादाबाद

आपके द्वारा सम्पादित "आयुर्वेद विज्ञान" का चतुर्थ अंक प्राप्त हुआ अतः धन्यवाद। प्रस्तुत पत्र को ध्यान पूर्वक समावलोकन किया। मैं आपकी इस उत्तम कृति तथा आयुर्वेदोद्धार की प्रशंसा करता हूँ। मैं वैद्य समाज से सानुरोध प्रार्थना करूंगा कि प्रत्येक वैद्य बन्धु "आयुर्वेद विज्ञान" के ग्राहक बन कर अंधकार में पड़े हुये आयुर्वेद को प्रकाश में लायें। मैं इस पत्र की उत्तरोत्तर उन्नति चाहता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसव निर्माणार्थ सागवान काष्ठ के ढोल

प्राचीन काल से ही वैद्यों में आसव निर्माणार्थ प्रायः मट्टी के पात्रों को प्रयोग करने का प्रचलन है । परन्तु मट्टी के पात्र में दो बड़े दोष हैं एक तो मसामदार होने से आसव द्रव उस में से चू कर बाहर निकल सकता है । दूसरे मृत्पात्र तापवाहक होने के कारण सन्धानार्थ द्रव के अन्दर आवश्यक उत्ताप को स्थिर नहीं रख सकता, जिस से आसव निर्माण क्रिया (सन्धान) में बाधा उत्पन्न हो सकती है । लकड़ी के ढोल इन दोनों दोषों से मुक्त हैं । लकड़ी में भी सागवान की लकड़ी ऐसी कठोर है कि निरन्तर वर्षों तक पानी के संसर्ग में रहने पर भी यह नहीं गलती । अतः सागवान के बने ढोल चिर काल तक खराब नहीं होते और आयु पर्यन्त काम देते रहते हैं । मृत्पात्र की तरह इन्हें घृत परिप्लुत करने का झंझट भी नहीं करना पड़ता । जल से प्रक्षालन कर स्वच्छ करके इन का प्रयोग किया जा सकता है । मृत्पात्र की तरह इनके फूटने का भी भय नहीं ।

हमारे यहां वर्षों से इन ढोलों का प्रयोग हो रहा है । श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी द्वारा लिखित "आसव विज्ञान" पुस्तक के प्रकाशन के बाद से देश के प्रत्येक कोने से इन लकड़ी के ढोलों के लिये अनेकों वैद्यों की मांग आती रही है । अतः हमने विलायत से आने वाले माल के खाली ढोल जो बड़ी बड़ी मिलों में रासायनिक पदार्थों में लग कर आते हैं उनके संग्रह का प्रयत्न किया है वह साफ करने पर आसव निर्माण के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं । आशा है वैद्य समाज तथा औषध निर्माता इन का प्रयोग कर आसव निर्माण प्रक्रिया को समुन्नत करने की दिशा में अग्रसर होंगे । इस से उन्हें सुविधा भी होगी और आसव भी उत्तम बनेंगे । प्रत्येक ढोल की समाई इतनी है कि उसमें १॥ मन आसव भर कर रखा जा सकता है । मूल्य प्रति ढोल १२) । बड़ा ढोल जिसमें ६मन आसव रखा जा सकता है मूल्य३०) । दोनों का मार्ग व्यय भिन्न । आर्डर के साथ पेशगी आना जरूरी है ।

निवेदक—**मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट-अमृतसर ।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याधि-मूल विज्ञान (पूर्वार्ध)

श्री स्वामी हरिशरणानन्द की नव्य कृति

छपगया ! छपगया !! छपगया !!!

यह वैज्ञानिक युग है, शरीर के भीतर जब कोई व्याधि हो जाती है तो उसे अब-तक अनुमान से ही जानते थे। किन्तु वैज्ञानिकों ने ऐसे साधन मालूम कर लिए हैं कि शरीर के भीतर जब व्याधियों का प्रादुर्भाव हो रहा हो तो वह कैसे हुआ करता है, और उसमें कौन कौन से व्याधियों के उत्पादक कारण है। इसको उन्होंने नव्य प्रायोगिक विधियों से खूब अच्छी तरह से देखा व जांचा। एक ही प्रयोगशाला ने नहीं, अनेकों प्रयोगशालाओं ने मिलकर जांच की और जो तथ्य उन्हें मिले और वे प्रकाश में आये उनको संकलित कर व्यवस्थित रूप दिया गया है। इन प्रायोगिक विधियों ने चिकित्सा के अनेकों मान्य सिद्धान्तों पर पानी फेर दिया है।

आयुर्वेद का सिद्धान्त है—"मिथ्याहार विहाराभ्यां दोषाः ह्यामाशयाश्रयाः"। आहार विहार की अनियमितताओं से आमाशय में दोषों का उत्थान होता है। आहार सम्बन्धी और पचन सम्बन्धी विषय का प्रायोगिक ज्ञान इतना अधिक बढ़ चुका है जिनके सन्तुलित स्थिति से मनुष्य स्वस्थ रहता है उसमें असन्तुलित स्थिति उत्पन्न होते ही रोगों का प्रादुर्भाव होता है। यह 'द्रव्य साम्यमरोग्यता' का सिद्धान्त किस तरह देखा समझा गया यह आयुर्वेद विद्वानों के समझने की चीज है। इसी का वैज्ञानिक विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है। यह ग्रन्थ का पूर्वार्ध मात्र है जो लगभग ४०० पृष्ठों में पूर्ण हुआ। १० वर्ष के परिश्रम के बाद इसका पूर्वार्ध ही पाठकों के हाथ में पहुँचा रहे हैं। सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य १२) है।

मैनेजर—पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर

ब्रांच—खारी बावली, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ७ आषाढ़ सम्वत् २०१७ संख्या ७

जुलाई १९६०

आयुर्वेद-विज्ञान

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

सम्पादक

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

विषय-सूची

१. वैद्य समाज को नव्य ज्ञान विज्ञान से लाभ उठाकर समुन्नत होना चाहिये ... १०५
२. रक्त स्कन्दन १०८
३. नेत्र दर्शन से अनेक रोगों का ज्ञान ११२
४. विज्ञान के चमत्कार ११४
५. स्व. आचार्य श्री यादव जी महाराज के कुछ स्मरणीय विचार (ले०—पं० कन्हैयालाल भेड़ा आयुर्वेदाचार्य) ... ११६
६. वैद्य हकीम ध्यान दें (ले०—श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल वैद्य) ... ११८
७. समालोचना १२०

प्रकाशक—

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, खारी बावली, दिल्ली-६

मुद्रक—वेदलिया प्रिंटिंग प्रेस, ... नई सड़क, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ३० नये पैसे होगा।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये। अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्व-प्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा। किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, व करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायेगा।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर किसी परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-सम्बन्धी प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये आयुर्वेद-विज्ञान के ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न एक रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके प्रश्न और उत्तर छापे जायेंगे। मैनेजर

शिवा गुटिका

(जीर्ण और वृद्ध रोगियों के लिये दिव्य रसायन)

यह योग चक्रदत्त भैषज्य रत्नाकर और योगरत्नाकर ग्रन्थों में रसायनाधिकार में आया है इस योग का प्रमुख द्रव्य शिलाजीत सूर्यतापी है जिसे कई वनस्पतियों और जीवनीय गण की औषधियों द्वारा ग्रीष्म काल की आतप में भावित कर उसकी मलाई उतारी जाती है। पश्चात कुछ अन्य औषधियां मिला कर इस की गुटी बनाई जाती है।

शास्त्र में इसे आमवात, यक्ष्मा, पाण्डु, नपुन्सकता, मृगी तथा शिर, नेत्र, कण्ठ, फुप्फुस एवं हृदय के कई रोगों में लाभकारी लिखा है। इसका मुख्य गुण रसायन है। अर्थात् किसी भी जीर्ण रोग से, जरावस्था में अथवा किसी भी तरह जब शरीर की कार्य व्यवस्था बिगड़ जाय, शरीर की कोषायें निर्बल विकृत हो जायें तो यह औषधि स्वास्थ्य को पुनः बिल्कुल ठीक कर देती है, ऐसा अपने पर और अन्य रोगियों पर इसे प्रयोग करके हमने देखा है। जीर्ण रोगों से पीड़ित रोगियों, व वृद्धावस्था में होने वाले विकारों तथा दुर्बलता में तो यह गुटिका विशेष रूप से लाभप्रद रसायन सिद्ध हुई है।

रसायन औषध दो चार दिन खाने से लाभ नहीं करती। दो गोली प्रातः सायं २-३ मास तक निरन्तर खानी चाहिये। एक मास सेवन करने योग्य ५ तोला गोली के पैकिट का मूल्य केवल ५) है। पैकिंग डाक खर्च भिन्न।

पता-मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, ६०-६१, अकालीमार्केट, अमृतसर

ब्रांच—खारी बावली दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद-विज्ञान

आयुर्विदेव विततं किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्नपरकैर्भवतीह लभ्यम्
शक्तिं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ॥

वर्ष ७ | आषाढ़ २०१७ वि०, जुलाई १९६० ई० | अंक ७

वैद्य समाज को नव्य ज्ञान विज्ञान से लाभ उठाकर समुन्नत होना चाहिये

इस समय चिकित्सा वैद्यों का व्यवसाय है, इस व्यवसाय में हम तभी उन्नति कर सकते हैं और अच्छी कमाई कर सकते हैं यदि हम इस चिकित्सा व्यवसाय के गूढ़ से गूढ़ रहस्यों को समझें। चिकित्सा-व्यवसाय को समझने के लिए हमें सबसे पूर्व यह देखना चाहिये कि हमारे चिकित्सा व्यवसाय के प्रतिद्वन्द्वी किन साधनों का उपयोग करते हैं जिनके कारण रोगी उनकी ओर अधिक आकर्षित होते हैं। सबसे पहिले यही बात हमें समझनी चाहिए। जब तक हम इस रहस्य को नहीं समझते चिकित्सा में कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।

चिकित्सक बनते ही हमारा वास्ता रोगियों से पड़ता है, रोगी जब आता है, तो सब से पहले हमें उसके रोग निदान को देखने समझने का ऐसे ढंग से प्रयत्न करना चाहिये कि उससे रोगी को पूर्ण सन्तोष हो। "रोगमादौ-परीक्षेत" जो कहा है उसका अर्थ यही है कि हम रोगी की इस प्रकार परीक्षा करें कि जिससे हम व्याधि की वास्तविक स्थिति से परिचित हो जायें। जब तक हमें व्याधि का वास्तविक ज्ञान नहीं होता हम चिकित्सा में कभी सफल नहीं हो सकते। हमें इस समय यह देखना चाहिये कि हमारी निदान पद्धति और विद्यमान अन्य चिकित्सकों की निदान पद्धति में कितना अन्तर है। ९५ प्रतिशत इस समय जटिल रोगी प्रायः निदानार्थ हमारे पास नहीं आते, वे बड़े बड़े डाक्टरों के पास जाते हैं। डाक्टरी चिकित्सा रोग निदान में आयुर्वेद निदान पद्धति से बहुत आगे निकल गई है। उनके यहाँ रोग का निदान करने के लिए रक्त परीक्षक अलग है, मूत्र मल परीक्षक अलग और अस्थि परीक्षक (एक्सरे) अलग। डाक्टर के पास जब रोगी आता है वह उसे मूत्र मल परीक्षक के पास भेजता है, फिर रक्त परीक्षक के पास भेजता है, फिर एक्सरे कराने का परामर्श देता है। तीनों फीस लेकर केवल निदानार्थ ही कमाते हैं, अभी चिकित्सा दूर है। निदान हो जाने के बाद अब चिकित्सक औषध तजवीज करता है। इस में वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिकित्सक इलहदा कमाता है और कुछ दिन चिकित्सा करने पर यदि रोगी को लाभ नहीं होता तो वह रोगी को जवाब नहीं देता, प्रत्युत कहता है हम अमुक-अमुक डाक्टर को परामर्श के लिये बुलाते हैं वे डाक्टर इस रोग के विशेषज्ञ हैं, उनके परामर्श से अवश्य लाभ होगा। वे डाक्टर भी परस्पर मिलकर केवल परामर्श देकर कमाते हैं। किन्तु वैद्यों में परस्पर मिल कर इस तरह कमाई करना नहीं आता। यदि कोई वैद्य भूलकर दूसरे वैद्य को अपना रोगी परामर्शार्थ दिखाभी देता है तो यह परामर्श-दाता उस वैद्य को रोगी के सामने ही मूर्ख बनाने का प्रयत्न करेगा। वितण्डावाद करेगा, और रोगी को यह दिखाने का प्रयत्न करेगा कि जिस वैद्य से तुम चिकित्सा करा रहे हो इसे कुछ आता जाता नहीं, वह मूर्ख वैद्य है। तुम हमसे चिकित्सा कराओ। रोगी न तो इस पर आगत वैद्य पर विश्वास करता है न उस पर। इस तरह रोगी हाथ से निकल जाता है और डाक्टर के पास चला जाता है। यह वैद्य समाज में कितना भारी त्रुटि है। हम देखते हैं कि रोगी का मल, मूत्र, रक्त आदि देख कर जो रोग का निदान डाक्टर करते हैं वह यदि सही न हो तो रोगी को लाभ नहीं होना चाहिये। उक्त चीजों की परीक्षा एक बार होने पर पुन: पुन: अन्य परीक्षकों से परीक्षा कराने पर जब वही रोग का कारण निकलता हो तो वह निदान हर स्थिति में ठीक माना जा सकता है। किन्तु वैद्यों के निदान में प्रत्यक्षीकरण के कोई साधन न होने पर एक वैद्य उसी रोगी को किसी अन्य कारण से हुआ रोग बताता है तो दूसरा अन्य कारण से। प्रत्यक्ष न होने के कारण हमारा मतभेद दूर नहीं होता। इसके लिये तो प्रत्यक्षी-करण अत्यावश्यक बात है। किन्तु हमारी चिकित्सा पद्धति में कोई प्रत्यक्षीकरण का साधन नहीं। जब तक हमारे पास साधन नहीं, हम उन्नति नहीं कर सकते। हमें यदि प्रतिस्पर्द्धी चिकित्सकों के बराबर होना है तो उस स्थिति में हमें इस समय तक निदान और शरीर रचना व शरीर क्रिया विज्ञान में जितनी भी प्रत्यक्ष रूप में जान-कारी प्राप्त होती है सब को बिना ननुनच के अपना लेना चाहिए, तभी हम उस विदेशी चिकित्सा के चिकित्सकों से सामुख्य ले सकते हैं।

किसी मल्ल योद्धा से मल्ल युद्ध करते समय हमें केवल उतने दाव पेच तो जरूर आने चाहिये जितने वह मल्ल योद्धा जानता है तब तो हम उस मल्ल योद्धा के मुकावले में ठहर सकते हैं, लड़ सकते हैं और यदि उतने दांव पेच हमें नहीं आते तो निश्चय ही हम हार जायेंगे। बिलकुल यही बात चिकित्सा क्षेत्र में लागू है। हमारी चिकित्सा पद्धति प्रति-दिन दबती चली जा रही है हमारी औषधियों की बिक्री घट रही है, अलोपैथी दवाइयों की बिक्री बढ़ रही है। उनकी दवाइयां विज्ञापन के बल बूते पर गांवों गांवों में फैलती जा रही है। हमारी दवाइयों की मांग प्रतिदिन घट रही है।

भारत सरकार हमारी चिकित्सा पद्धति को स्वीकार नहीं कर रही, इसका कारण भी यही है कि हम समय के अनुसार बदल नहीं रहे। चिकित्सा क्षेत्र में जितना प्रत्यक्ष ज्ञान बढ़ चुका है बारम्बार सरकार के बड़े बड़े अधिकारी हमें प्रेरणा देते हैं कि बढ़े हुए ज्ञान विज्ञान को आयुर्वेद में मिला लेना चाहिये और वैद्यों को उस स्तर तक उठ आना चाहिये जिस स्तर तक संसार के चिकित्सक उठ चुके हैं किन्तु हम उनकी बातों को सुनकर अनसुना कर देते हैं। हम अपने अनुमान जन्य कल्पित निदान पद्धति पर ऐसे चिपके हुए हैं कि उसकी असत्यता को देखते जानते हुए भी उसे छोड़ना नहीं चाहते।

जैव सिद्धान्त सत्य पर आधारित सिद्धान्त है

आज से एक सौ बीस वर्ष पूर्व १८४० ई० में हेनले नामक व्यक्ति ने जीवाणुओं कीटाणुओं से रोग होते हैं इसकी ओर संकेत किया था। उसके संकेत पर पाश्चर जैसे विद्वानों ने खोज कर इसकी सत्यता प्रमाणित की। तत्पश्चात् कौक नामक वैज्ञानिक ने इन जैवों की उत्पत्ति सम्वर्धन, कृषि की विधियां ज्ञात कर इनकी उसने खेती की और कृत्रिम विधि से एक एक जीवाणु, कीटाणु को पालने, रोपित करने और कृषि बढ़ाने के साधन ज्ञात कर उनके जीवन व्यापार का अच्छी तरह से अध्ययन कर के और अनुसन्धान का नया मार्ग प्रस्तुत कर दिया। जिससे आगे के अनेक वैज्ञानिक रुनसेन ईवर्थ पीर्सन, निकोलियर, किटासारो, शिगा, एहरलिक, मेचनीकाफ, नोगूची, बेहरिंग, राइट इत्यादि व्यक्तियों के सतत प्रयत्न से यह जैव-विज्ञान बनाया। यह वैज्ञानिक किसी एक देश के निवासी नहीं रूस, जापान, जर्मन, इटली, इंगलैंड हर देश के थे सबों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलकर इस जीव विज्ञान में उन्नति की है। उसी का परिणाम यह हुआ कि इन जैवों की कृषि से उद्भूत द्रव्यों द्वारा एक नई जैवी चिकित्सा पद्धति का आविष्कार हुआ। १९२८ ई० में अलेक्जेंडर फ्लेमिंग ने इन कीटाणुओं की एक विशेष जाति से उद्भूत जो द्रव्य को भिन्न किया था, आज पेंसिलीन के नाम से वह जगतविख्यात हो रही है जो अनेक जैवी व्याधियों पर अमोघ सिद्ध हो रही है। इस जैव-विज्ञान ने इस समय इतनी उन्नति कर ली है कि वैज्ञानिकों ने इन्हें सुरक्षित डिबिया में वन्द कर शत्रु के देश में वह डबिया बखेर दें तो हजारों, लाखों मनुष्यों में एक साथ हैजा, पेचिस फैल सकता है। इतना भारी प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाने पर भी आज तक वैद्य समाज इन जीवाणुओं कीटाणुओं से होने वाली व्याधियों को अभी भी वात, पित्त, कफ से उत्पन्न होना मानता है कितनी गहन अज्ञानता है।

चिकित्सा क्षेत्र में पेंसिलान, क्लोरोमायसिटीन, स्ट्रप्टोमायसीन आदि चमत्कृत औषधियों के उपयोग के अधिकार तो वैद्य समाज मांगता है किन्तु इस जैव विज्ञान के विवर्धित ज्ञान विज्ञान को नहीं अपनाता। न अपने को योग्य बनाने का प्रयत्न करता है। इस तरह यदि किसी वैद्य से कहो कि तुम्हें जैवों का कुछ भी पता नहीं तो साभिमान चट से प्रमाण प्रस्तुत कर देगा कि संसार को तो इन जीवाणुओं कीटाणुओं का ज्ञान १९वीं शताब्दी में आकर हुआ हमारे महर्षि उससे दो सहस्र वर्ष पूर्व जान चुके थे। यथा :—

रक्त संस्थाने अणवो वृत्ताश्चापादाश्चवर्णास्ताम्रः।
चरक।

रसवाही सिरास्थाना रक्तजा जन्तवोऽणवः।
अपादा वृत्त ताम्रश्च। वाग्भट॥

प्रसंगाद् गात्र संस्पर्शान्निश्वासात् सह भजनात्।
सहशय्या सनाच्चापि वस्त्र माल्यानुलेपनात्॥
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च।
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्तिनरान्नरम्॥ सुश्रुत॥

जब उन प्रमाण देने वाले वैद्यों से पूछते हैं कि यह औपसर्गिक बीमारियां छूत से लगती हैं और छूत गन्दगी से, मलिनता से बढ़ती है। मक्खी जैसे जानवर इनको बढ़ाते व फैलाते हैं। तुम्हारे घरों में सफाई नहीं, औषधालय में दवाइयों पर मार मुल्क का गर्दोगुबार पड़ा रहता है तुम्हारे खान पान में शुद्धता, स्वच्छता नहीं। स्वच्छता अस्वच्छता के भेद को जब तुम समझते नहीं हो तो इन प्राचीन प्रमाणों का अर्थ भी क्या समझते होगे? हमें तो दिखाई नहीं देता। जो सिद्धान्त व्यवहार में नहीं लाये जाते उस का प्रमाण देना संसार को धोखा देना है। ज्ञान वह है जिसको व्यवहार में लाया जाय, जिस ज्ञान को व्यवहार में नहीं लाया जाता उसको हम वास्तव में जानने का झूठा दावा करते हैं।

जीवाणु, कीटाणु आंख से दिखाई देने वाले जैव नहीं। जीवों को हम अपनी आंखों से देख सकते हैं किन्तु जैवों को नहीं देख सकते। चरक सुश्रुत के समय सूक्ष्मदर्शक नहीं थे। कार्य कारण के सम्बन्ध को देखकर उन्होंने अनुमान कर लिया था कि मन्थर, विषम आदि ज्वर जो एक विशेष समय में आकर संचार करते हैं। राजयक्ष्मा, अभिष्यन्द, कुष्ठ आदि रोग संस्पर्श आदि कारणों से एक दूसरों को लग जाते हैं इनका उपसर्ग अवश्य एक बीमार व्यक्ति से दूसरे स्वस्थ व्यक्ति में होता है। यह अनुमानजन्य बात थी, यदि उस जमाने में कहीं अणुवीक्षण यन्त्र उन ऋषियों के हाथ आ गये होते तो आज आयुर्वेद त्रिदोषवाद के कन्धों पर रख कर बन्दूक न चलाता। आयुर्वेद सच्चे अर्थों में वैज्ञानिक होता। आज जो हट जो दुराग्रह हमारे भीतर है उन ऋषियों के भीतर यह नहीं था वे सत्पथ के अनुयायी थे, सचाई के कायल थे। वे विरोधी की भी सच्ची बात मान लेते थे। इसी से उस समय के अनुसार उन्होंने अपने युग में महान् उन्नति की। आज हमारी यह दशा है कि अड़ियल टट्टू बने न आगे बढ़ते हैं, न पीछे की ओर देखते हैं। इसलिये यदि वैद्य समाज ने प्रतिस्पर्द्धियों के सन्मुख ठहरना है तो उन्हें नव्य ज्ञान विज्ञान को पूर्णतया आत्मसात् कर उतना ही योग्य बनना चाहिये जितने कि डाक्टर हैं तभी हम जीवित रह सकते हैं अन्यथा जल्दी ही मृत्यु के ग्रास बन जायेंगे यह निश्चित बात है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्त स्कन्दन

पिछले महीने २३-४-६० को डाक्टर आशानन्द जी के हृदय में रक्त स्कन्दन हो जाने से देहान्त हो गया। आपको यह कष्ट कोई डेढ़ वर्ष हुए तब हुआ था जिसका निदान वैज्ञानिक व यान्त्रिक साधनों से ही हुआ था। आयुर्वेदज्ञ इस बात को समझ ही नहीं सकते कि हृदय में या रक्त वाहनियों में कहीं रक्त जम भी सकता है। क्योंकि हमारे यहां तो रक्त को भ्रमणशील माना ही नहीं। हम तो मानते हैं 'अहरह गंच्छतीत्योरसः' दिन रात शरीर में रस गतिमान रहता है। वह रस भी हृदय के माध्यम से नहीं, स्रोतों के माध्यम से। किन्तु इस समय के प्रत्यक्ष ज्ञान से हमारे इन शास्त्रीय विचारों का समर्थन नहीं होता। इस समय जिस शरीर सम्बन्धी क्रिया व्यापार को प्रत्यक्ष में देखा जाता है हमारा वैद्य समाज उस ज्ञान को न अपना कर अपनी शास्त्रीयधारा को ही पकड़े बैठा है, क्या यह बुद्धिमानी है? मेरे विचार में वैद्यसमाज का इस तरह से शास्त्रीय सिद्धान्त पर अड़े रहना समझदारी नहीं। हम जब तक अपने ग्रन्थों में विद्यमान इस तरह के सिद्धान्तों पर विश्वास बनाये रखेंगे और उनके स्थान में ऐसे वास्तविक सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं करेंगे तब तक हम आयुर्वेद में उन्नति नहीं कर सकते। आयुर्वेद कोई स्थिर या किसी ग्रन्थ में लिखे ज्ञान तक सीमित नहीं है। आयु का ज्ञान प्राप्त करने के लिये जिस तरह हमारे पूर्व पुरुषों ने प्रयत्न किया था उसी तरह उनकी लिखी पुस्तकों से आगे भी अपने ज्ञान को वहीं तक सीमित न रखकर हमें आयु के ज्ञान को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये। क्योंकि ज्ञान की सीमा नहीं बांधी जा सकती।

इस समय हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि जब शरीर में सूई चुभोदें तो उस चुभे स्थान से रक्त निकलता है। शरीर के किसी भाग का शल्य कर्म होने पर रक्त ही निकलते देखा जाता है कहीं से रस नहीं निकलता। फिर रस के परिभ्रमण का सिद्धान्त क्यों पढ़ाया व माना जाय? रक्त ही जब शरीर की धमनी व सिराओं में बहता देखा जाता है और हृदय रूपी पम्प उसके आवागमन को बनाये रखने वाला शरीर में यन्त्र ज्ञात हो चुका है तो इसके द्वारा रक्त परिभ्रमण के सिद्धान्त को जैसा कि पाश्चात्य डाक्टर मानते हैं वैसा मानने में वैद्य समाज को क्या आपत्ति? हमारे तो विचार में वैद्य समाज को इस बात पर मिलकर विचार करना चाहिये कि शास्त्रों में कल्पित ऐसे जो विषय विद्यमान हों उन्हें छांट २ कर शास्त्रों से निकाल देना चाहिये और उनके स्थान पर जो वास्तविक शरीर में क्रिया व्यापार ज्ञात हो रहे हैं उन्हें मानना व अपनाना चाहिये।

आप देखते हैं कि जब चोट लग जाती है और उस चोट के क्षत स्थान से रक्त बहने लगता है तो थोड़ी ही देर में रक्त जो बाहर निकलता है वह जम जाता है इसी तरह क्षत स्थान में भी रक्त जमने लगता है और जमकर उसका ऐसा थक्का बन जाता है कि फिर उस क्षत से रक्त का निकलना भी बन्द हो जाता है। ऐसा क्यों होता है? इसका विवेचन आयुर्वेद ग्रन्थों में नहीं मिलता। यद्यपि शास्त्रकार रक्त को शरीर का एक धातु मानता है। अर्थात् रक्त शरीर का एक आवश्यक अंग भाग है। अंग भाग होने के कारण ही इसे आजकल जीवनाधार माना जाता है। क्योंकि शल्यकर्म के समय प्रत्यक्ष देखा जाता है कि शल्यकर्म होने पर यदि रक्त संचार की स्थिति से अधिक रक्त निकल जाय और हृदय रक्त से खाली हो जाय तो हृदय की गति बन्द हो जाती है। इसी बात को देखकर प्रयत्न हुआ कि शल्यकर्म के समय वाहनियों में रक्त की इतनी मात्रा बनी रहनी चाहिये कि हृदय के कोष्ठ रक्त से खाली न रहें तो शल्य कर्म के समय मनुष्य का जीवन सुरक्षित रह सकता है। तभी तो अन्य मनुष्यों का रक्त लेकर शल्यकर्म किये जाने वाले व्यक्ति को दिया जाने लगा। इस रक्त दान का परिणाम देखने को यह मिला कि घण्टों शल्यकर्म होते रहने पर जितना रक्त एक ओर शल्य स्थान से निकलता था उतना ही रक्त सिरा मार्ग से शल्य कर्मा मनुष्य के शरीर में पहुँचाते रहते थे इस तरह जब हृदय कोष्ठ रक्त से पूरित बने रहते हैं शल्य कर्मा व्यक्ति मृत्यु के मुँह में नहीं जाता। शल्य चिकित्सक लाखों शल्यकर्मा व्यक्तियों का जीवन इस तरह बचाने में सफल सिद्ध हुए। इसी से आज हर शहर में रक्त बैंक हु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए हैं और उन रक्त बैंकों में सैंकड़ों बोतलें रक्त की सदा ही सुरक्षित रहती हैं जिससे समय पर शल्यकर्मा व्यक्ति को जीवन का लाभ मिलता रहता है।

इस रक्त में कौन कौन से द्रव्य मिले होते हैं? आयुर्वेद ग्रन्थों में इसका भी कोई उल्लेख नहीं। वास्तव में हम जिस आहार सार को रस रूप धातु मानते हैं। यह रस रूप धातु शरीर के किन्हीं भिन्न स्रोतों में नहीं रहती। केवल अन्न प्रणाली से जब अन्न रस का सार बन कर शोषित होता है वह प्रति हारिणी सिरा व लसिका वाहनियों के मार्ग से अवश्य यकृत तक पहुँचता है किन्तु यकृत जब उस रस को संस्कारित कर डालता है तब वह रस वहीं से रक्त में मिलकर परिभ्रमण पथ में आ जाता है। और तन्तुओं तक पहुँचकर शरीर का पोषण करता है। उस समय उसका कुछ रस अभिस्यन्दित होकर भिन्न भी हो जाता है जो लसिका वाहनियों के मार्ग से सिरा रक्त में मिल जाता है जो शुद्ध होने के लिये हृदय के मार्ग से फुप्फुस तक पहुँचता है और फिर शुद्ध होकर हृदय में आ जाता है। इस तरह रक्त हृदय रूपी पम्प के द्वारा शरीर के कोने कोने में पहुँचता है। इसके अहर्निश होते कार्य को भी आयुर्वेदज्ञ नहीं जानते थे। इससे भी सूक्ष्म बात उस रक्त में भला मिले द्रव्यों को वे कैसे जान सकते थे क्योंकि पूर्व काल में हमारे पास ऐसे साधन नहीं थे जिनसे हम रक्त की रचना को देख व समझ सकते। यह तो इन्हीं दो शताब्दियों में सम्भव हो सका जब यान्त्रिक साधनों से अदृश्य वस्तुओं के रूप प्रत्यक्ष देखने समझने में समर्थ हुए।

तब शरीर में रक्त स्कन्दन कैसे होता है?

हमारे रक्त में जो आहारीय सार रस रूप में सदा विद्यमान रहता है जिसमें शर्करा श्रेणी के स्नेही श्रेणी के तथा अस्रजन श्रेणी के अनेकों द्रव्य विद्यमान रहते हैं। इससे भिन्न इस आहारीय रस में कुछ खनिज लवण व लोह, मग्न आदि के लवण व क्षार आदि भी मिले रहते हैं। इन द्रव्यों से भिन्न रक्त का अपना सजीव अंश रुधिराणु, श्वेताणु, चक्रिका आदि का भी होता है। यह भी उस रक्त में सदा विद्यमान रहता है। इन्हीं के कारण तो शरीर के इस द्रव्य की रक्त संज्ञा पड़ती है। इससे भिन्न इस रक्त में शरीर के मलभूत द्रव्य जैसे मूत्रिया, पवनियां, कज्जल द्विऊम्मिद, कज्जलिकाम्ल आदि कई द्रव्य इसमें विद्यमान रहते हैं जो सदा मल निस्सारक अंगों तक पहुँचकर उससे भिन्न कर लिये जाते हैं। इनसे भिन्न रक्त में कुछ शरीर संरक्षणार्थ, व शरीर क्रिया व्यापार संपादनार्थ अनेक द्रव्य विकर ओज पुरोस्कन्दिन, सूत्रजन आदि ऐसे द्रव्य भी विद्यमान रहते हैं जो अकस्मात् चोट आदि लग जाने पर रक्त को जमाने में सहायक होते हैं। इन्हीं द्रव्यों की उपस्थिति के कारण रक्त जब शरीर से बाहर निकलने लगता है तब जमने लग जाता है। इन रक्त को जमाने वाले उक्त द्रव्यों का सन्तुलन शरीर में सदा ऐसे रूप में रहता है कि शरीर में भ्रमण करता हुआ रक्त कभी जमा नहीं करता। किन्तु, जब रक्त में विद्यमान द्रव्यों के सन्तुलन में अन्तर रहने लगता है अर्थात् कुछ द्रव्यों की मात्रा जब रक्त में मर्यादा से अधिक बढ़ी रहती है तभी रक्त की स्वाभाविक स्थिति में अन्तर आ जाता है।

आयुर्वेदज्ञों ने शरीर में दोषों की साम्यावस्था का बना रहना स्वस्थ रहने का लक्षण माना है। किन्तु शरीर में विद्यमान रहने वाले द्रव्यों का अब तक जो प्रायोगिक ज्ञान प्राप्त हुआ है उन द्रव्यों में दोषों की विद्यमानता का कोई प्रमाण नहीं मिलता। आहार सार रस रूप द्रव्यों की साम्यासाम्य स्थिति तो देखी जाती है। लवणों की या अनैन्द्रिक धातुओं की साम्यासाम्य स्थिति से या ओजों विकरों की न्यूनाधिकता से नैरोग्यता या रोग का सम्बन्ध पाया जाता है किन्तु दोषों की कहीं भी शरीर व्यापकता के कोई प्रमाण नहीं मिलते। जब यह दोष शरीर व्यापि नहीं तो इनकी साम्यासाम्य स्थिति से रोगारोग्य की स्थिति का क्या सम्बन्ध। इसीलिये नव्य ज्ञान के प्रकाश में हमें इस सिद्धान्त पर नये सिरे से विचार करना चाहिये।

किन द्रव्यों की असाम्यता से शरीर के भीतर रक्त स्कन्दन होता है? देखा गया है कि जब प्रौढ़ मनुष्य ४०-६० के मध्य पहुँचता है उन्हीं मनुष्यों को रक्त स्कन्दन की शिकायत देखी जाती है। उनमें यह रोग अधिक होता है जिनको अधिक पुष्टि कर आहार स्नेही द्रव्य अधिक मात्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सुलभ रहते हैं। अर्थात् सुख सम्पन्न परिवार वालों में ही यह रोग लगते देखा जाता है। जिन्हें अच्छा स्नेह सिक्त आहार नहीं मिलता जैसे श्रमिक वर्ग उन्हें यह रोग प्रायः नहीं होता।

अनेकों परीक्षाओं के बाद ज्ञात हुआ है कि जो व्यक्ति अण्डे, खीर, मलाई, मक्खन, दूध, घी युक्त आहार अधिक लेते रहते हैं। उनके रक्त में विमेदीय द्रव्य सदा ही सन्तुलित मात्रा से अधिक बने रहते हैं। ऐसे व्यक्ति के शरीर मेदस्वी बने रहने के कारण वे स्थूल-काय हो जाते हैं। प्रायः ऐसे स्थूल काय व्यक्तियों का रक्त अधिक विमेद की विद्यमानता के कारण गाढ़ा हो जाता है। जब रक्त की प्रगाढ़ता बढ़ी रहती है यह विमेद शरीर के भीतर भ्रमण शील रक्त के स्कन्दन में सहायक होता है।

रक्त स्कन्दन के साथी रोग

जिन व्यक्तियों के शरीर में मेद बढ़ा रहता है देखा गया है कि इसके कारण सबको रक्त स्कन्दन का ही रोग नहीं होता। कइयों को धमनी काठिन्य का रोग लग जाता है कइयों को इस धमनी काठिन्य के कारण रक्त चाप वृद्धि का रोग भी लग जाता है। विमेद वृद्धि से रक्त में विमेद का असन्तुलित स्थिति में बना रहना उक्त रोगों को उत्पन्न करने में कारण है। कुछ विद्वानों के विचार हैं कि उक्त तीनों रोग नव्य सभ्यता की देन हैं पूर्वकाल में यह रोग नहीं थे। मैं ऐसा विश्वास नहीं करता। हृदय गति के अवरोध या अवसाद हृद्शूल व रक्त चाप वृद्धि से पूर्वकाल में भी मनुष्यों की मृत्यु हुआ करती थी। पुराणों में अनेक स्थलों पर ऐसा उल्लेख मिलता है कि अमुक व्यक्ति बात करते २ मर गया, अमुक व्यक्ति अकस्मात मृत हो गया। इस अकस्मात मृत्यु का कारण उस पूर्व काल में ज्ञात न था। हृदय शूल अर्धाङ्गवध अर्दिति आदि रोगों का उल्लेख आयुर्वेद ग्रन्थों में है। अमुक मनुष्य अकस्मात् क्यों मर गया। अर्धांगवध हृदयशूल क्यों होते थे? जब तक कोई अनुसन्धान के साधन न हों ऐसी बातों को जानना कठिन है। हृदयावसाद से हुई मृत्यु के कारण को तो तभी जाना जा सकता है जब उसकी खोज की जाय। इस उन्नीसवीं शताब्दी में ही इस बात को जानने का प्रयत्न हुआ कि मनुष्य जो अकस्मात् मर जाता है अर्धाङ्ग जो होता है उसमें क्या कारण है? इस खोज में ही इस बात का ज्ञान हुआ कि मृत्यु हृदय की गति बन्द हो जाने से होती है अर्धांग वध रक्तचाप वृद्धि के कारण मस्तिष्क के भीतर कोई छोटी सी धमनी फट जाने से होता है। इस समय जब यह जानने का प्रयत्न हुआ कि हृदय की गति क्यों बन्द हो जाती है? इसकी खोज से ज्ञात हुआ कि हृदय के पोषणार्थ जो रक्त युग्म धमनियों के द्वारा उसके भीतर पहुँचता रहता है। इन हृदय पोषणी युग्म धमनियों के भीतर जब संचरण शील रक्त अधिक प्रगाढ़ होकर जमने लग जाता है और ग्राहक व क्षेपक कोष्ठों के भीतर जब रक्त का संचार बन्द हो जाता है तो ऐसी स्थिति आते ही हृदय का संकोच प्रसार रुक कर उसकी गति बन्द हो जाती है। जहां चलते २ हृदय की गति बन्द हो जाती है उसी समय क्षणों में ही शरीर के समस्त क्रिया व्यापार रुक जाते हैं और मनुष्य मर जाता है।

हृदय शूल (Angina Pectoris)

हृदय में एक विशेष प्रकार का शूल भी ऐसे व्यक्ति को कभी कभी देखा जाता है। हृदय शूल के समय उसकी व्यथा बाहु की ओर चला करती है। यह हृदयशूल का प्रधान लक्षण है। यह शूल प्रायः उन्हीं व्यक्तियों को देखा जाता है जिनके हृदय की पोषणी धमनियों में या तो काठिन्य होकर उनमें रक्त संचार कम हो जाता है या फिर उसमें रक्त स्कन्दन हो जाता है।

रक्त स्कन्दन के लक्षण

जिन व्यक्तियों की पोषणिका धमनियों में से किसी में भी रक्त रुक कर जमने लगता है और हृदय के किसी अंश का पोषण रुकता है तो इस हृदय कार्य अवरोध के कारण उस व्यक्ति का शरीर शिथिल हो जाता है चलने फिरने में साँस फूलने लगता है और वह कोई श्रम का काम नहीं कर सकता। इसी से वह चारपाई पकड़ लेता है। लेटे रहने से उसे कुछ आराम मिलता है। जिसके हृदय की किसी पोषणिका धमनी में रक्त स्कन्दन होता है उसे जोर का हृच्छूल उठता है। और श्रम करने पर छाती में दर्द होने लगता है। श्रम रहित होने पर कई बार बिलकुल शान्त हो जाता है कई बार कम हो जाता है। कई बार रक्त के जमने की प्रकृति घट जाती है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगी को कुछ दिन आराम मिलता है किन्तु विभेद वृद्धि के कारण फिर कुछ काल पाकर दौरा होता है और कई बार इतनी शीघ्रता से रक्त स्कन्दन होता है कि हृदय की गति बन्द हो जाती है। जिन व्यक्तियों को धमनी काठिन्य का रोग हो जाता है उन्हीं व्यक्तियों को रक्त चाप वृद्धि का रोग प्रायः हो जाता है। क्योंकि धमनी काठिन्य से उनकी स्थिति स्थापकता घट जाती है। जब धमनियों में लचक न रहे तो जितना रक्त धमनी में धकेला जाता है उस धक्के का वेग धमनी जब सहन करने में असमर्थ हो जाती है तो इसी कारण रक्त वह स्रोतों में चाप का वेग बढ़ जाता है। इस वेग का प्रभाव मस्तिष्क में व्याप्तमान धमनिका जाल पर अधिक होता है। वहां के कोमल धमनिकाओं पर जब रक्त चाप वृद्धि का प्रभाव पड़ता है तो कोई न कोई कोमल धमनिका की दीवार उस चाप के प्रभाव से फट जाती है। जहां कोई धमनिका फटी उस मार्ग से रक्त स्रव कर मस्तिष्क के किसी भाग पर संचित होने लग जाता है। जब मस्तिष्क के किसी भाग पर रक्त आकर जम जाता है उस भाग के निष्क्रिय होते ही शरीर का जौन सा अंग भाग उससे सम्बन्धित होता है वह भी निष्क्रिय हो जाता है। उसी का नाम पक्षाघात या अर्धांगवध,अर्दिति आदि हैं।

मस्तिष्क में रक्त संचय को जानने के पूर्वकाल में हमारे पास कोई साधन नहीं थे। इसीलिए हमने वात व्याधि की कल्पना खड़ी की थी। कहां मस्तिष्क में रक्त का निकलकर वहां जमना कहां वात-व्याधि। इन दोनों का कौन सा मेल। पर हमने जिस बात को मान लिया चाहे वह झूठ हो या सच हम उस पर विचार नहीं करते लकीर के फकीर बने उसको सत्य माने जा रहे हैं, रूढ़िवादिता इसी का नाम है। पर हमें जब किसी रोग का निदान करना हो तो उस समय हमें चिकित्सार्थ यह जानना आवश्यक होता है कि वह है वास्तव में किस कारण से? यदि निदान ठीक से हो जाय तो चिकित्सा सुलभ हो जाती है। औषधि ढूंढने में कठिनाई नहीं होती। यदि सही रोग का निदान न हो तो फिर सारी चिकित्सा कल्पना के आधार पर करनी पड़ती है और औषध का उपयोग करते करते इस बात को जानने का प्रयत्न होता है कि कौन सी औषध लाभ करेगी। यह परीक्षा का विषय बन जाता है। इसी से अनेकों रोगी वैद्य के हाथ से औषध परीक्षा करते करते निकल जाते हैं। इसीलिये तो शास्त्रकार का उपदेश है।

रोग मादौ परीक्षेत तदन्तर मौषधम्।

ऋषिकुल विद्यापीठ हरिद्वार में

अखिल भारतीय आयुर्वेद शिक्षा सम्मेलन

तिथि ७ जून १९६० को श्री ऋषिकुल विद्यापीठ हरिद्वार में अखिल भारतीय आयुर्वेद शिक्षा सम्मेलन दिल्ली आयुर्वेद एवं यूनानी बोर्ड के रजिस्ट्रार कविराज श्री आशुतोष जी मजुमदार की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री कविराज मजुमदार जी ने आयुर्वेदीय शोध कार्य के लिये अनुसन्धान केन्द्र खोलने की आवश्यकता की चर्चा की। आयुर्वेदीय शिक्षा के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुए आपने कहा कि शिक्षा पद्धति में न केवल संहिताओं पर उपलब्ध भाष्यों का ही उपयोग किया जाना चाहिए बल्कि विज्ञान से सम्बद्ध विषयों में किए गए आधुनिक वैज्ञानिक शोधों की उपलब्धियों से भी लाभ उठाना होगा। आपने यह भी सुझाव दिया कि प्रत्येक आयुर्वेदिक संस्था में शोध कार्य की पर्याप्त व्यवस्था रहनी चाहिए तथा समस्त भारत में आयुर्वेद की शिक्षा, परीक्षा, उपाधि, पाठ्यक्रम मान्यता का एक और समान क्रम होना चाहिए।

शिक्षा स्तर की व्यवस्था और संचालन के लिये उन्होंने भारतीय चिकित्सा परिषद (Indian Medical Council) जैसी एक भारतीय चिकित्सा शास्त्र परिषद् (Council of Indian Medicine) की विधिवत् स्थापना की मांग की। आपने यह भी अनुरोध किया कि सामुदायिक विकास योजना, स्वास्थ्य केन्द्रों, राष्ट्रीय विकास योजनाओं आदि में सरकार आयुर्वेदीय स्नातकों को भी आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के स्नातकों के समकक्ष सुविधायें एवं अधिकार दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेत्र दर्शन से अनेक रोगों का ज्ञान

शास्त्र कहता है :—दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेताथ रोगिणम् । रोग की वस्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिये रोगी के आकृति, रूप, हाव भाव अंग प्रत्यंगों को देख कर, उन्हें टटोल कर, यन्त्र साधनों से उसके मल, मूत्र, नख, नेत्र, नाड़ी, रक्त आदि को अच्छी तरह से देख कर उसके आधारों पर रोग का निदान करे। नेत्र भी रोग निदान में सहायक होते हैं अनेक रोगों का नेत्रों पर, पलकों पर, नेत्र की आन्तरिक रचना पर काफी प्रभाव पड़ता है इसी से अनेक रोगों को समझने में नेत्रों की स्थिति, पलकों की स्थिति को देख कर रोग को समझने में कुछ सहायता मिलती है। इसलिये हम इस पर कुछ विचार करेंगे।

रक्त विकारों में नेत्र दर्शन से रोग का ज्ञान— किसी व्यक्ति के शरीर में जब रक्त कणों अर्थात रुधिराणुओं की संख्या घट जाती है अर्थात रक्ताल्पता होती है तो इसका प्रभाव नेत्रांडों पर स्पष्ट दिखाई देता है। नेत्राण्डों की रक्तिमा घट कर उसके स्थान पर श्वेतता दिखाई देती है नख भी श्वेत भासते हैं। नख, नेत्राण्ड जब श्वेत वर्ण के दिखाई देने लगते हैं तो वैद्य उनके इन नेत्र दर्शनों से ज्ञात कर लेता है कि इस रोगी को पाण्डु रोग हो रहा है। यदि किसी ऐसे रोगी को घातक पाण्डु रोग हो रहा हो तो कुछ रोगियों के दृष्टि पटल में रक्त स्राव भी देखा जाता है। किसी २ के दृष्टि पटल में शोथ भी हो जाता है। और प्रायः नेत्र की सूक्ष्म धमनिकाएं रक्ताल्पता के कारण श्वेताभ वक्र हो जाती है। किन्तु सिरकाएं यथावत् से कुछ बढ़ी हुई दिखाई देती हैं। यदि किसी रोगी के हृदय कपाट में कोई विकृति हो रही हो तो उसका प्रभाव दृष्टि पटल पर पड़ता है ऐसे रोगियों के दृष्टि पटल या काचरस में रक्तस्राव प्रायः देखा जाता है। यदि उक्त विकार के साथ रोगी की माध्यमिक धमनी का मार्ग अवरुद्ध हो जाय तो उसके कारण एकाएक दृष्टि नाश हो जाता है। अर्थात एकाएक रोगी देखने से रह जाता है। यदि किसी अन्य रोग के प्रभाव से बृहद्धमनी का प्रसार हो रहा हो और उस प्रसार का प्रभाव ग्रैवेयक स्वतन्त्र नाड़ी मण्डल पर पड़ रहा हो तो उसका प्रभाव बहिर्नेत्रगोलकों पर पड़ता है इससे नेत्रगोलकों में भी प्रसार होता है। ध्यान से यदि कनीनिका को देखा जाय तो वह भी फैली हुई होती है।

यदि किसी रोगी को धमनी काठिन्य के रोग के कारण उसे रक्तचाप वृद्धि की भी साथ शिकायत हो तो ऐसे व्यक्ति के दृष्टि पटल में भी विकृति आ जाती है। यदि किसी रोगी को हृदय विकृति के साथ आन्तरिक शोथ की कुछ स्थिति हो रही हो तो ऐसे रोगी जब प्रभात में सो कर उठते हैं उनकी पलकें भारी व शोथ युक्त होती हैं। पूछने पर यदि उक्त लक्षण रोगी बतलावे तो समझना चाहिये कि इसके हृदय के किसी भाग में शोथ की स्थिति है।

वृक्क विकारों में नेत्र दर्शन से रोग का ज्ञान— यदि किसी रोगी को वृक्कों में विकृति हो रही हो तो उसका प्रभाय नेत्रों पर पड़ता है। जिन व्यक्तियों के वृक्कों में शोथ की स्थिति बनी रहती है उन रोगियों के नेत्र पलकों के नीचे भी प्रायः शोथ बनी रहती है। अर्थात नेत्र के पलकों का निचला भाग कुछ फूला हुआ होता है। और नेत्रों पलकों को उलट कर देखा जाय तो नेत्रकला भी कुछ शोथयुक्त दिखाई देती है। इससे वृक्क रोगों का ज्ञान हो जाता है।

पचन विकारों का नेत्र दर्शन से ज्ञान–यदि किसी व्यक्ति के नेत्रों की कर्णिका का शोथ हो रहा हो या तारा मण्डल का शोथ हो रहा हो या नेत्र सन्धिगात्र में शोथ हो रहा हो तो इस बात की सम्भावना है कि उस रोगी को दन्तपूय(पायोरिया)रोग है। यदि नेत्र भारी २ रहते हैं या आन्तरिक कला में शोथ या मन्द २ दर्द भी प्रतीत होता है तो उस रोगी को कब्ज या मलावरोध की शिकायत होगी इसका अनुमान किया जाता है। यदि किसी के नेत्र पीत दिखाई दें नख भी पीले हो रहे हों तो स्पष्टतः पित्ताशय अवरोध है। उसी से पित्त ग्रहणी की ओर न जाकर रक्त में मिल रहा है इसीसे उक्त रोगी को कामला रोग है ऐसा निश्चय किया जाता है।

यदि किसी रोगी के नेत्र पलक भारी और नेत्र की आन्तरिक कला में कुछ शोथ के चिन्ह दिखाई दें तो पित्ता-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शय में भी शोथ है या यकृत में पित्ताशय के आसपास कहीं शोथ है ऐसा जानना चाहिये।

मस्तिष्क विकारों का नेत्र दर्शन से ज्ञान—यदि कोई रोगी ऐसा आवे जिस की नेत्रचालन क्षमता घटी हुई हो या तिर्यक दृष्टि से देखता हो, या द्विधा दृष्टि हो रही हो तो समझना चाहिये कि इस रोगी के मस्तिष्क में कोई विकार है। नेत्र नाड़ियों का मस्तिष्क से सीधा सम्बन्ध होता है। क्योंकि दृष्टि नाड़ी मस्तिष्क का ही एक भाग मानी जाती है। दूसरे नेत्र की ज्ञानेन्द्रिय क्षमता मस्तिष्क की कार्य क्षमता पर निर्भर करती है इससे जब मस्तिष्क में त्रुटि हो तो नेत्र के कार्य करने की क्षमता, गति निमीलोन्मीलन आदि के कार्य व्यापार घट जाते हैं। यदि मस्तिष्कावरण प्रदाह हो रहा तो कनीनिका में विकार आ जाता है तथा नेत्र पेशियों का आघात होने से दृष्टि तिर्यक हो जाती है।

यदि लगातार नेत्र गुहा तथा भ्रू भाग में पीड़ा बनी रहे तो इससे इस बात का पता लगता है कि नेत्र गोलक के पश्चातवर्ती नाड़ी में शोथ हो रही है। उससे उक्त पीड़ा है।

यदि नेत्र दृष्टि क्षेत्र अनियमित रूप से संकुचित हो रहा हो और उस दृष्टि क्षेत्र के मध्य पूर्ण या आंशिक अन्ध क्षेत्र भी दिखाई दे। या अक्षि आन्दोलन अव्यवस्थित हो रहा हो या द्विधा दृष्टि उत्पन्न हो गई हो तो मस्तिष्क में आघात हुआ ऐसा अनुमान किया जाता है। यदि मस्तिष्क का सर्वांगघात हो रहा हो तो ऐसी अवस्था में दोनों कनीनिकाएं असमान, अनियमित, संकुचित तथा कभी २ प्रसारित रह जाती हैं। और प्रकाश के प्रति उनकी क्रियाशीलता कम या पूर्णतया नष्ट हो जाती है। इसके पश्चात कभी दृष्टि नाश, दृष्टि क्षेत्र संकुचन भी देखा जाता है।

यदि दृष्टि नाड़ी क्षीणता, कनीनिका प्रसार तथा प्रक्षच्युति हो रही हो तो ऐसी विकृति सन्यास रोग अर्थात मस्तिष्क क्रिया विकार से देखी जाती है। यदि रक्त चाप वृद्धि से मस्तिष्क में रक्तस्राव हो रहा हो तो कनीनिका प्रसारित होकर रह जाती है और कनीनिका प्रसार में असमानता भी देखी जाती है।

यदि अहिफेन या इसी श्रेणी के कोई मादक द्रव्य अधिक दिये गये हों तो उस स्थिति में कनीनिका बहुत संकुचित हो जाती है और धतूरा जैसी किसी मादक औषध से मूर्छा आई हो तो कनीनिका प्रसारित हो जाती है।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के रोगों का नेत्र दर्शन से ज्ञान—यदि ह्रस्व दृष्टि हो रही हो या दृष्टिनाश हो रहा हो या दृष्टि पटल में विकृति आ रही हो तो नेत्र के इन विकारों से रोगी को मधुमेह होने की सम्भावना होती है। क्योंकि ह्रस्व दृष्टि का कारण यह होता है कि मूत्राधिक्य बना रहने पर रक्तस्थ व कोषस्थ लवणों की मात्रा मूत्र के साथ अधिक निकल जाती है इसीसे अभिसरणीय चाप की स्थिति बदल जाती है इसीसे नेत्र गुहा के द्रव पदार्थों का लवणांश काच के लवणांश की अपेक्षा जल्दी नष्ट हो जाता है। इसी कारण काच द्वारा द्रव का शोषण बढ़ जाता है इसीसे वह अधिक फूल कर ह्रस्व दृष्टि का रोग या उक्तरोग उत्पन्न करता है।

यदि किसी रोगी की दृष्टि नाड़ी में अपक्रान्ति आ जाय और दृष्टि क्षेत्र में परिवर्तन मिले या अर्ध दृष्टि नाश हो रहा हो तो इस विकार से पीयूष ग्रंथि में अर्बुद का आभास मिलता है क्योंकि पीयूष ग्रन्थि दृष्टि नाड़ी संगम के पास ही स्थित है इसीसे अर्बुद जब बढ़ता है तो दृष्टि नाड़ी को प्रभावित करता है और उसके दबाव से ही उक्त विकृति उत्पन्न होती देखी जाती है।

यदि किसी व्यक्ति को उक्त अर्बुद के कारण पीयूष ग्रन्थि के अग्र भाग की वृद्धि से अधिक ओज की मात्रा बन रही हो और उस रोगी को इस वृद्धि से एक्रोमिगेली रोग हो रहा हो तो ऐसी दशा में नेत्रगोलकों के किनारों की अधिक वृद्धि हो जाती है। तथा पलकें मोटी हो जाती हैं। यदि किसी व्यक्ति के नेत्राण्ड अपने गोलकों से उभर आये हों जिसे बहिर्नेत्रोद्गमन (Exopthalmos) कहते हैं। ऐसे व्यक्ति के नेत्राण्ड पूरी तरह पलकों से नहीं ढकते और जब वह किसी व्यक्ति की ओर देखता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह आँखें फाड़ २ कर देख रहा है। ऐसे रोगी की पलकें भी बहुत कम झपकती हैं। यद्यपि इसमें दृष्टि ह्रास नहीं होता। तथापि कर्णिका के नीचे का भाग शुष्क बना रहे और वह लालिमा युक्त वर्णित हो रहा हो तो कालान्तर में दृष्टि नाश हो सकता है इस विकृति में मूलतः अग्रिम पीयूष के चुल्लिकोत्प्रेरक ओज

[शेष पृष्ठ ११५ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान के चमत्कार

रुकी हुइ हृदयगति को चलाने वाली मशीन

इस समय के प्रयोगों से प्रत्यक्ष है कि जब हृदय को पूर्ण आहार नहीं मिलता, उसके भीतर रक्त संचार करने वाली धमनियों में से किसी धमनी के भाग में कोई अवरोध उत्पन्न हो जाता है और रक्त का आवागमन रुक जाता है तब हृदय काम करता करता अर्थात चलते चलते रुकने लगता है। अथवा एकाएक रक्त स्राव इतना अधिक हो जाय कि सिराएं रक्त से खाली होने लगें और हृदय के कोष्ठ रक्त से पूरित न हों तो हृदय कपोटों का खुलना और बन्द होना रुक जाता है इन्हीं कारणों से प्राणी मर जाता है। ५ मिनट तक उक्त कारणों से हृदय की गति बन्द रहे तो शरीर व मस्तिष्क पर कोई बुरा प्रभाव नहीं देखा जाता इतनी देर में यदि किसी विधि से हृदय को पुनः गति दी जा सके तो मनुष्य फिर मर कर जीवित हो जाता है।

तभी वैज्ञानिकों ने सोचना आरम्भ किया कि क्यों न कोई ऐसी मशीन बनाई जाय जो हृदय की गति को पुनः चालू करदे। इस सम्भावना पर विचार कर एक विलायत की विद्युत कम्पनी ने कुछ अन्य प्राविधिकों का सहयोग पाकर एक ऐसी मशीन का निर्माण आरम्भ कर दिया है जो हृदय की गति के रुक जाने पर उस मशीन को हृदय के साथ विशेष विधि से लगाकर वैद्युतिक प्रक्रिया से उसे चालू कर देने पर बन्द हुआ हृदय पुनः गतिमान् हो जाने की सम्भावना है।

मशीन विशेषज्ञों का कहना है कि यदि यह मशीन किसी ऐसे रोगी के हृदय पर लगा दी जायगी जिसका हृदय चलते २ बन्द होने वाला होगा तो इस मशीन की सूई इस खतरे की भी सूचना पहले दे दिया करेगी।

यदि इस मशीन के निर्माण में सफलता मिल गई तो आशा है हजारों हृदय रोग से मरने वालों को राहत मिल सकेगी। यह हैं आविष्कार जो हजारों प्राणियों को जीवन दान देने वाले सिद्ध होंगे। क्या वैद्य समाज इसको समझने जानने की योग्यता प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा?

औपसर्गिक व्याधि नाशक नई दवाई

जब से जैवोद्भवी औषधियों का आविष्कार हुआ है तब से जैव कृषि विशारद इस बात की खोज करते आ रहे हैं कि कौन कौन सी जाति के कीटाणु कृषि-वर्धन काल में कौन कौन से उपयोगी द्रव्य बनाया करते हैं। पैन्सिलीन के बाद दूसरी जाति के कीटाणुओं से स्ट्रेप्टोमायसीन उत्पन्न होती पाई गई। फिर अन्य एक और कीटाणु जाति से क्लोरोमायसिटीन पैदा होती पाई गई। इस तरह इन जैवोद्भवी औषधियों के आविष्कार का जब सिलसिला चल पड़ा तो वैज्ञानिकों का उत्साह बढ़ा और वे सतत प्रयत्न में लगे कि कोई ऐसी भी जैवोद्भवी औषध इन जैवों से बनकर निकल सकती है जो अनेकों संचारी औषधियों पर रामवाण सिद्ध हो सकती है। इसी खोज में अमेरिका को सफलता मिल गई है। न्यूयार्क की सूचना है कि वहां की लेडरले जैव प्रयोगशाला बड़े प्रयत्न के बाद डिक्लोमापसीन नामक एक ऐसी जैवोद्भवी औषध का आविष्कार करने में सफल हो गई है जो फुप्फुस प्रदाह (न्यूमोनियां), पूयमेह (गनोरिया), उदपंश (सिफलिस), दद्रु, पामा, विचर्चिका, कुष्ठ, रक्त विकार, फोड़ा, फुन्सी आदि अनेक प्रकार के कीटाणु जन्य व्याधियों में यह रामवाण सिद्ध हुई है। अब तक ५ हजार रोगियों पर आजमाई जा चुकी है सबों को निश्चित रूप से लाभ हुआ है।

वैद्य समाज बाबा जी की झोली की ऐसी चुटकी भर ऐसी दवा की इच्छा अवश्य रखता है कि वह एक ही दवा हर मर्ज पर काम दे। यह स्वयम् अनुसन्धान न करके किसी बाबा जी से मिलने की आशा लगाये उनकी सेवा पूजा तो अवश्य करता है किन्तु स्वयं अनुसन्धान के मार्ग पर नहीं आता। भला इन मुफ्तखोरों को ऐसी अनमोल विधि कौन दे सकता है? बिना हाथ मुख तक ले जाये जब मुख में ग्रास नहीं पड़ता तो निश्चय ही बिना श्रम के कल्याण नहीं।

कृत्रिम हीरा बनने लगा

हम सब रसायनी रसायन की ठरक में न जाने कितना धन का अपव्यय कर चुके हैं किन्तु इसमें कितने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफल हुए ? यह दिखाई नहीं देता। क्योंकि एक धातु दूसरी धातु में किस तरह परिवर्तित होती है ? इसको हम सब न तो वैज्ञानिक विधि से सीखे हैं न समझते हैं। जब तक तत्त्व परिवर्तन के सिद्धान्त को वैज्ञानिक विधि से नहीं समझा जा सकता तब तक कोई भी व्यक्ति एक धातु को दूसरी धातु में नहीं बदल सकता यह निश्चित बात है।

कृत्रिम वज्र या हीरा निर्माण में मनुष्य तभी सफल हुआ, जब पहले वह इस बात को समझ सका कि हीरा वास्तव में है क्या वस्तु ? जब प्रयोगों से यह जाना गया कि हीरा तो केवल कोयला या कज्जल का ही एक रूपान्तर रूप है। हीरा, लेखनिका (ग्रेफाइट) और कज्जल तीनों ही कोयले के रूपान्तर रूप हैं। तब इस बात की खोज होने लगी कि पृथिवी गर्भ में यह कोयला लेखनिका और हीरा में कैसे बदला करता है। जर्मनी में इस पर सबसे प्रथम प्रयोग हुए गले हुए लोहे के सैंकड़ों मन द्रव के भीतर शुद्धकज्जल के पिंड को विशेष विधि से उस द्रव लोह के मध्य पहुँचा कर उस द्रव लोह को एक दम ठण्डा किया गया तो द्रव लोहा जब शीतल होकर चारों ओर से संकुचित हुआ तो उस कज्जल पिण्ड पर भयंकर उत्ताप और चाप (दबाव) जब चारों ओर से पड़ा तो कज्जल के परमाणु घुटकर परस्पर इतने मिल गये कि वह अपना काला रूप छोड़ कर स्वच्छ बिल्लौरवत् आभा प्रभावान बन गये। जब उस लोह पिण्ड को तेजाब में गला कर उसमें हीरे की कनियां निकाली गईं तो वह इतनी छोटी छोटी बनी थीं कि उनसे उस श्रम का मूल्य भी प्राप्त नहीं हुआ तभी इस विचार को छोड़ दिया गया था। किन्तु प्रयत्न करने वालों ने प्रयत्न जारी रखा। अभी ताजी सूचना आई है कि अमेरिका की जनरल एलेक्ट्रिक कम्पनी ने एक ऐसी मशीन तय्यार कर ली है जिसमें कज्जल पर १८ लाख पौण्ड का दबाव तथा २००० से लेकर क्रम से ४४०० शतांश तक उसमें उत्ताप उत्पन्न किया जा सकता है इस दबाव और उत्ताप पर कज्जल के अणु हीरा में बदल जाते हैं उनके निर्मित्त हीरा की कनियां बड़ी हैं और लागत भी कम आती है। यह है रसायन।

समुद्री कीचड़ गारे से औषध का निर्माण

समुद्र के किनारे कहीं कहीं समुद्र के भीतर दबा हुआ ऐसा गाढ़ा कीचड़ गारा निकलता है, जो विशेष प्रकार का होता है। मनुष्य की खोज ने उस गारे को एकत्र कर उसे भभके में भर कर उड़ाया कि इसमें से क्या निकलता है। उसमें से जो वस्तु स्रवित हुई वैज्ञानिकों ने उसका उपयोग चूहों, शशकों पर किया। उसके सूची भरण देने पर देखा गया कि यह शोथ को कम करती है और रक्त संचार को बढ़ाती है। देखा गया है कि इसके सूची भरण देने पर कोषाओं में उत्तेजना बढ़ती है और उनकी रासायनिक क्रियाएं तेज हो जाती हैं। इसी से सन्धिवात आम वात के रोगियां को जब इसके सूची भरण दिये गये तो उनको काफी लाभ पहुँचा और जहां जहां सन्धि में द्रव संचित हो गये थे इसके प्रयोग से वह संचित द्रव वहाँ से हट कर रक्त में आ गया इससे रोगी को बहुत आराम मिला। इन प्रयोगों की सफलता देखकर इसको उपयोग के लिये जब स्वास्थ्य गृहों और अस्पतालों में प्रयोगार्थ दिया गया तो उन रोगियों को काफी लाभ हुआ। इसीसे इसका प्रचार बढ़ा।

यह आविष्कार इस्टोनियां के वैज्ञानिकों ने किया है इस्टोनियां के समुद्री तट पर यह कीचड़ बहुतायत से निकलता है। इस स्रवित की हुई वस्तु का नाम हुमीसोल रखा गया है।

जड़ चेतन जग जीवजत विश्व कीन्ह कर्तार।
सन्त हंस गुण गहहिं पय परिहरि वारि विकार॥

तुलसीदास की यह उक्ति आजकल वैज्ञानिकों पर घटित होती है। आधुनिक अविचारी साधुओं पर नहीं। इस युग में वैज्ञानिक ही सच्चे सन्त हैं। जो संसार के उपकारार्थ अनेक खोजें करते रहते हैं। पूर्वकाल के सन्त भी यही किया करते थे।

]शेष पृष्ठ ११३ पर]

की वृद्धि का प्रभाव चुल्लिका पर पड़ता है उससे चुल्लिकीन (Thyroxine) की वृद्धि होकर उक्त नेत्र का उद्गमन होता है या स्वयं चुल्लिकावुंद के कारण या अन्य किसी कारण से चुल्लिका ग्रन्थि में जब चुल्लिकीन की मात्रा अधिक बनने लगती है तब उसका प्रभाव नेत्र गुहस्थ कोषाओं में आर्द्रशोफ के रूप में प्रकट होता है इससे नेत्राण्ड बढ़कर वह इतने बड़े हो जाते हैं कि वे पलकों के बाहर उभर आते हैं इसीसे वर्त्म पीछे हट जाते हैं।

इस तरह अनेक रोगों का ज्ञान नेत्र दर्शन से हो जाया करता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्व. आचार्य श्रीयादवजी महाराज के कुछ स्मरणीय विचार

लेखक :—पं० कन्हैया लाल जी भेड़ा वैद्य, बम्बई

इस वर्तमान युग में आयुर्वेदोद्धारक अनेक दुर्लभ सटीक चरक सुश्रुत माधव निदान तथा काश्यप संहिता आदि प्राचीन असंख्य ग्रन्थों के संशोधक एवं प्रकाशक तथा शिष्य प्रशिष्य परम्परा द्वारा भारत व्यापी यशस्वी श्री गुरुदेव स्व. श्री आचार्य यादव जी महाराज के कुछ स्मरणों को विद्वद् वैद्य समाज के सम्मुख उपस्थित करता हूँ—

१—आचार्य जी ऋषिप्रणीत ग्रन्थों के परम भक्त थे। चरक सुश्रुत के मूल तथा टीकाओं के संशोधन में उन्होंने अतुल परिश्रम एवं अपूर्व संशोधन व कलापूर्वक पांडित्य प्रकट किया है। किन्तु उनके संस्करणों के पूर्व प्रकाशित पुस्तकों तथा टीकाओं के देखने से स्पष्ट प्रतीत होता जायगा कि पूर्व संस्करणों में तथा इनमें कितना अन्तर है। ऐसे १-२ ही उदाहरण नहीं देखेंगे, अपितु सभी अध्यायों में मिलेंगे।

२—द्रव्य गुण विज्ञान के भाग त्रय का सद्भावना से पठन एवं मनन करने से यह निस्संकोच कह सकते हैं कि भाव प्रकाश ने एक तरफ द्वीपान्तर वचा, पारसीक यवानी पारसीक वचा आदि अनेक मध्ययुगीन द्रव्यों को आत्मसात करके वैज्ञानिक विकास की धाराओं की अविरत गति से प्रवाहित किया। इस वर्तमान युग में श्री आचार्य जी द्रव्य गुण विज्ञान के सभी भागों में नवीन उपादेय विषयों को आत्मसात करके सिंकोना, बेलाडोना, डिजिटेलीस, सर्पगन्धा आदि अनेक द्रव्यों का समावेश करने में पीछे नहीं रहे। भाव मिश्र तथा श्री आचार्य जी की रचना में लगभग ४०० वर्ष का अन्तर होने पर भी मौलिक विचार धारा तथा सरस्वती की अन्तर्धारा के समान आयुर्वेद की गवेषणा पूर्ण रक्षा की चिन्ता में तनिक भी अन्तर नहीं दीखता यह ग्रन्थों के मर्मस्पर्शी पर्यवेक्षक वैद्य महानुभावों के लिये विस्मय का विषय अवश्य है।

३—सन् ३८ में वैद्य सम्मेलन पत्रिका के किसी अङ्क में "मानस रोग" पर एक मौलिक ग्रन्थ लिखने के लिये क्रमशः चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट, न्यायदर्शन, सांख्य कारिका, वैशेषिक सूत्र आदि के पूर्ण संकेतों द्वारा नवीन लेखकों के लिये अनुपम मार्ग प्रदर्शित किया है। ऐसे अनेक विषयों पर सोपान बना कर लिख गये हैं। जिस पर विद्वान वैद्यों को ऊपर चढ़कर विभिन्न कोणों से शास्त्रों का मन्थन करके प्रतिदिन नूतन साहित्य की रचना, वैज्ञानिक विषयों का सात्म्यी करण दुर्लभग्रन्थों की खोज करके आयुर्वेद को समुपबृंहित करना चाहिये।

४—आचार्य जी का प्राचीन शास्त्रों में अनुसन्धान—रस शास्त्रोक्त प्रधान द्रव्य पारद पद्मराग, काच, स्फटिक, सूर्यकान्त, वज्र आदि ८९ के लगभग द्रव्यों के वर्णन के विषय में संहिता ग्रन्थों का स्थल निर्देश पूर्वक सुन्दर संग्रह को देखकर आचार्य प्रवर की सूक्ष्मातिसूक्ष्म शोधन कला से विद्वानों के हृदय में अत्यन्त आनन्द होता है। (रससागरामृत परिशिष्ट)

आचार्य जी ! पार्थिव द्रव्यों का पिष्टी तथा भस्म इन दोनों पद्धतियों से प्रयोग करते थे। वे कहा करते थे कि आर्यकाल में पार्थिव द्रव्यों के प्रयोग अञ्जन सदृश अति सूक्ष्म चूर्ण (पिष्टि) बना कर ही प्रायः होते थे। इसमें प्रमाण दिया करते थे—

"प्रवाल मुक्ताञ्जन शंख चूर्णं लिह्या त्तथा काञ्चन गैरिकोत्थम्" (सु. उ. अ. ४४ श्लो. २१)

"पिबेत्तथा तण्डुल धावनेन प्रवाल चूर्णं कफ मूत्र कृच्छ्रे" (च. चि. अ. २६ श्लो. २६)

पार्थिव द्रव्यों की अग्निपुट द्वारा भस्म निर्माण करने की विधि रसशास्त्र के विकास के बाद हुई है। इसीलिये सुश्रुत चरकादि में भस्म विधान नहीं मिलता है। कुछ वैद्य समुदाय में यह जो प्रचार सुनने में आता है कि मुक्ता प्रवाल आदि उपरत्नों की पिष्टि बनाने की प्रक्रिया यूनानी हकीमों की देखा देखी प्रचलित हुई है। यह धारणा नितान्त ठीक नहीं है। क्योंकि लोह सुवर्ण रौप्य आदि के सूक्ष्म चूर्णों का प्रयोग "अयस्कृति" के नाम से सुश्रुत में तथा सूक्ष्म चूर्ण के रूप से चरक में मिलते हैं। चरक सुश्रुत के समय में भी उनकी पिष्टियों के ही प्रयोग होते थे। इसके लिये प्रमाण में यह वचन देते थे—

"तीक्ष्ण लोह पत्राणि तनूनि लवण वर्ग प्रदिग्धानि" सूक्ष्म चूर्णानि कारयेत् वनतान्तव परिस्रावितानि। ततो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा बलं मात्रां मधुसर्पिभ्यां संसृज्योपयुंजीत। एवं लोहे व्वयस्कृतयो व्याख्याता:"। (सु. चि. अ. १०)

"त्रिफला या रसे मूत्रे गवांक्षारेऽथ लावणे। क्रमेण वेङ्गदीक्षारे किंशुकक्षार एव च। तीक्ष्णायसस्य पत्राणि वन्हिवर्णानि साधयेत। चतुरङ्गुल दीर्घाणि तिलोत्सेध तनूनिच। ज्ञात्वा तान्यञ्जनाभानि सूक्ष्म चूर्णानि कारयेत।

× × ×

अनेनैव प्रकारेण हेम्नश्च रजतस्यच।
आयु: प्रकर्षकृत सिद्धः प्रयोगः सर्व रोगनुत।
(च. चि. अ. १ पा. ३)

अञ्जन सदृश सूक्ष्म चूर्णानि कारयेदित्यर्थ:। इस विषय में और भी कई प्रमाण दिया करते थे उनमें एक सुश्रुत उत्तर तंत्र अ. १८ श्लोक ८५-९१ में लिखित चूर्णाञ्जन के योग में सौवीराञ्जन, सुवर्ण, ताम्र और रौप्य इनको मूषा में अग्नि पर गलाकर गोमूत्र, दधि, घृत, मधु आदि द्रव पदार्थों में निर्वापित कर सूक्ष्म चूर्ण बना कर प्रयोग करने का आदेश दिया करते थे।

रसाञ्जन के विषय में विचार—

प्राचीन चरक सुश्रुत के टीकाकारों के समय से ही रसाञ्जन के विषय में मतभेद आ रहा है। आज भी बंगाल के वैद्यों को छोड़ कर प्रायः सभी भारतीय वैद्य रसाञ्जन के नाम से "रसौंत" (दार्वीहरिद्रारसक्रिया) का व्यवहार करते हैं। वे यह भी कहा करते थे "डल्हण" के समय में रसाञ्जन शब्द से कई वैद्य "रसौंत" तथा कई वैद्य "कृष्ण पाषाण सदृश" धातुद्रव्य स्रोतोञ्जन दोनों को रसाञ्जन नाम देते थे तथा रसाञ्जन को स्रोतोञ्जन का एक पर्याय भी मानते थे। इसी आधार पर आज भी बंगाल के वैद्य काले सुरमे को रसाञ्जन मानते हैं। भारत के सुप्रसिद्ध वैद्य श्री दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी जी लिखित रस रत्न समुच्चय टीका (पृ. ५९-६०) में रसाञ्जन को "यलो आक्साइड आफ मर्क्यूरी" कहा है। ऐसा कहकर तथा अग्नि सारं, रसगर्भ, रसाग्रजं, रसोद्‌भवं इन शब्दों से पारदघटित उपरोक्त कल्पना में प्रमाण दिये हैं। इसी तरह स्व०डा०वामन गणेश देसाई जी ने भी पारद की पीत-भस्म अर्थात "यलो आक्साइड आफ मर्क्यूरी" को ही रसाञ्जन नाम दिया है (भारतीय रस शास्त्र पृ. २३०) इन दोनों मतों का खण्डन इस तरह करते थे—कि "संहिताओं में रसाञ्जन के खाने के प्रयोग पर्याप्त मिलते हैं।"

दार्व्या रसाञ्जनस्यच निम्ब पटोलस्य खदिर सारस्य। आरग्वध वृक्षकयो स्त्रिफलाया: सप्तपर्णस्य। इति षट् कषाय योगा: कुष्ठघ्ना: सप्तमश्च तिनिशस्य। स्नाने पाने च हिता:। (च. चि. अ. ७-९७-९८) ऐसे चरक चि. अ. १४-१९५ तथा च. चि. अ. १९-५६-५९, च. चि. अ. ३०-९०-९६।

सुश्रुत में भी—

तद्वत्तार्क्ष्यं मास मात्रंच पेयम्। (सु. चि. अ. ९ श्लो. ४६)

इन आधारों पर रसाञ्जन रसौंत ही हो सकता है। "यलो आक्साइड आफ मर्क्यूरी" नहीं।

सु. सू. अ. ३८ श्लोक ४५ प्रियङ्ग्वादि गण में रसाञ्जन और स्रोतोञ्जन दोनों का उल्लेख है, इसलिये दोनों को एक मानना भी अनुचित है।

———

शल्य चिकित्सा का चमत्कार
कटी आंतों को जोड़ दिया।

गोंडा जिले के बलरामपुर अस्पताल के शल्य चिकित्सक डा० एन. वी. मिश्र के पास एक ऐसा व्यक्ति लाया गया जिसका पेट शत्रुओं ने चीर कर उसकी आंतें टुकड़े टुकड़े कर दी थीं। और इधर उधर फेंक दी थीं। उस आदमी के सम्बन्धी उस मूर्छित व्यक्ति को मयअन्त्र टुकड़ों के उठाकर उपरोक्त डाक्टर के पास ले आये। डाक्टर के पास आते ही उस व्यक्ति को रक्त प्रदान किया गया और कई घंटे जो आंतें बाहर पड़ी रह कर निर्जीव हो गई थीं, उन्हें शुद्ध साफ कर डाक्टर ने शेष आंत के साथ लगाकर सी दिया और उन्हें यथा स्थान बिठा कर पेट सी दिया। कुछ दिनों तक उस व्यक्ति को रक्त व द्राक्षज विलयन लवण युक्त सिरा मार्ग से देते रहे। पांच दिनों के बाद उस व्यक्ति की मूर्छा दूर हो गई और दो सप्ताह के बाद वह व्यक्ति दूध, द्राक्षज, मांस रस, फल रस आदि लेने लगा। अब वह बिल्कुल स्वस्थ होकर अपने घर चला गया है। इस शल्य चिकित्सा से स्वयं डाक्टर भी आश्चर्य करते हैं कि कई घंटे तक आंतों के निर्जीव बाहर रहकर उनमें पुनर्जीवन आजाना आत्मवादियों के एकात्मवाद के सिद्धान्त को जबर्दस्त ठेस लगाने वाली बात है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैद्य-हकीम ध्यान दें !

वैद्य समाज को यह तथ्य हृदयंगम कर लेना चाहिये कि वर्तमान समय में राज्य की आयुर्वेद-विरोधी-नीति के कारण आयुर्वेद का जो ह्रास हो रहा है, उससे रक्षा का एकमात्र साधन यही है कि सार्वजनिक जनता का ध्यान आयुर्वेद की वस्तु स्थिति के प्रति आकर्षित किया जाय और आयुर्वेद के पक्ष में जनमत जाग्रत करके जनता के द्वारा राज्याधिकारियों को इस बात के लिये विवश किया जाय कि वे अपनी पाश्चात्य विज्ञान के अन्धानुकरण पर आधारित स्वास्थ्य चिकित्सा नीति को परिवर्तित करे और भारत के अपने मौलिक प्राचीन स्वास्थ्य विज्ञान आयुर्वेद को शनैः शनैः समाप्त होने से बचावें। यही नहीं, उसको ही भारत का राष्ट्रीय चिकित्सा-विज्ञान घोषित करें। आयुर्वेद के हित में ऐसे ही प्रभावकारी प्रयत्नों से कुछ सफलता मिल सकती है।

यह सर्व विदित है कि भारत सरकार पर आयुर्वेद के पक्ष में जनमत प्रकट करने के विचार से सुख्यात आयुर्वेद सेवी पंडित रामनारायण वैद्य ने अखिल भारतीय स्तर पर एक सार्वजनिक हस्ताक्षर आन्दोलन संचालित किया है। यह आन्दोलन आयुर्वेद हित के विचार से बहुत ही महत्व-पूर्ण एवं सामयिक है। सभी दूरदर्शी आयुर्वेदज्ञों ने इसका प्रबल समर्थन किया हैं। देश के विभिन्न भागों से लाखों भारतीय नागरिकों के हस्ताक्षर कराये जा चुके हैं। पिछले महीने यह विचार किया गया था कि संग्रहीत हस्ताक्षर पत्र एक विशेष ज्ञापन सहित आयुर्वेद-विद्वानों के अखिल भारतीय शिष्ट मण्डल द्वारा महामहिम राष्ट्रपति महोदय की सेवा में समर्पित कर दिये जावें। एतदर्थ हर प्रदेश से एक एक, दो-दो शीर्षस्थ विद्वान चुनकर शिष्ट मण्डल का निर्धारण कर लिया गया था। परन्तु इस आन्दोलन के सूत्रधार वैद्यराज पंडित रामनारायण जी शर्मा के यकायक अधिक अस्वस्थ हो जाने के कारण निर्धारित कार्यक्रम को रोक देना पडा। पंडित रामनारायण जी वैद्य विगत एक माह से अधिक काल से बहुत अस्वस्थ हैं और उनके चिकित्सकों का यह आदेश है कि कम से कम दो माह तक वे पूर्ण विश्राम करें। ऐसी स्थिति में हस्ताक्षर आन्दोलन सम्पादन और हस्ताक्षर पत्रों को महामहिम राष्ट्रपति महोदय को समर्पण करने के आयोजन का भार पण्डित रामनारायण जी वैद्य ने मुझको सौंपा है। आयुर्वेद के लिए इस वृद्धावस्था में जो कुछ कर सकूं, वह मेरे लिये सौभाग्य की बात है। वैद्य रामनारायण जी की इच्छा है कि इस कार्य को मैं शीघ्र कर दूं। परन्तु यह कुछ अच्छा प्रतीत नहीं होता है कि आंदोलन के मूल संचालक की अनुपस्थिति में हस्ताक्षर पत्र राष्ट्रपति महोदय को अर्पित किये जावें। इससे तः यह अधिक उचित प्रतीत होता है कि आगामी दो माह के समय में हस्ताक्षर आंदोलन को कुछ और तीव्रगति से चलाया जावे और देश के सम्पूर्ण वैद्य हकीम तथा आयुर्वेद से प्रेम रखने वाले भारतीय इसमें अपना भरपूर सहयोग देवें। मेरी ऐसी ही मान्यता है और अनेक आयुर्वेद हितैषियों का यही परामर्श है कि आन्दोलन को अभी और भी व्यापक बनाया जावे। वर्तमान स्थितियों में सरकार को आयुर्वेद के प्रति न्याय करने हेतु आकृष्ट एवं बाध्य करने का एकमात्र प्रभाव-शाली तरीका यही है कि आयुर्वेद के विषय में भारतीय जनता का वास्तविक अभिमत प्रकट किया जावे। हस्ताक्षर आंदोलन उसका उचित साधन है। इसलिए प्रत्येक वैद्य हकीम का यह अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वह पूरी रुचि के साथ इस आंदोलन में भाग ले। यह कार्य वैद्यनाथ प्रतिष्ठान अथवा किसी के व्यक्तिगत हित, श्रेय या प्रतिष्ठा से सम्बन्धित नहीं है। आयुर्वेद और वैद्य हकीमों के ही सामूहिक हित का आवश्यक कार्य है। यदि इसमें भी वैद्य-हकीम सक्रियता नहीं दिखा सकते तो इसका अर्थ यही है कि वे स्वयं ही अपनी ह्रासपूर्ण स्थिति के लिए जिम्मेवार बनना चाहते हैं। करोड़ों की आबादी वाले देश से कुछ लाख नागरिकों के हस्ताक्षर एकत्र कर लेना सन्तोषजनक नहीं है, जब कि हम दिन रात कहते हैं कि भारत की ८५प्रतिशत जनता आयुर्वेद से लाभान्वित होती है और आयुर्वेद को चाहती है। दूसरी ओर सरकार को यह भ्रम है कि जनता आयुर्वेद को नहीं चाहती तो हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम सरकार को यह दिखायें कि देश का कितना बड़ा बहुमत हमारे साथ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी दशा में प्रत्येक वैद्य-हकीम को हस्ताक्षर संग्रह का कार्य अपना आवश्यक कर्तव्य समझ कर करना चाहिये। जो हस्ताक्षर पत्र वैद्य बन्धुओं को भेजे गये हैं या भेजे जा रहे हैं उन पर वैद्यों से नहीं वस्तुतः सार्वजनिक जनता के हस्ताक्षर कराने हैं। वैद्य-हकीम अपने चिकित्सालय में बैठे ही अपने यहां नित्य आने वाले रोगियों और नागरिकों से उन पर हस्ताक्षर करा सकते हैं। हस्ताक्षरित पत्रों को भेजने में डाक व्यय का भी संकोच यदि कुछ वैद्य हकीम करते हैं तो यह शोभनीय नहीं है। राज्य की उपेक्षा और विनाशक नीति के कारण आयुर्वेद एवं वैद्य-हकीमों के सामने जीवन-मरण का प्रश्न आज उपस्थित है। ऐसे संकट काल में वैद्य-हकीमों को अधिक सतर्कता अधिक संगठन और सक्रियता से काम लेना चाहिये। जिन सज्जनों ने अब तक हस्ताक्षर पत्रों पर जनता के हस्ताक्षर करा के नहीं भेजे हैं, उनसे मेरा साग्रह निवेदन है कि वे शीघ्र अपने यहां की जनता के अधिक से अधिक हस्ताक्षर करा के मेरे पास अथवा श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० झांसी के पते पर यथाशीघ्र भिजवायें। हस्ताक्षर पत्र के साथ अधिक हस्ताक्षरों के लिये सादा कागज भी जोड़ा जा सकता है, जो सज्जन अधिक मात्रा में हस्ताक्षर पत्र चाहें वे मुझे पत्र द्वारा आदेश करें, अपेक्षित मात्रा में हस्ताक्षर पत्र उन्हें भेजे जावेंगे।

इस हस्ताक्षर आन्दोलन को आगे दो माह और निरन्तर रखने के विचार में, मेरा एक अन्य उद्देश्य भी है। पण्डित रामनारायण जी वैद्य के निर्देशन में बैद्यनाथ प्रतिष्ठान ने एक दूसरा महत्वपूर्ण आयोजन और किया है। वैद्य समाज को विदित है कि गोलोक वासी आचार्य श्री यादव जी महाराज की सेवा में उत्कृष्टतम अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का आयोजन किया गया था। श्री यादव जी महाराज ने इस आश्वासन पर उसकी स्वीकृति प्रदान की थी कि यह ग्रन्थ आयुर्वेद वाङ्मय की अपूर्व और सर्वोत्कृष्ट रचना के रूप में प्रस्तुत किया जावे। आयुर्वेद के दुर्भाग्य से आचार्य श्री यादव जी महाराज असमय ही गोलोकवासी हो गए और उनके जीवन काल में उक्त ग्रन्थ पूर्ण न हो सका। प्रारम्भ में ही ग्रन्थ के निमित्त मौलिक सामग्री एकत्र करने में पर्याप्त समय लगा। उन दिनों कागज की महर्घता थी अतः ग्रन्थ के लिये विशेष रूप से कागज बनवाने में बड़ा समय गया। दूसरी ओर यह अनिवार्य था कि आचार्य श्री की वांछानुसार ग्रन्थ को इतनी उच्च कोटि का बनाया जावे कि उसे अद्वितीय कहा जा सके। इसी प्रयत्न में ग्रन्थ के आयोजक संलग्न रहे। उत्कृष्ट रचनाओं में अधिक समय लगना स्वाभाविक होता है। आयुर्वेद शास्त्र चर्चा आचार्य जी का सर्वोपरि प्रिय विषय था, यह सभी जानते हैं। दो विवेचन परिषदें तो आचार्य जी स्वयं सम्पन्न कर चुके थे। आयुर्वेद शारीर शब्दार्थ विनिश्चय का कार्य आचार्य जी अपूर्ण छोड़ गये थे। उसको पूरा करना आवश्यक कर्त्तव्य था। आचार्य जी के उक्त अभिनन्दन ग्रंथ में उनके इस प्रिय विषय को पूर्ण करके सम्मिलित करना वांछनीय समझा गया। उसमें बहुत समय लगा, जो कि विषय की गम्भीरता के अनुसार स्वभाविक ही था। ग्रंथ के प्रकाशन में विलम्ब का यह भी एक कारण है। निश्चय ही बैद्यनाथ प्रतिष्ठान ने लगभग तीस हजार रुपया व्यय और अन्य बौद्धिक परिश्रम करके यह बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। अब उक्त ग्रन्थ तैयार है। वैद्य रामनारायण जी की इच्छा है कि अब यह ग्रन्थ आचार्य जी के उत्तराधिकारी को एक विशिष्ट समारोह में समर्पित किया जावे। जुलाई मास में इसके लिये वे एक अखिल भारतीय विद्वत्सम्मेलन कराना चाहते हैं। मैं समझता हूँ उस अवसर पर ही हस्ताक्षर पत्र महामहिम राष्ट्रपति महोदय को अर्पित करने का आयोजन अधिक प्रभावकर होगा। एक पंथ दो काज हो जावेंगे। इसलिये हस्ताक्षर आन्दोलन को दो महीने और बढ़ाने का मेरा विचार है।

मैं इस आयुर्वेद हित के महत्वपूर्ण कार्य में सम्पूर्ण वैद्य-हकीम समाज से सक्रिय और रुचिपूर्ण सहयोग की अपील करते हुए आग्रह करता हूँ कि वैद्य-हकीम कृपा कर आयुर्वेद पक्ष में अधिक से अधिक जनता के हस्ताक्षर करावें। इस आयोजन से आयुर्वेद की जनप्रियता प्रकट होगी और सार्वजनिक क्षेत्र में प्रचार होगा।

सुधानिधि-कार्यालय — भवदीय हितेच्छु

३, सम्मेलन मार्ग, — जगन्नाथप्रसाद शुक्ल वैद्य

प्रयाग, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समालोचना

धन्वन्तरि मासिक का नारीरोगाङ्कः—

सम्पादक—वैद्य देवीशरण गर्ग आयुर्वेदाचार्य।
प्रकाशक—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

साइज $\frac{२०\times३०}{८}$ पृष्ठ संख्या ५२० :

प्रस्तुत अंक धन्वन्तरि 'मासिक' का फरवरी मार्च १९६० का सम्मिलित अंक है जो चालू वर्ष के विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया गया है। विशेषांक क्या है, आकार में तो एक वृहद् ग्रन्थ प्रतीत होता है जिस में लगभग १४० लेख प्रकाशित हैं। सम्पूर्ण नारी रोगों को २४ शीर्षकों में विभक्त कर प्रत्येक शीर्षक सम्बन्धी सभी लेखों को क्रमशः एक साथ रखा गया है। इस प्रकार स्त्री रोगों सम्बन्धी प्रत्येक विषय के लेख एकत्र रहने से पाठकों के लिये उस विषय की जानकारी का क्रम सुविधाजनक बना दिया गया है।

बहुत से लेख सचित्र हैं। स्त्री जननेन्द्रिय रचना के प्रथम प्रकरण में तथा स्त्री रोग परीक्षा प्रकरण में इन चित्रों के द्वारा विषय के स्पष्टीकरण में बहुत सहायता मिली है। स्त्री रोग परीक्षा प्रकरण के कुछ लेख चिकित्सकों के लिये विशेषतः स्त्री चिकित्सकों के लिये क्रियात्मक उपयोगितापूर्ण हैं।

आजकल अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का महत्व दिनोंदिन चिकित्सा के क्षेत्र में बढ़ता जा रहा है यह नव्य विज्ञान की ही देन है। स्त्रियों के रजोदर्शन से अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का विशेष सम्बन्ध है जिसका वर्णन प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रों में न होने से प्रायः वैद्य समाज इससे अनभिज्ञ है। आर्तव प्रकरण के कुछ लेखों में इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला गया है जो आयुर्वेदीय चिकित्सकों के लिये ज्ञानवर्द्धक है। इस प्रकरण में एक बात खटकने वाली है और वह यह कि भिन्न-भिन्न लेखों में एक-एक शब्द के भिन्न-भिन्न पारिभाषिक पर्याय प्रयुक्त किये हैं जिससे एक विषय होने पर भी भिन्न २ लेखों को पढ़ते समय भ्रम सा हो जाता है परन्तु इसमें दोष न तो लेखकों का है न सम्पादकों का। इस त्रुटि का कारण है हिन्दी में पारिभाषिक शब्दावली का निश्चित न होना। नव्य विज्ञान से सम्बन्धित हिन्दी लेखों और पुस्तकों में समानता एवं एकरूपता लाने के लिये नवीन वैज्ञानिक शब्दों के पारिभाषिक पर्याय निश्चित करना अत्यन्त आवश्यक है, अतः प्रसंगवश हम वैद्य समाज का ध्यान इस ओर आकृष्ट कर रहे हैं।

समालोच्य विशेषांक में आर्तव दोष, प्रदर रोग, योषापस्मार (हिस्टीरिया), वन्ध्यत्व, गर्भपात, गर्भच्युति, अर्बुद, प्रसूति ज्वर, गर्भाशय शोथ, योनि कण्डू, स्तन रोग आदि अनेक स्त्री रोगों सम्बन्धी लेखों का अच्छा संग्रह विद्यमान है। सौन्दर्य प्रकरण के कुछएक लेख ऐसे हैं जिन की चिकित्सकों के लिये कोई उपयोगिता नहीं न ही वह नारी रोगों से कोई सम्बन्ध रखते हैं, अतः अप्रासङ्गिक हैं।

सन्तति नियमन आज के समाज में एक प्रमुख विषय बना हुआ है। इसका सम्बन्ध स्त्रियों के स्वास्थ्य से भी है और वैद्यों से भी। समालोच्य विशेषांक में इस विषय को सर्वथा अछूता छोड़ दिया गया है। सम्भवतः इसकी ओर सम्पादकों का ध्यान नहीं गया अथवा इस पर कोई लेख ही प्राप्त नहीं हुआ क्योंकि वैद्य समाज में इस विषय की जानकारी प्रायः नहीं के तुल्य है।

विशेषांक न्यूज प्रिंट पर छपा है। और छपाई भी सामान्य दर्जे की है। विशेषांक सहित धन्वन्तरि का वार्षिक मूल्य ५॥) है परन्तु अकेले विशेषांक का मूल्य ८॥) रखना नितान्त असंगत एवं व्यवसायिक नियमों के विरुद्ध बात है।

समालोचक—क.गौरीलाल चानना बी.ए.वैद्य वाचस्पति

सूचना

श्री परशूराम पुरीया राजस्थान आयुर्वेदिक कालेज का नवीन सत्र सन् ६० की जुलाई से प्रारम्भ होगा। प्रवेशार्थियों को इस अवधि से पूर्व ही अपने स्थान सुरक्षित कराने हेतु कालेज से आवेदन पत्र व नियमावली प्राप्त कर लेनी चाहिए। प्रवेश योग्यता मध्यमा, उपाध्याय, प्रवेशिका, प्रथमा, संस्कृत से मैट्रिक व अन्य तत्सम परीक्षा अपेक्षित हैं।

राजस्थान सरकार द्वारा सहायता व मान्यता प्राप्त इस संस्था में भिषग्वरीय पाठ्यक्रमानुसार कर्माभ्यास हेतु विविध मोडलस्, चार्ट, यन्त्र, शस्त्र तथा अन्यान्य उपकरण एवं साजसज्जा से सुसज्जित आतुरालय, औषधालय प्रयोगशाला रसायनशाला पुस्तकालय वाचनालय आदि विभागों की सुव्यवस्था है। इन साधनों के आधार पर सुयोग्य प्राध्यापक अपनी विशिष्ट शिक्षण शैली से प्रतिपाद्य विषय छात्रों को हृदयंगम कराते हैं। प्रवेशेच्छु शीघ्रता करें। स्थान सीमित हैं। योग्य छात्रों को छात्र वृत्ति भी दी जाती है। छात्रावास में, आवास, प्रकाश पानी तथा पाचक का प्रबन्ध निःशुल्क हैं।

वैद्य पुरुषोत्तम शर्मा
प्रिंसिपल
परशुराम पुरीया
राजस्थान आयुर्वेदिक कालेज
सीकर (राजस्थान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसव निर्माणार्थ सागवान काष्ठ के ढोल

प्राचीन काल से ही वैद्यों में आसव निर्माणार्थ प्रायः मट्टी के पात्रों को प्रयोग करने का प्रचलन है। परन्तु मट्टी के पात्र में दो बड़े दोष हैं एक तो मसामदार होने से आसव द्रव उस में से चू कर बाहर निकल सकता है। दूसरे मृत्पात्र तापवाहक होने के कारण सन्धानार्थ द्रव के अन्दर आवश्यक उत्ताप को स्थिर नहीं रख सकता, जिस से आसव निर्माण क्रिया (सन्धान) में बाधा उत्पन्न हो सकती है। लकड़ी के ढोल इन दोनों दोषों से मुक्त हैं। लकड़ी में भी सागवान की लकड़ी ऐसी कठोर है कि निरन्तर वर्षों तक पानी के संसर्ग में रहने पर भी यह नहीं गलती। अतः सागवान के बने ढोल चिर काल तक खराब नहीं होते और आयु पर्यन्त काम देते रहते हैं। मृत्पात्र की तरह इन्हें घृत परिप्लुत करने का झंझट भी नहीं करना पड़ता। जल से प्रक्षालन कर स्वच्छ करके इन का प्रयोग किया जा सकता है। मृत्पात्र की तरह इनके फूटने का भी भय नहीं।

हमारे यहां वर्षों से इन ढोलों का प्रयोग हो रहा है। श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी द्वारा लिखित "आसव विज्ञान" पुस्तक के प्रकाशन के बाद से देश के प्रत्येक कोने से इन लकड़ी के ढोलों के लिये अनेकों वैद्यों की मांग आती रही है। अतः हमने विलायत से आने वाले माल के खाली ढोल जो बड़ी बड़ी मिलों में रासायनिक पदार्थों में लग कर आते हैं उनके संग्रह का प्रयत्न किया है। वह साफ करने पर आसव निर्माण के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। आशा है वैद्य समाज तथा औषध निर्माता इन का प्रयोग कर आसव निर्माण प्रक्रिया को समुन्नत करने की दिशा में अग्रसर होंगे। इस से उन्हें सुविधा भी होगी और आसव भी उत्तम बनेंगे। प्रत्येक ढोल की समाई इतनी है कि उसमें १॥ मन आसव भर कर रखा जा सकता है। मूल्य प्रति ढोल १२)। बड़ा ढोल जिसमें ६मन आसव रखा जा सकता है मूल्य३०)। दोनों का मार्ग व्यय भिन्न। आर्डर के साथ पेशगी आना जरूरी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

निवेदक—मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट-अमृतसर।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० डी-७२०

व्याधि-मूल विज्ञान (पूर्वार्ध)

श्री स्वामी हरिशरणानन्द की नव्य कृति

छपगया ! छपगया !! छपगया !!!

यह वैज्ञानिक युग है, शरीर के भीतर जब कोई व्याधि हो जाती है तो उसे अब तक अनुमान से ही जानते थे । किन्तु वैज्ञानिकों ने ऐसे साधन मालूम कर लिए हैं कि शरीर के भीतर जब व्याधियों का प्रादुर्भाव हो रहा हो तो वह कैसे हुआ करता है, और उसमें कौन कौन से व्याधियों के उत्पादक कारण है । इसको उन्होंने नव्य प्रायोगिक विधियों से खूब अच्छी तरह से देखा व जांचा । एक ही प्रयोगशाला ने नहीं, अनेकों प्रयोगशालाओं ने मिलकर जांच की और जो तथ्य उन्हें मिले और वे प्रकाश में आये उनको संकलित कर व्यवस्थित रूप दिया गया है । इन प्रायोगिक विधियों ने चिकित्सा के अनेकों मान्य सिद्धान्तों पर पानी फेर दिया है ।

आयुर्वेद का सिद्धान्त है—"मिथ्याहार विहाराभ्यां दोषाः ह्यामाशयाश्रयाः" । आहार विहार की अनियमितताओं से आमाशय में दोषों का उत्थान होता है । आहार सम्बन्धी और पचन सम्बन्धी विषय का प्रायोगिक ज्ञान इतना अधिक बढ़ चुका है जिनके सन्तुलित स्थिति से मनुष्य स्वस्थ रहता है उसमें असन्तुलित स्थिति उत्पन्न होते ही रोगों का प्रादुर्भाव होता है । यह 'द्रव्य साम्यमरोग्यता' का सिद्धान्त किस तरह देखा समझा गया यह आयुर्वेद विद्वानों के समझने की चीज है । इसी का वैज्ञानिक विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है । यह ग्रन्थ का पूर्वार्ध मात्र है जो ४०० से अधिक पृष्ठों में पूर्ण हुआ है । १० वर्ष के परिश्रम के बाद इसका पूर्वार्ध ही पाठकों के हाथ में पहुँचा रहे हैं । सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य १२) है ।

मैनेजर—पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर

ब्रांच—खारी बावली, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ७ आषाढ़ सम्वत् २०१७ संख्या ७

जुलाई १९६०

आयुर्वेद-विज्ञान

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

GURUKULA KANGRI LIBRARY HARDWAR

सम्पादक

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

विषय-सूची

१. वैद्य समाज को नव्य ज्ञान विज्ञान से लाभ उठाकर समुन्नत होना चाहिये ...	१०५
२. रक्त स्कन्दन	१०८
३. नेत्र दर्शन से अनेक रोगों का ज्ञान	११२
४. विज्ञान के चमत्कार	११४
५. स्व. आचार्य श्री यादव जी महाराज के कुछ स्मरणीय विचार (ले०—पं० कन्हैयालाल भेंड़ा आयुर्वेदाचार्य) ...	११६
६. वैद्य हकीम ध्यान दें (ले०—श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल वैद्य) ...	११८
७. समालोचना	१२०

प्रकाशक—

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, खारी बावली, दिल्ली-६

मुद्रक-बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा नई सड़क, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ३० नये पैसे होगा।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये। अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्वप्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा। किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, न करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायेगा।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर किसी परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-सम्बन्धी प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये आयुर्वेद-विज्ञान के ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न एक रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके प्रश्न और उत्तर छापे जायेंगे।

मैनेजर

शिवा गुटिका

(जीर्ण और वृद्ध रोगियों के लिये दिव्य रसायन)

यह योग चक्रदत्त भैषज्य रत्नाकर और योगरत्नाकर ग्रन्थों में रसायनाधिकार में आया है इस योग का प्रमुख द्रव्य शिलाजीत सूर्यतापी है जिसे कई वनस्पतियों और जीवनीय गण की औषधियों द्वारा ग्रीष्म काल की आतप में भावित कर उसकी मलाई उतारी जाती है। पश्चात कुछ अन्य औषधियां मिला कर इस की गुटी बनाई जाती है।

शास्त्र में इसे आमवात, यक्ष्मा, पाण्डु, नपुन्सकता, मृगी तथा शिर, नेत्र, कण्ठ, फुप्फुस एवं हृदय के कई रोगों में लाभकारी लिखा है। इसका मुख्य गुण रसायन है। अर्थात् किसी भी जीर्ण रोग से, जरावस्था में अथवा किसी भी तरह जब शरीर की कार्य व्यवस्था बिगड़ जाय, शरीर की कोषायें निर्बल विकृत हो जायें तो यह औषधि स्वास्थ्य को पुनः बिल्कुल ठीक कर देती है, ऐसा अपने पर और अन्य रोगियों पर इसे प्रयोग करके हमने देखा है। जीर्ण रोगों से पीड़ित रोगियों, व वृद्धावस्था में होने वाले विकारों तथा दुर्बलता में तो यह गुटिका विशेष रूप से लाभप्रद रसायन सिद्ध हुई है।

रसायन औषध दो चार दिन खाने से लाभ नहीं करती। दो गोली प्रातः सायं २-३ मास तक निरन्तर खानी चाहिये। एक मास सेवन करने योग्य ५ तोला गोली के पैकिट का मूल्य केवल ५) है, पैकिंग डाक खर्च भिन्न।

पता-मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, ६०-६१, अकालीमार्केट, अमृतसर

ब्रांच—खारी बावली दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद-विज्ञान

आयुर्विदेव वितते किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्नपरकैर्भवतीह लभ्यम्
शक्तिं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ।।

वर्ष ७ | आषाढ़ २०१७ वि०, जुलाई १९६० ई० | अंक ७

वैद्य समाज को नव्य ज्ञान विज्ञान
से
लाभ उठाकर समुन्नत होना चाहिये

इस समय चिकित्सा वैद्यों का व्यवसाय है, इस व्यवसाय में हम तभी उन्नति कर सकते हैं और अच्छी कमाई कर सकते हैं यदि हम इस चिकित्सा व्यवसाय के गूढ़ से गूढ़ रहस्यों को समझें। चिकित्सा-व्यवसाय को समझने के लिए हमें सबसे पूर्व यह देखना चाहिये कि हमारे चिकित्सा व्यवसाय के प्रतिद्वन्द्वी किन साधनों का उपयोग करते हैं जिनके कारण रोगी उनकी ओर अधिक आकर्षित होते हैं। सबसे पहिले यही बात हमें समझनी चाहिए। जब तक हम इस रहस्य को नहीं समझते चिकित्सा में कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।

चिकित्सक बनते ही हमारा वास्ता रोगियों से पड़ता है, रोगी जब आता है, तो सब से पहले हमें उसके रोग निदान को देखने समझने का ऐसे ढंग से प्रयत्न करना चाहिये कि उससे रोगी को पूर्ण सन्तोष हो। "रोगमादौ परीक्षेत" जो कहा है उसका अर्थ यही है कि हम रोगी की इस प्रकार परीक्षा करें कि जिससे हम व्याधि की वास्तविक स्थिति से परिचित हो जायें। जब तक हमें व्याधि का वास्तविक ज्ञान नहीं होता हम चिकित्सा में कभी सफल नहीं हो सकते। हमें इस समय यह देखना चाहिये कि हमारी निदान पद्धति और विद्यमान अन्य चिकित्सकों की निदान पद्धति में कितना अन्तर है। ९५ प्रतिशत इस समय जटिल रोगी प्रायः निदानार्थ हमारे पास नहीं आते, वे बड़े बड़े डाक्टरों के पास जाते हैं। डाक्टरी चिकित्सा रोग निदान में आयुर्वेद निदान पद्धति से बहुत आगे निकल गई है। उनके यहाँ रोग का निदान करने के लिए रक्त परीक्षक अलग है, मूत्र मल परीक्षक अलग और अस्थि परीक्षक (एक्सरे) अलग। डाक्टर के पास जब रोगी आता है वह उसे मूत्र मल परीक्षक के पास भेजता है, फिर रक्त परीक्षक के पास भेजता है, फिर एक्सरे कराने का परामर्श देता है। तीनों फीस लेकर केवल निदानार्थ ही कमाते हैं, अभी चिकित्सा दूर है। निदाव हो जावे के बाद अब चिकित्सक औषध तजवीज करता है। इस में वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिकित्सक इलहदा कमाता है और कुछ दिन चिकित्सा करने पर यदि रोगी को लाभ नहीं होता तो वह रोगी को जवाब नहीं देता, प्रत्युत कहता है हम अमुक-अमुक डाक्टर को परामर्श के लिये बुलाते हैं वे डाक्टर इस रोग के विशेषज्ञ हैं, उनके परामर्श से अवश्य लाभ होगा। वे डाक्टर भी परस्पर मिलकर केवल परामर्श देकर कमाते हैं। किन्तु वैद्यों में परस्पर मिल कर इस तरह कमाई करना नहीं आता। यदि कोई वैद्य भूलकर दूसरे वैद्य को अपना रोगी परामर्शार्थ दिखाभी देता है तो यह परामर्श-दाता उस वैद्य को रोगी के सामने ही मूर्ख बनाने का प्रयत्न करेगा। वितण्डावाद करेगा, और रोगी को यह दिखाने का प्रयत्न करेगा कि जिस वैद्य से तुम चिकित्सा करा रहे हो इसे कुछ आता जाता नहीं, वह मूर्ख वैद्य है। तुम हमसे चिकित्सा कराओ। रोगी न तो इस पर आगत वैद्य पर विश्वास करता है न उस पर। इस तरह रोगी हाथ से निकल जाता है और डाक्टर के पास चला जाता है। यह वैद्य समाज में कितना भारी त्रुटि है। हम देखते हैं कि रोगी का मल, मूत्र, रक्त आदि देख कर जो रोग का निदान डाक्टर करते हैं वह यदि सही न हो तो रोगी को लाभ नहीं होना चाहिये। उक्त चीजों की परीक्षा एक बार होने पर पुन: पुन: अन्य परीक्षकों से परीक्षा कराने पर जब वही रोग का कारण निकलता हो तो वह निदान हर स्थिति में ठीक माना जा सकता है। किन्तु वैद्यों के निदान में प्रत्यक्षीकरण के कोई साधन न होने पर एक वैद्य उसी रोगी को किसी अन्य कारण से हुआ रोग बताता है तो दूसरा अन्य कारण से। प्रत्यक्ष न होने के कारण हमारा मतभेद दूर नहीं होता। इसके लिये तो प्रत्यक्षी-करण अत्यावश्यक बात है। किन्तु हमारी चिकित्सा पद्धति में कोई प्रत्यक्षीकरण का साधन नहीं। जब तक हमारे पास साधन नहीं, हम उन्नति नहीं कर सकते। हमें यदि प्रतिस्पर्द्धी चिकित्सकों के बराबर होना है तो उस स्थिति में हमें इस समय तक निदान और शरीर रचना व शरीर क्रिया विज्ञान में जितनी भी प्रत्यक्ष रूप में जान-कारी प्राप्त होती है सब को बिना ननुनच के अपना लेना चाहिए, तभी हम उस विदेशी चिकित्सा के चिकित्सकों से सामुख्य ले सकते हैं।

किसी मल्ल योद्धा से मल्ल युद्ध करते समय हमें केवल उतने दाव पेच तो जरूर आने चाहिये जितने वह मल्ल यो[द्धा] जानता है तब तो हम उस मल्ल योद्धा के मुकाबले में ठ[हर] सकते हैं, लड़ सकते हैं और यदि उतने दांव पेच हमें न[हीं] आते तो निश्चय ही हम हार जायेंगे। बिलकुल यही बा[त] चिकित्सा क्षेत्र में लागू है। हमारी चिकित्सा पद्धति प्र[ति] दिन दबती चली जा रही है हमारी औषधियों की बि[क्री] घट रही है, अलोपैथी दवाइयों की बिक्री बढ़ रही है उनकी दवाइयां विज्ञापन के बल बूते पर गांवों गांवों फैलती जा रही है। हमारी दवाइयों की मांग प्रतिदि[न] घट रही है।

भारत सरकार हमारी चिकित्सा पद्धति को स्वीका[र] नहीं कर रही, इसका कारण भी यही है कि हम समय [के] अनुसार बदल नहीं रहे। चिकित्सा क्षेत्र में जितना प्रत्य[क्ष] ज्ञान बढ़ चुका है बारम्बार सरकार के बड़े बड़े अधिका[री] हमें प्रेरणा देते हैं कि बढ़े हुए ज्ञान विज्ञान को आयुर्वेद [में] मिला लेना चाहिये और वैद्यों को उस स्तर तक उठ आना चाहिये जिस स्तर तक संसार के चिकित्सक उठ चुके हैं किन्तु हम उनकी बातों को सुनकर अनसुना कर देते हैं हम अपने अनुमान जन्य कल्पित निदान पद्धति पर ऐसे चिपके हुए हैं कि उसकी असत्यता को देखते जानते हुए भी उसे छोड़ना नहीं चाहते।

जैव सिद्धान्त सत्य पर आधारित सिद्धान्त है

आज से एक सौ बीस वर्ष पूर्व १८४० ई० में हेनल नामक व्यक्ति ने जीवाणुओं कीटाणुओं से रोग होते हैं इसकी ओर संकेत किया था। उसके संकेत पर पाश्चुर जैसे विद्वानों ने खोज कर इसकी सत्यता प्रमाणित की। तत्पश्चात् कौक नामक वैज्ञानिक ने इन जैवों की उत्पत्ति सम्वर्धन, कृषि की विधियां ज्ञात कर इनकी उसने खेती की और कृत्रिम विधि से एक एक जीवाणु, कीटाणु को पालने, रोपित करने और कृषि बढ़ाने के साधन ज्ञात कर उनके जीवन व्यापार का अच्छी तरह से अध्ययन कर इस ओर अनुसन्धान का नया मार्ग प्रस्तुत कर दिया। जिसमें आगे के अनेक वैज्ञानिक रुनसेन ईवर्थ पीर्सन, निकोलियर किटासारो, शिगा, एहरलिक, मेचनीकाफ, नोगूची, बेहरिंग राइट इत्यादि व्यक्तियों के सतत प्रयत्न से यह जैव-विज्ञान बनाया। यह वैज्ञानिक किसी एक देश के निवासी नहीं थे रूस, जापान, जर्मन, इटली, इंगलैंड हर देश के थे सबों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलकर इस जीव विज्ञान में उन्नति की है। उसी का परिणाम यह हुआ कि इन जैवों की कृषि से उद्भूत द्रव्यों द्वारा एक नई जैवी चिकित्सा पद्धति का आविष्कार हुआ। १६२८ ई० में अलेक्जैंडर फ्लेमिंग ने इन कीटाणुओं की विशेष जाति से उद्भूत जो द्रव्य को भिन्न किया था, आज पेंसिलीन के नाम से वह जगतविख्यात हो रही हैं जो अनेक जैवी व्याधियों पर अमोघ सिद्ध हो रही है। इस जैव-विज्ञान ने इस समय इतनी उन्नति कर ली है कि वैज्ञानिकों ने इन्हें सुरक्षित डिबिया में बन्द कर शत्रु के देश में वह डबिया बखेर दें तो हजारों, लाखों मनुष्यों में एक साथ हैजा, पेचिस फैल सकता है। इतना भारी प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाने पर भी आज तक वैद्य समाज इन जीवाणुओं कीटाणुओं से होने वाली व्याधियों को अभी भी वात, पित्त, कफ से उत्पन्न होना मानता है कितनी गहन अज्ञानता है।

चिकित्सा क्षेत्र में पेंसिलान, क्लोरोमायसिटीन, स्ट्रप्टोमायसीन आदि चमत्कृत औषधियों के उपयोग के अधिकार तो वैद्य समाज मांगता है किन्तु इस जैव विज्ञान के विवर्धित ज्ञान विज्ञान को नहीं अपनाता। न अपने को योग्य बनाने का प्रयत्न करता है। इस तरह यदि किसी वैद्य से कहो कि तुम्हें जैवों का कुछ भी पता नहीं तो साभिमान चट से प्रमाण प्रस्तुत कर देगा कि संसार को तो इन जीवाणुओं कीटाणुओं का ज्ञान १९वीं शताब्दी में आकर हुआ हमारे महर्षि उससे दो सहस्र वर्ष पूर्व जान चुके थे। यथा :—

रक्त संस्थाने अणवो वृत्ताश्चापादाश्चवर्णास्ताम्र: ।
चरक ।

रसवाही सिरास्थाना रक्तजा जन्तवोऽणव: ।
अपादा वृत्त ताम्रश्च । वाग्भट ।।

प्रसंगाद् गात्र संस्पर्शान्निश्वासात् सह भजनात् ।
सहशय्या सनाच्चापि वस्त्र माल्यानुलेपनात् ।।
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ।
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्तिनरान्नरम् ।। सुश्रुत ।।

जब उन प्रमाण देने वाले वैद्यों से पूछते हैं कि यह औपसर्गिक बीमारियां छूत से लगती हैं और छूत गन्दगी से, मलिनता से बढ़ती है। मक्खी जैसे जानवर इसको बढ़ाते व फैलाते हैं। तुम्हारे घरों में सफाई नहीं, औषधालय में दवाइयों पर मार मुल्क का गर्दोगुबार पड़ा रहता है तुम्हारे खान पान में शुद्धता, स्वच्छता नहीं। स्वच्छता अस्वच्छता के भेद को जब तुम समझते नहीं हो तो इन प्राचीन प्रमाणों का अर्थ भी क्या समझते होगे? हमें तो दिखाई नहीं देता। जो सिद्धान्त व्यवहार में नहीं लाये जाते उस का प्रमाण देना संसार को धोखा देना है। ज्ञान वह है जिसको व्यवहार में लाया जाय, जिस ज्ञान को व्यवहार में नहीं लाया जाता उसको हम वास्तव में जानने का झूठा दावा करते हैं।

जीवाणु, कीटाणु आंख से दिखाई देने वाले जैव नहीं। जीवों को हम अपनी आंखों से देख सकते हैं किन्तु जैवों को नहीं देख सकते। चरक सुश्रुत के समय सूक्ष्मदर्शक नहीं थे। कार्य कारण के सम्बन्ध को देखकर उन्होंने अनुमान कर लिया था कि मन्थर, वि[illegible] आदि ज्वर जो एक विशेष समय में आकर संचार करते हैं। राजयक्ष्मा, अभिष्यन्द, कुष्ठ आदि रोग संस्पर्श आदि कारणों से एक दूसरों को लग जाते हैं इनका उपसर्ग अवश्य एक बीमार व्यक्ति से दूसरे स्वस्थ व्यक्ति में होता है। यह अनुमानजन्य बात थी, यदि उस जमाने में कहीं अणुवीक्षण यन्त्र उन ऋषियों के हाथ आ गये होते तो आज आयुर्वेद त्रिदोषवाद के कन्धों पर रख कर बन्दूक न चलाता। आयुर्वेद सच्चे अर्थों में वैज्ञानिक होता। आज जो हट जो दुराग्रह हमारे भीतर है उन ऋषियों के भीतर यह नहीं था वे सत्पथ के अनुयायी थे, सचाई के कायल थे। वे विरोधी की भी सच्ची बात मान लेते थे। इसी से उस समय के अनुसार उन्होंने अपने युग में महान् उन्नति की। आज हमारी यह दशा है कि अड़ियल टट्टू बने न आगे बढ़ते हैं, न पीछे की ओर देखते हैं। इसलिये यदि वैद्य समाज ने प्रतिस्पर्द्धियों के सन्मुख ठहरना है तो उन्हें नव्य ज्ञान विज्ञान को पूर्णतया आत्मसात् कर उतना ही योग्य बनना चाहिये जितने कि डाक्टर हैं तभी हम जीवित रह सकते हैं अन्यथा जल्दी ही मृत्यु के ग्रास बन जायेंगे यह निश्चित बात है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्त स्कन्दन

पिछले महीने २३-४-६० को डाक्टर आशानन्द जी के हृदय में रक्त स्कन्दन हो जाने से देहान्त हो गया। आपको यह कष्ट कोई डेढ़ वर्ष हुए तब हुआ था जिसका निदान वैज्ञानिक व यान्त्रिक साधनों से ही हुआ था। आयुर्वेदज्ञ इस बात को समझ ही नहीं सकते कि हृदय में या रक्त वाहनियों में कहीं रक्त जम भी सकता है। क्योंकि हमारे यहां तो रक्त को भ्रमणशील माना ही नहीं। हम तो मानते हैं 'अहरह र्गच्छतीत्योरसः' दिन रात शरीर में रस गतिमान रहता है। वह रस भी हृदय के माध्यम से नहीं, स्रोतों के माध्यम से। किन्तु इस समय के प्रत्यक्ष ज्ञान से हमारे इन शास्त्रीय विचारों का समर्थन नहीं होता। इस समय जिस शरीर सम्बन्धी क्रिया व्यापार को प्रत्यक्ष में देखा जाता है हमारा वैद्य समाज उस ज्ञान को न अपना कर अपनी शास्त्रीयधारा को ही पकड़े बैठा है, क्या यह बुद्धिमानी है ? मेरे विचार में वैद्यसमाज का इस तरह से शास्त्रीय सिद्धान्त पर अड़े रहना समझदारी नहीं। हम जब तक अपने ग्रन्थों में विद्यमान इस तरह के सिद्धान्तों पर विश्वास बनाये रखेंगे और उनके स्थान में ऐसे वास्तविक सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं करेंगे तब तक हम आयुर्वेद में उन्नति नहीं कर सकते। आयुर्वेद कोई स्थिर या किसी ग्रन्थ में लिखे ज्ञान तक सीमित नहीं है। आयु का ज्ञान प्राप्त करने के लिये जिस तरह हमारे पूर्व पुरुषों ने प्रयत्न किया था उसी तरह उनकी लिखी पुस्तकों से आगे भी अपने ज्ञान को वहीं तक सीमित न रखकर हमें आयु के ज्ञान को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये। क्योंकि ज्ञान की सीमा नहीं बांधी जा सकती।

इस समय हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि जब शरीर में सूई चुभोदें तो उस चुभे स्थान से रक्त निकलता है। शरीर के किसी भाग का शल्य कर्म होने पर रक्त ही निकलते देखा जाता है कहीं से रस नहीं निकलता। फिर रस के परिभ्रमण का सिद्धान्त क्यों पढ़ाया व माना जाय ? रक्त ही जब शरीर की धमनी व सिराओं में बहता देखा जाता है और हृदय रूपी प्रम्प उसके आवागमन को बनाये रखने वाला शरीर में यन्त्र ज्ञात हो चुका है तो इसके द्वारा रक्त परिभ्रमण के सिद्धान्त को जैसा कि अलोपैथ डाक्टर मानते हैं वैसा मानने में वैद्य समाज को क्या आपत्ति ? हमारे तो विचार में वैद्य समाज को इस बात पर मिलकर विचार करना चाहिये कि शास्त्रों में कल्पित ऐसे जो विषय विद्यमान हों उन्हें छांट २ कर शास्त्रों से निकाल देना चाहिये और उनके स्थान पर जो वास्तविक शरीर में क्रिया व्यापार ज्ञात हो रहे हैं उन्हें मानना व अपनाना चाहिये।

आप देखते हैं कि जब चोट लग जाती है और उस चोट के क्षत स्थान से रक्त बहने लगता है तो थोड़ी ही देर में रक्त जो बाहर निकलता है वह जम जाता है इसी तरह क्षत स्थान में भी रक्त जमने लगता है और जमकर उसका ऐसा थक्का बन जाता है कि फिर उस क्षत से रक्त का निकलना भी बन्द हो जाता है। ऐसा क्यों होता है ? इसका विवेचन आयुर्वेद ग्रन्थों में नहीं मिलता। यद्यपि शास्त्रकार रक्त को शरीर का एक धातु मानता है अर्थात् रक्त शरीर का एक आवश्यक अंग भाग है। अंग भाग होने के कारण ही इसे आजकल जीवनाधार माना जाता है। क्योंकि शल्यकर्म के समय प्रत्यक्ष देखा जाता है कि शल्यकर्म होने पर यदि रक्त संचार की स्थिति से अधिक रक्त निकल जाय और हृदय रक्त से खाली हो जाय तो हृदय की गति बन्द हो जाती है। इसी बात को देखकर प्रयत्न हुआ कि शल्यकर्म के समय वाहनियों में रक्त की इतनी मात्रा बनी रहनी चाहिये कि हृदय के कोष्ठ रक्त से खाली न रहें तो शल्य कर्म के समय मनुष्य का जीवन सुरक्षित रह सकता है। तभी तो अन्य मनुष्यों का रक्त लेकर शल्यकर्म किये जाने वाले व्यक्ति को दिया जाने लगा। इस रक्त दान का परिणाम देखने को यह मिला कि घण्टों शल्यकर्म होते रहने पर जितना रक्त एक ओर शल्य स्थान से निकलता था उतना ही रक्त सिरा मार्ग से शल्य कर्मा मनुष्य के शरीर में पहुँचाते रहते थे इस तरह जब हृदय कोष्ठ रक्त से पूरित बने रहते हैं शल्य कर्मा व्यक्ति मृत्यु के मुँह में नहीं जाता। शल्य चिकित्सक लाखों शल्यकर्मा व्यक्तियों का जीवन इस तरह बचाने में सफल सिद्ध हुए। इसी से आज हर शहर में रक्त बैंक खुले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए हैं और उन रक्त बैंकों में सैंकड़ों बोतलें रक्त की सदा ही सुरक्षित रहती हैं जिससे समय पर शल्यकर्मा व्यक्ति को जीवन का लाभ मिलता रहता है।

इस रक्त में कौन कौन से द्रव्य मिले होते हैं? आयुर्वेद ग्रन्थों में इसका भी कोई उल्लेख नहीं। वास्तव में हम जिस आहार सार को रस रूप धातु मानते हैं। यह रस रूप धातु शरीर के किन्हीं भिन्न स्रोतों में नहीं रहती। केवल अन्न प्रणाली से जब अन्न रस का सार बन कर शोषित होता है वह प्रति हारिणी सिरा व लसिका वाहनियों के मार्ग से अवश्य यकृत तक पहुँचता है किन्तु यकृत जब उस रस को संस्कारित कर डालता है तब वह रस वहीं से रक्त में मिलकर परिभ्रमण पथ में आ जाता है। और तन्तुओं तक पहुँचकर शरीर का पोषण करता है। उस समय उसका कुछ रस अभिस्यन्दित होकर भिन्न भी हो जाता है जो लसिका वाहनियों के मार्ग से सिरा रक्त में मिल जाता है जो शुद्ध होने के लिये हृदय के मार्ग से फुफ्फुस तक पहुँचता है और फिर शुद्ध होकर हृदय में आ जाता है। इस तरह रक्त हृदय रूपी पम्प के द्वारा शरीर के कोने कोने में पहुँचता है। इसके अहर्निश होते कार्य को भी आयुर्वेदज्ञ नहीं जानते थे। इससे भी सूक्ष्म बात उस रक्त में भला मिले द्रव्यों को वे कैसे जान सकते थे क्योंकि पूर्व काल में हमारे पास ऐसे साधन नहीं थे जिनसे हम रक्त की रचना को देख व समझ सकते। यह तो इन्हीं दो शताब्दियों में सम्भव हो सका जब यान्त्रिक साधनों से अदृश्य वस्तुओं के रूप प्रत्यक्ष देखने समझने में समर्थ हुए।

तब शरीर में रक्त स्कन्दन कैसे होता है?

हमारे रक्त में जो आहारीय सार रस रूप में सदा विद्यमान रहता है जिसमें शर्करा श्रेणी के स्नेही श्रेणी के तथा अस्रजन श्रेणी के अनेकों द्रव्य विद्यमान रहते हैं। इससे भिन्न इस आहारीय रस में कुछ खनिज लवण व लोह, मग्न आदि के लवण व क्षार आदि भी मिले रहते हैं। इन द्रव्यों से भिन्न रक्त का अपना सजीव अंश रुधिराणु, श्वेताणु, चक्रिका आदि का भी होता है। यह भी उस रक्त में सदा विद्यमान रहता है। इन्हीं के कारण तो शरीर के इस द्रव्य की रक्त संज्ञा पड़ती है। इससे भिन्न इस रक्त में शरीर के मलभूत द्रव्य जैसे मूत्रिया, पवनियां, कज्जल द्विऊष्मिद, कज्जलिकाम्ल आदि कई द्रव्य इसमें विद्यमान रहते हैं जो सदा मल निस्सारक अंगों तक पहुँचकर उससे भिन्न कर लिये जाते हैं। इनसे भिन्न रक्त में कुछ शरीर संरक्षणार्थ, व शरीर क्रिया व्यापार संपादनार्थ अनेक द्रव्य विकर ओज पुरोस्कन्दिन, सूत्रजन आदि ऐसे द्रव्य भी विद्यमान रहते हैं जो अकस्मात् चोट आदि लग जाने पर रक्त को जमाने में सहायक होते हैं। इन्हीं द्रव्यों की उपस्थिति के कारण रक्त जब शरीर से बाहर निकलने लगता है तब जमने लग जाता है। इन रक्त को जमाने वाले उक्त द्रव्यों का सन्तुलन शरीर में सदा ऐसे रूप में रहता है कि शरीर में भ्रमण करता हुआ रक्त कभी जमा नहीं करता। किन्तु, जब रक्त में विद्यमान द्रव्यों के सन्तुलन में अन्तर रहने लगता है अर्थात् कुछ द्रव्यों की मात्रा जब रक्त में मर्यादा से अधिक बढ़ी रहती है तभी रक्त की स्वाभाविक स्थिति में अन्तर आ जाता है।

आयुर्वेदज्ञों ने शरीर में दोषों की साम्यावस्था का बना रहना स्वस्थ रहने का लक्षण माना है। किन्तु शरीर में विद्यमान रहने वाले द्रव्यों का अब तक जो प्रायोगिक ज्ञान प्राप्त हुआ है उन द्रव्यों में दोषों की विद्यमानता का कोई प्रमाण नहीं मिलता। आहार सार रस रूप द्रव्यों की साम्यासाम्य स्थिति तो देखी जाती है। लवणों की या अनैन्द्रिक धातुओं की साम्यासाम्य स्थिति से या ओजों विकरों की न्यूनाधिकता से नैरोग्यता या रोग का सम्बन्ध पाया जाता है किन्तु दोषों की कहीं भी शरीर व्यापकता के कोई प्रमाण नहीं मिलते। जब यह दोष शरीर व्यापि नहीं तो इनकी साम्यासाम्य स्थिति से रोगारोग्य की स्थिति का क्या सम्बन्ध। इसीलिये नव्य ज्ञान के प्रकाश में हमें इस सिद्धान्त पर नये सिरे से विचार करना चाहिये।

किन द्रव्यों की असाम्यता से शरीर के भीतर रक्त स्कन्दन होता है? देखा गया है कि जब प्रौढ़ मनुष्य ४०-६० के मध्य पहुँचता है उन्हीं मनुष्यों को रक्त स्कन्दन की शिकायत देखी जाती है। उनमें यह रोग अधिक होता है जिनको अधिक पुष्टि कर आहार स्नेही द्रव्य अधिक मात्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सुलभ रहते हैं। अर्थात् सुख सम्पन्न परिवार वालों में ही यह रोग लगते देखा जाता है। जिन्हें अच्छा स्नेह सिक्त आहार नहीं मिलता जैसे श्रमिक वर्ग उन्हें यह रोग प्रायः नहीं होता।

अनेकों परीक्षाओं के बाद ज्ञात हुआ है कि जो व्यक्ति अण्डे, खीर, मलाई, मक्खन, दूध, घी युक्त आहार अधिक लेते रहते हैं। उनके रक्त में विमेदीय द्रव्य सदा ही सन्तुलित मात्रा से अधिक बने रहते हैं। ऐसे व्यक्ति के शरीर मेदस्वी बने रहने के कारण वे स्थूल-काय हो जाते हैं। प्रायः ऐसे स्थूल काय व्यक्तियों का रक्त अधिक विमेद की विद्यमानता के कारण गाढ़ा हो जाता है। जब रक्त की प्रगाढ़ता बढ़ी रहती है यह विमेद शरीर के भीतर भ्रमण शील रक्त के स्कन्दन में सहायक होता है।

रक्त स्कन्दन के साथी रोग

जिन व्यक्तियों के शरीर में मेद बढ़ा रहता है देखा गया है कि इसके कारण सबको रक्त स्कन्दन का ही रोग नहीं होता। कइयों को धमनी काठिन्य का रोग लग जाता है कइयों को इस धमनी काठिन्य के कारण रक्त चाप वृद्धि का रोग भी लग जाता है। विमेद वृद्धि से रक्त में विमेद का असन्तुलित स्थिति में बना रहना उक्त रोगों को उत्पन्न करने में कारण है। कुछ विद्वानों के विचार हैं कि उक्त तीनों रोग नव्य सभ्यता की देन हैं पूर्वकाल में यह रोग नहीं थे। मैं ऐसा विश्वास नहीं करता। हृदय गति के अवरोध या अवसाद हृद्शूल व रक्त चाप वृद्धि से पूर्व काल में भी मनुष्यों की मृत्यु हुआ करती थी। पुराणों में अनेक स्थलों पर ऐसा उल्लेख मिलता है कि अमुक व्यक्ति बात करते २ मर गया, अमुक व्यक्ति अकस्मात मृत हो गया। इस अकस्मात मृत्यु का कारण उस पूर्व काल में ज्ञात न था। हृदय शूल अर्धाङ्गवध अर्दिति आदि रोगों का उल्लेख आयुर्वेद ग्रन्थों में है। अमुक मनुष्य अकस्मात् क्यों मर गया। अर्धांगवध हृदयशूल क्यों होते थे? जब तक कोई अनुसन्धान के साधन न हों ऐसी बातों को जानना कठिन है। हृदयावसाद से हुई मृत्यु के कारण को तो तभी जाना जा सकता है जब उसकी खोज की जाय। इस उन्नीसवीं शताब्दी में ही इस बात को जानने का प्रयत्न हुआ कि मनुष्य जो अकस्मात् मर जाता है अर्धाङ्ग जो होता है उसमें क्या कारण है? इस खोज में ही इस बात का ज्ञान हुआ कि मृत्यु हृदय की गति बन्द हो जाने से होती है अर्धांग वध रक्तचाप वृद्धि के कारण मस्तिष्क के भीतर कोई छोटी सी धमनी फट जाने से होता है। इस समय जब यह जानने का प्रयत्न हुआ कि हृदय की गति क्यों बन्द हो जाती है? इसकी खोज से ज्ञात हुआ कि हृदय के पोषणार्थ जो रक्त युग्म धमनियों के द्वारा उसके भीतर पहुँचता रहता है। इन हृदय पोषणी युग्म धमनियों के भीतर जब संचरण शील रक्त अधिक प्रगाढ़ होकर जमने लग जाता है और ग्राहक व क्षेपक कोष्ठों के भीतर जब रक्त का संचार बन्द हो जाता है तो ऐसी स्थिति आते ही हृदय का संकोच प्रसार रुक कर उसकी गति बन्द हो जाती है। जहां चलते २ हृदय की गति बन्द हो जाती है उसी समय क्षणों में ही शरीर के समस्त क्रिया व्यापार रुक जाते हैं और मनुष्य मर जाता है।

हृदय शूल (Angina Pectoris)

हृदय में एक विशेष प्रकार का शूल भी ऐसे व्यक्ति को कभी कभी देखा जाता है। हृदय शूल के समय उसकी व्यथा बाहु की ओर चला करती है। यह हृदयशूल का प्रधान लक्षण है। यह शूल प्रायः उन्हीं व्यक्तियों को देखा जाता है जिनके हृदय की पोषणी धमनियों में या तो काठिन्य होकर उनमें रक्त संचार कम हो जाता है या फिर उसमें रक्त स्कन्दन हो जाता है।

रक्त स्कन्दन के लक्षण

जिन व्यक्तियों की पोषणिका धमनियों में से किसी में भी रक्त रुक कर जमने लगता है और हृदय के किसी अंश का पोषण रुकता है तो इस हृदय कार्य अवरोध के कारण उस व्यक्ति का शरीर शिथिल हो जाता है चलने फिरने में साँस फूलने लगता है और वह कोई श्रम का काम नहीं कर सकता। इसी से वह चारपाई पकड़ लेता है। लेटे रहने से उसे कुछ आराम मिलता है। जिसके हृदय की किसी पोषणिका धमनी में रक्त स्कन्दन होता है उसे जोर का हृच्छूल उठता है। और श्रम करने पर छाती में दर्द होने लगता है। श्रम रहित होने पर कई बार बिलकुल शान्त हो जाता है कई बार कम हो जाता है। कई बार रक्त के जमने की प्रकृति घट जाती है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगी को कुछ दिन आराम मिलता है किन्तु विभेद वृद्धि के कारण फिर कुछ काल पाकर दौरा होता है और कई बार इतनी शीघ्रता से रक्त स्कन्दन होता है कि हृदय की गति बन्द हो जाती है। जिन व्यक्तियों को धमनी काठिन्य का रोग हो जाता है उन्हीं व्यक्तियों को रक्त चाप वृद्धि का रोग प्रायः हो जाता है। क्योंकि धमनी काठिन्य से उनकी स्थिति स्थापकता घट जाती है। जब धमनियों में लचक न रहे तो जितना रक्त धमनी में धकेला जाता है उस धक्के का वेग धमनी जब सहन करने में असमर्थ हो जाती है तो इसी कारण रक्त वह स्रोतों में चाप का वेग बढ़ जाता है। इस वेग का प्रभाव मस्तिष्क में व्याप्तमान धमनिका जाल पर अधिक होता है। वहां के कोमल धमनिकाओं पर जब रक्त चाप वृद्धि का प्रभाव पड़ता है तो कोई न कोई कोमल धमनिका की दीवार उस चाप के प्रभाव से फट जाती है। जहां कोई धमनिका फटी उस मार्ग से रक्त स्रव कर मस्तिष्क के किसी भाग पर संचित होने लग जाता है। जब मस्तिष्क के किसी भाग पर रक्त आकर जम जाता है उस भाग के निष्क्रिय होते ही शरीर का जौन सा अंग भाग उससे सम्बन्धित होता है वह भी निष्क्रिय हो जाता है। उसी का नाम पक्षाघात या अर्धांगवध,अर्दिति आदि हैं।

मस्तिष्क में रक्त संचय को जानने के पूर्व काल में हमारे पास कोई साधन नहीं थे। इसीलिए हमने वात व्याधि की कल्पना खड़ी की थी। कहाँ मस्तिष्क में रक्त का निकलकर वहाँ जमना कहाँ वात-व्याधि। इन दोनों का कौन सा मेल। पर हमने जिस बात को मान लिया चाहे वह झूठ हो या सच हम उस पर विचार नहीं करते लकीर के फकीर बने उसको सत्य माने जा रहे हैं, रूढ़ि वादिता इसी का नाम है। पर हमें जब किसी रोग का निदान करना हो तो उस समय हमें चिकित्सार्थ यह जानना आवश्यक होता है कि वह है वास्तव में किस कारण से? यदि निदान ठीक से हो जाय तो चिकित्सा सुलभ हो जाती है। औषधि ढूंढने में कठिनाई नहीं होती। यदि सही रोग का निदान न हो तो फिर सारी चिकित्सा कल्पना के आधार पर करनी पड़ती है और औषध का उपयोग करते करते इस बात को जानने का प्रयत्न होता है कि कौन सी औषध लाभ करेगी। यह परीक्षा का विषय बन जाता है। इसी से अनेकों रोगी वैद्य के हाथ से औषध परीक्षा करते करते निकल जाते हैं। इसीलिये तो शास्त्रकार का उपदेश है।

रोग मादौ परीक्षेत तदन्तर मौषधम्।

ऋषिकुल विद्यापीठ हरिद्वार में
अखिल भारतीय आयुर्वेद शिक्षा सम्मेलन

तिथि ७ जून १९६० को श्री ऋषिकुल विद्यापीठ हरिद्वार में अखिल भारतीय आयुर्वेद शिक्षा सम्मेलन दिल्ली आयुर्वेद एवं यूनानी बोर्ड के रजिस्ट्रार कविराज श्री आशुतोष जी मजुमदार की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री कविराज मजुमदार जी ने आयुर्वेदीय शोध कार्य के लिये अनुसन्धान केन्द्र खोलने की आवश्यकता की चर्चा की। आयुर्वेदीय शिक्षा के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुए आपने कहा कि शिक्षा पद्धति में न केवल संहिताओं पर उपलब्ध भाष्यों का ही उपयोग किया जाना चाहिए बल्कि विज्ञान से सम्बद्ध विषयों में किए गए आधुनिक वैज्ञानिक शोधों की उपलब्धियों से भी लाभ उठाना होगा। आपने यह भी सुझाव दिया कि प्रत्येक आयुर्वेदिक संस्था में शोध कार्य की पर्याप्त व्यवस्था रहनी चाहिए तथा समस्त भारत में आयुर्वेद की शिक्षा, परीक्षा, उपाधि, पाठ्यक्रम मान्यता का एक और समान क्रम होना चाहिए।

शिक्षा स्तर की व्यवस्था और संचालन के लिये उन्होंने भारतीय चिकित्सा परिषद (Indian Medical Council) जैसी एक भारतीय चिकित्सा शास्त्र परिषद् (Council of Indian Medicine) की विधिवत् स्थापना की मांग की। आपने यह भी अनुरोध किया कि सामुदायिक विकास योजना, स्वास्थ्य केन्द्रों, राष्ट्रीय विकास योजनाओं आदि में सरकार आयुर्वेदीय स्नातकों को भी आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के स्नातकों के समकक्ष सुविधायें एवं अधिकार दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेत्र दर्शन से अनेक रोगों का ज्ञान

शास्त्र कहता है :—दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेताथ रोगिणम् । रोग की वस्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिये रोगी के आकृति, रूप, हाव भाव अंग प्रत्यंगों को देख कर, उन्हें टटोल कर, यन्त्र साधनों से उसके मल, मूत्र, नख, नेत्र, नाड़ी, रक्त आदि को अच्छी तरह से देख कर उसके आधारों पर रोग का निदान करे। नेत्र भी रोग निदान में सहायक होते हैं अनेक रोगों का नेत्रों पर, पलकों पर, नेत्र की आन्तरिक रचना पर काफी प्रभाव पड़ता है इसी से अनेक रोगों को समझने में नेत्रों की स्थिति, पलकों की स्थिति को देख कर रोग को समझने में कुछ सहायता मिलती है। इसलिये हम इस पर कुछ विचार करेंगे।

रक्त विकारों में नेत्र दर्शन से रोग का ज्ञान—किसी व्यक्ति के शरीर में जब रक्त कणों अर्थात रुधिराणुओं की संख्या घट जाती है अर्थात रक्ताल्पता होती है तो इसका प्रभाव, नेत्रांडों पर स्पष्ठ दिखाई देता है। नेत्राण्डों की रक्तिमा घट कर उसके स्थान पर श्वेतता दिखाई देती है नख भी श्वेत भासते हैं। नख, नेत्राण्ड जब श्वेत वर्ण के दिखाई देने लगते हैं तो वैद्य उनके इन नेत्र दर्शनों से ज्ञात कर लेता है कि इस रोगी को पाण्डु रोग हो रहा है। यदि किसी ऐसे रोगी को घातक पाण्डु रोग हो रहा हो तो कुछ रोगियों के दृष्टि पटल में रक्त स्राव भी देखा जाता है। किसी २ के दृष्टि पटल में शोथ भी हो जाता है। और प्रायः नेत्र की सूक्ष्म धमनिकाएं रक्ताल्पता के कारण श्वेताभ वक्र हो जाती है। किन्तु सिरकाएं यथावत् से कुछ बढ़ी हुई दिखाई देती हैं। यदि किसी रोगी के हृदय कपाट में कोई विकृति हो रही हो तो उसका प्रभाव दृष्टि पटल पर पड़ता है ऐसे रोगियों के दृष्टि पटल या काचरस में रक्तस्राव प्रायः देखा जाता है। यदि उक्त विकार के साथ रोगी की माध्यमिक धमनी का मार्ग अवरुद्ध हो जाय तो उसके कारण एकाएक दृष्टि नाश हो जाता है। अर्थात एकाएक रोगी देखने से रह जाता है। यदि किसी अन्य रोग के प्रभाव से वृहद्धमनी का प्रसार हो रहा हो और उस प्रसार का प्रभाव ग्रैवेयक स्वतन्त्र नाड़ी मण्डल पर पड़ रहा हो तो उसका प्रभाव बहिर्नेत्रगोलकों पर पड़ता है इससे नेत्रगोलकों में भी प्रसार होता है। ध्यान से यदि कनीनिका को देखा जाय तो वह भी फैली हुई होती है।

यदि किसी रोगी को धमनी काठिन्य के रोग के कारण उसे रक्तचाप वृद्धि की भी साथ शिकायत हो तो ऐसे व्यक्ति के दृष्टि पटल में भी विकृति आ जाती है। यदि किसी रोगी को हृदय विकृति के साथ आन्तरिक शोथ की कुछ स्थिति हो रही हो तो ऐसे रोगी जब प्रभात में सो कर उठते हैं उनकी पलकें भारी व शोथ युक्त होती हैं। पूछने पर यदि उक्त लक्षण रोगी बतलावे तो समझना चाहिये कि इसके हृदय के किसी भाग में शोथ की स्थिति है।

वृक्क विकारों में नेत्र दर्शन से रोग का ज्ञान—यदि किसी रोगी को वृक्कों में विकृति हो रही हो तो उसका प्रभाय नेत्रों पर पड़ता है। जिन व्यक्तियों के वृक्कों में शोथ की स्थिति बनी रहती है उन रोगियों के नेत्र पलकों के नीचे भी प्रायः शोथ बनी रहती है। अर्थात नेत्र के पलकों का निचला भाग कुछ फूला हुआ होता है। और नेत्रों पलकों को उलट कर देखा जाय तो नेत्रकला भी कुछ शोथयुक्त दिखाई देती है। इससे वृक्क रोगों का ज्ञान हो जाता है।

पचन विकारों का नेत्र दर्शन से ज्ञान—यदि किसी व्यक्ति के नेत्रों की कर्णिका का शोथ हो रहा हो या तारा मण्डल का शोथ हो रहा हो या नेत्र सन्धिगात्र में शोथ हो रहा हो तो इस बात की सम्भावना है कि उस रोगी को दन्तपूय(पायोरिया)रोग है। यदि नेत्र भारी २ रहते हैं या आन्तरिक कला में शोथ या मन्द २ दर्द भी प्रतीत होता है तो उस रोगी को कब्ज या मलावरोध की शिकायत होगी इसका अनुमान किया जाता है। यदि किसी के नेत्र पीत दिखाई दें नख भी पीले हो रहे हों तो स्पष्टतः पित्ताशय अवरोध है। उसी से पित्त ग्रहणी की ओर न जाकर रक्त में मिल रहा है इसीसे उक्त रोगी को कामला रोग है ऐसा निश्चय किया जाता है।

यदि किसी रोगी के नेत्र पलक भारी और नेत्र की आन्तरिक कला में कुछ शोथ के चिन्ह दिखाई दें तो पित्ता-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शय में भी शोथ है या यकृत में पित्ताशय के आसपास कहीं शोथ है ऐसा जानना चाहिये।

मस्तिष्क विकारों का नेत्र दर्शन से ज्ञान—यदि कोई रोगी ऐसा आवे जिस की नेत्र चालन क्षमता घटी हुई हो या तिर्यक दृष्टि से देखता हो, या द्विधा दृष्टि हो रही हो तो समझना चाहिये कि इस रोगी के मस्तिष्क में कोई विकार है। नेत्र नाड़ियों का मस्तिष्क से सीधा सम्बन्ध होता है। क्योंकि दृष्टि नाड़ी मस्तिष्क का ही एक भाग मानी जाती है। दूसरे नेत्र की ज्ञानेन्द्रिय क्षमता मस्तिष्क की कार्य क्षमता पर निर्भर करती है इससे जब मस्तिष्क में त्रुटि हो तो नेत्र के कार्य करने की क्षमता, गति निमीलोन्मीलन आदि के कार्य व्यापार घट जाते हैं। यदि मस्तिष्कावरण प्रदाह हो रहा तो कनीनिका में विकार आ जाता है तथा नेत्र पेशियों का आघात होने से दृष्टि तिर्यक हो जाती है।

यदि लगातार नेत्र गुहा तथा भ्रू भाग में पीड़ा बनी रहे तो इससे इस बात का पता लगता है कि नेत्र गोलक के पश्चातवर्ती नाड़ी में शोथ हो रही है। उससे उक्त पीड़ा है।

यदि नेत्र दृष्टि क्षेत्र अनियमित रूप से संकुचित हो रहा हो और उस दृष्टि क्षेत्र के मध्य पूर्ण या आंशिक अन्ध क्षेत्र भी दिखाई दे। या अक्षि आन्दोलन अव्यवस्थित हो रहा हो या द्विधा दृष्टि उत्पन्न हो गई हो तो मस्तिष्क में आघात हुआ ऐसा अनुमान किया जाता है। यदि मस्तिष्क का सर्वांगघात हो रहा हो तो ऐसी अवस्था में दोनों कनीनिकाएं असमान, अनियमित, संकुचित तथा कभी २ प्रसारित रह जाती हैं। और प्रकाश के प्रति उनकी क्रियाशीलता कम या पूर्णतया नष्ट हो जाती है। इसके पश्चात कभी दृष्टि नाश, दृष्टि क्षेत्र संकुचन भी देखा जाता है।

यदि दृष्टि नाड़ी क्षीणता, कनीनिका प्रसार तथा प्रक्षच्युति हो रही हो तो ऐसी विकृति सन्यास रोग अर्थात मस्तिष्क क्रिया विकार से देखी जाती है। यदि रक्त चाप वृद्धि से मस्तिष्क में रक्तस्राव हो रहा हो तो कनीनिका प्रसारित होकर रह जाती है और कनीनिका प्रसार में असमानता भी देखी जाती है।

यदि अहिफेन या इसी श्रेणी के कोई मादक द्रव्य अधिक दिये गये हों तो उस स्थिति में कनीनिका बहुत संकुचित हो जाती है और धतूरा जैसी किसी मादक औषध से मूर्छा आई हो तो कनीनिका प्रसारित हो जाती है।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के रोगों का नेत्र दर्शन से ज्ञान—यदि ह्रस्व दृष्टि हो रही हो या दृष्टिनाश हो रहा हो या दृष्टि पटल में विकृति आ रही हो तो नेत्र के इन विकारों से रोगी को मधुमेह होने की सम्भावना होती है। क्योंकि ह्रस्व दृष्टि का कारण यह होता है कि मूत्राधिक्य बना रहने पर रक्तस्थ व कोषस्थ लवणों की मात्रा मूत्र के साथ अधिक निकल जाती है इसीसे अभिसरणीय चाप की स्थिति बदल जाती है इसीसे नेत्र गुहा के द्रव पदार्थों का लवणांश काच के लवणांश की अपेक्षा जल्दी नष्ट हो जाता है। इसी कारण काच द्वारा द्रव का शोषण बढ़ जाता है इसीसे वह अधिक फूल कर ह्रस्व दृष्टि का रोग या उक्तरोग उत्पन्न करता है।

यदि किसी रोगी की दृष्टि नाड़ी में अपक्रान्ति आ जाय और दृष्टि क्षेत्र में परिवर्तन मिले या अर्ध दृष्टि नाश हो रहा हो तो इस विकार से पीयूष ग्रंथि में अर्बुद का आभास मिलता है क्योंकि पीयूष ग्रन्थि दृष्टि नाड़ी संगम के पास ही स्थित है इसीसे अर्बुद जब बढ़ता है तो दृष्टि नाड़ी को प्रभावित करता है और उसके दबाव से ही उक्त विकृति उत्पन्न होती देखी जाती है।

यदि किसी व्यक्ति को उक्त अर्बुद के कारण पीयूष ग्रन्थि के अग्र भाग की वृद्धि से अधिक ओज की मात्रा बन रही हो और उस रोगी को इस वृद्धि से एक्रोमिगैली रोग हो रहा हो तो ऐसी दशा में नेत्रगोलकों के किनारों की अधिक वृद्धि हो जाती है। तथा पलकें मोटी हो जाती हैं। यदि किसी व्यक्ति के नेत्राण्ड अपने गोलकों से उभर आये हों जिसे बहिर्नेत्रोद्गमन (Exopthalmos) कहते हैं। ऐसे व्यक्ति के नेत्राण्ड पूरी तरह पलकों से नहीं ढकते और जब वह किसी व्यक्ति की ओर देखता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह आँखें फाड़ २ कर देख रहा है। ऐसे रोगी की पलकें भी बहुत कम झपकती हैं। यद्यपि इसमें दृष्टि ह्रास नहीं होता। तथापि कर्णिका के नीचे का भाग शुष्क बना रहे और वह लालिमा युक्त वर्णित हो रहा हो तो कालान्तर में दृष्टि नाश हो सकता है इस विकृति में मूलतः अग्रिम पीयूष के चुल्लिकोत्प्रेरक ओज

[शेष पृष्ठ ११५ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान के चमत्कार

रुकी हुइ हृदयगति को चलाने वाली मशीन

इस समय के प्रयोगों से प्रत्यक्ष है कि जब हृदय को पूर्ण आहार नहीं मिलता, उसके भीतर रक्त संचार करने वाली धमनियों में से किसी धमनी के भाग में कोई अवरोध उत्पन्न हो जाता है और रक्त का आवागमन रुक जाता है तब हृदय काम करता करता अर्थात चलते चलते रुकने लगता है। अथवा एकाएक रक्त स्राव इतना अधिक हो जाय कि सिराएं रक्त से खाली होने लगें और हृदय के कोष्ठ रक्त से पूरित न हों तो हृदय कपोटों का खुलना और बन्द होना रुक जाता है इन्हीं कारणों से प्राणी मर जाता है। ५ मिनट तक उक्त कारणों से हृदय की गति बन्द रहे तो शरीर व मस्तिष्क पर कोई बुरा प्रभाव नहीं देखा जाता इतनी देर में यदि किसी विधि से हृदय को पुनः गति दी जा सके तो मनुष्य फिर मर कर जीवित हो जाता है।

तभी वैज्ञानिकों ने सोचना आरम्भ किया कि क्यों न कोई ऐसी मशीन बनाई जाय जो हृदय की गति को पुनः चालू करदे। इस सम्भावना पर विचार कर एक विलायत की विद्युत कम्पनी ने कुछ अन्य प्राविधिकों का सहयोग पाकर एक ऐसी मशीन का निर्माण आरम्भ कर दिया है जो हृदय की गति के रुक जाने पर उस मशीन को हृदय के साथ विशेष विधि से लगाकर वैद्युतिक प्रक्रिया से उसे चालू कर देने पर बन्द हुआ हृदय पुनः गतिमान् हो जाने की सम्भावना है।

मशीन विशेषज्ञों का कहना है कि यदि यह मशीन किसी ऐसे रोगी के हृदय पर लगा दी जायगी जिसका हृदय चलते २ बन्द होने वाला होगा तो इस मशीन की सूई इस खतरे की भी सूचना पहले दे दिया करेगी।

यदि इस मशीन के निर्माण में सफलता मिल गई तो आशा है हजारों हृदय रोग से मरने वालों को राहत मिल सकेगी। यह हैं आविष्कार जो हजारों प्राणियों को जीवन दान देने वाले सिद्ध होंगे। क्या वैद्य समाज इसको समझने जानने की योग्यता प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा?

औपसर्गिक व्याधि नाशक नई दवाई

जब से जैवोद्भवी औषधियों का आविष्कार हुआ है तब से जैव कृषि विशारद इस बात की खोज करते आ रहे हैं कि कौन कौन सी जाति के कीटाणु कृषि-वर्धन काल में कौन कौन से उपयोगी द्रव्य बनाया करते हैं। पेंन्सिलीन के बाद दूसरी जाति के कीटाणुओं से स्ट्रेप्टोमायसीन उत्पन्न होती पाई गई। फिर अन्य एक और कीटाणु जाति से क्लोरोमायसिटीन पैदा होती पाई गई। इस तरह इन जैवोद्भवी औषधियों के आविष्कार का जब सिलसिला चल पड़ा तो वैज्ञानिकों का उत्साह बढ़ा और वे सतत प्रयत्न में लगे कि कोई ऐसी भी जैवोद्भवी औषध इन जैवों से बनकर निकल सकती है जो अनेकों संचारी औषधियों पर रामबाण सिद्ध हो सकती है। इसी खोज में अमेरिका को सफलता मिल गई है। न्यूयार्क की सूचना है कि वहां की लेडरले जैव प्रयोगशाला बड़े प्रयत्न के बाद डिक्लोमायसीन नामक एक ऐसी जैवोद्भवी औषध का आविष्कार करने में सफल हो गई है जो फुफ्फुस प्रदाह (न्यूमोनियां), पूयमेह (गनोरिया), उदपंश (सिफलिस), दद्रु, पामा, विचर्चिका, कुष्ठ, रक्त विकार, फोड़ा, फुन्सी आदि अनेक प्रकार के कीटाणु जन्य व्याधियों में यह रामबाण सिद्ध हुई है। अब तक ५ हजार रोगियों पर आजमाई जा चुकी है सबों को निश्चित रूप से लाभ हुआ है।

वैद्य समाज बाबा जी की झोली की ऐसी चुटकी भर ऐसी दवा की इच्छा अवश्य रखता है कि वह एक ही दवा हर मर्ज पर काम दे। यह स्वयम् अनुसन्धान न करके किसी बाबा जी से मिलने की आशा लगाये उनकी सेवा पूजा तो अवश्य करता है किन्तु स्वयं अनुसन्धान के मार्ग पर नहीं आता। भला इन मुफ्तखोरों को ऐसी अनमोल विधि कौन दे सकता है? बिना हाथ मुख तक ले जाये जब मुख में ग्रास नहीं पड़ता तो निश्चय ही बिना श्रम के कल्याण नहीं।

कृत्रिम हीरा बनने लगा

हम सब रसायनी रसायन की ठरक में न जाने कितना धन का अपव्यय कर चुके हैं किन्तु इसमें कितने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफल हुए ? यह दिखाई नहीं देता । क्योंकि एक धातु दूसरी धातु में किस तरह परिवर्तित होती है ? इसको हम सब न तो वैज्ञानिक विधि से सीखे हैं न समझते हैं । जब तक तत्त्व परिवर्तन के सिद्धान्त को वैज्ञानिक विधि से नहीं समझा जा सकता तब तक कोई भी व्यक्ति एक धातु को दूसरी धातु में नहीं बदल सकता यह निश्चित बात है ।

कृत्रिम वज्र या हीरा निर्माण में मनुष्य तभी सफल हुआ, जब पहले वह इस बात को समझ सका कि हीरा वास्तव में है क्या वस्तु ? जब प्रयोगों से यह जाना गया कि हीरा तो केवल कोयला या कज्जल का ही एक रूपान्तर रूप है । हीरा, लेखनिका (ग्रेफाइट) और कज्जल तीनों ही कोयले के रूपान्तर रूप हैं । तब इस बात की खोज होने लगी कि पृथिवी गर्भ में यह कोयला लेखनिका और हीरा में कैसे बदला करता है । जर्मनी में इस पर सबसे प्रथम प्रयोग हुए गले हुए लोहे के सैंकड़ों मन द्रव के भीतर शुद्धकज्जल के पिंड को विशेष विधि से उस द्रव लोह के मध्य पहुँचा कर उस द्रव लोह को एक दम ठण्डा किया गया तो द्रव लोहा जब शीतल होकर चारों ओर से संकुचित हुआ तो उस कज्जल पिण्ड पर भयंकर उत्ताप और चाप (दबाव) जब चारों ओर से पड़ा तो कज्जल के परमाणु घुटकर परस्पर इतने मिल गये कि वह अपना काला रूप छोड़ कर स्वच्छ बिल्लौरवत् आभा प्रभावान बन गये । जब उस लोह पिण्ड को तेजाब में गला कर उसमें हीरे की कनियां निकाली गईं तो वह इतनी छोटी छोटी बनी थीं कि उनसे उस श्रम का मूल्य भी प्राप्त नहीं हुआ तभी इस विचार को छोड़ दिया गया था । किन्तु प्रयत्न करने वालों ने प्रयत्न जारी रखा । अभी ताजी सूचना आई है कि अमेरिका की जनरल एलेक्ट्रिक कम्पनी ने एक ऐसी मशीन तय्यार कर ली है जिसमें कज्जल पर १८ लाख पौण्ड का दबाव तथा २००० से लेकर क्रम से ४४०० शतांश तक उसमें उत्ताप उत्पन्न किया जा सकता है इस दबाव और उत्ताप पर कज्जल के अणु हीरा में बदल जाते हैं उनके निमित्त हीरा की कनियां बड़ी हैं और लागत भी कम आती है । यह है रसायन ।

समुद्री कीचड़ गारे से औषध का निर्माण

समुद्र के किनारे कहीं कहीं समुद्र के भीतर दबा हुआ ऐसा गाढ़ा कीचड़ गारा निकलता है, जो विशेष प्रकार का होता है । मनुष्य की खोज ने उस गारे को एकत्र कर उसे भभके में भर कर उड़ाया कि इसमें से क्या निकलता है । उसमें से जो वस्तु स्रवित हुई वैज्ञानिकों ने उसका उपयोग चूहों, शशकों पर किया । उसके सूची भरण देने पर देखा गया कि यह शोथ को कम करती है और रक्त संचार को बढ़ाती है । देखा गया है कि इसके सूची भरण देने पर कोषाओं में उत्तेजना बढ़ती है और उनकी रासायनिक क्रियाएं तेज हो जाती हैं । इसी से सन्धिवात आम वात के रोगियां को जब इसके सूची भरण दिये गये तो उनको काफी लाभ पहुँचा और जहां जहां सन्धि में द्रव संचित हो गये थे इसके प्रयोग से वह संचित द्रव वहां से हट कर रक्त में आ गया इससे रोगी को बहुत आराम मिला । इन प्रयोगों की सफलता देखकर इसको उपयोग के लिये जब स्वास्थ्य गृहों और अस्पतालों में प्रयोगार्थ दिया गया तो उन रोगियों को काफी लाभ हुआ । इसीसे इसका प्रचार बढ़ा ।

यह आविष्कार इस्टोनियां के वैज्ञानिकों ने किया है इस्टोनियां के समुद्री तट पर यह कीचड़ बहुतायत से निकलता है । इस स्रवित की हुई वस्तु का नाम हुमीसोन रखा गया है ।

जड़ चेतन जग जीवजत विश्व कीन्ह कर्तार ।
सन्त हन्स गुण गर्हहि पय परिहरि वारि विकार ।।

तुलसीदास की यह उक्ति आजकल वैज्ञानिकों पर घटित होती है । आधुनिक अविचारी साधुओं पर नहीं । इस युग में वैज्ञानिक ही सच्चे सन्त हैं । जो संसार के उपकारार्थ अनेक खोजें करते रहते हैं । पूर्वकाल के सन्त भी यही किया करते थे ।

[शेष पृष्ठ ११३ पर]

की वृद्धि का प्रभाव चुल्लिका पर पड़ता है उससे चुल्लिकीन (Thyroxine) की वृद्धि होकर उक्त नेत्र का उद्गमन होता है या स्वयं चुल्लिकार्बुद के कारण या अन्य किसी कारण से चुल्लिका ग्रन्थि में जब चुल्लिकीन की मात्रा अधिक बनने लगती है तब उसका प्रभाव नेत्र गुहस्थ कोषाओं में आर्द्रशोफ के रूप में प्रकट होता है इससे नेत्राण्ड बढ़कर वह इतने बड़े हो जाते हैं कि वे पलकों के बाहर उभर आते हैं इसीसे वर्त्म पीछे हट जाते हैं ।

इस तरह अनेक रोगों का ज्ञान नेत्र दर्शन से हो जाया करता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्व. आचार्य श्रीयादवजी महाराज के कुछ स्मरणीय विचार

लेखक :—पं० कन्हैया लाल जी भेड़ा वैद्य, बम्बई

इस वर्तमान युग में आयुर्वेदोद्धारक अनेक दुर्लभ सटीक चरक सुश्रुत माधव निदान तथा काश्यप संहिता आदि प्राचीन असंख्य ग्रन्थों के संशोधक एवं प्रकाशक तथा शिष्य प्रशिष्य परम्परा द्वारा भारत व्यापी यशस्वी श्री गुरुदेव स्व. श्री आचार्य यादव जी महाराज के कुछ स्मरणों को विद्वद् वैद्य समाज के सम्मुख उपस्थित करता हूँ—

१—आचार्य जी ऋषिप्रणीत ग्रन्थों के परम भक्त थे। चरक सुश्रुत के मूल तथा टीकाओं के संशोधन में उन्होंने अतुल परिश्रम एवं अपूर्व संशोधन व कलापूर्वक पांडित्य प्रकट किया है। किन्तु उनके संस्करणों के पूर्व प्रकाशित पुस्तकों तथा टीकाओं के देखने से स्पष्ट प्रतीत होता जायगा कि पूर्व संस्करणों में तथा इनमें कितना अन्तर है। ऐसे १–२ ही उदाहरण नहीं देखेंगे, अपितु सभी अध्यायों में मिलेंगे।

२—द्रव्य गुण विज्ञान के भाग त्रय का सद्भावना से पठन एवं मनन करने से यह निस्संकोच कह सकते हैं कि भाव प्रकाश ने एक तरफ द्वीपान्तर वचा, पारसीक यवानी पारसीक वचा आदि अनेक मध्ययुगीन द्रव्यों को आत्मसात करके वैज्ञानिक विकास की धाराओं को अविरत गति से प्रवाहित किया। इस वर्तमान युग में श्री आचार्य जी द्रव्य गुण विज्ञान के सभी भागों में नवीन उपादेय विषयों को आत्मसात करके सिंकोना, बेलाडोना, डिजिटेलीस, सर्पगन्धा आदि अनेक द्रव्यों का समावेश करने में पीछे नहीं रहे। भाव मिश्र तथा श्री आचार्य जी की रचना में लगभग ४०० वर्ष का अन्तर होने पर भी मौलिक विचार धारा तथा सरस्वती की अन्तर्धारा के समान आयुर्वेद की गवेषणा पूर्ण रक्षा की चिन्ता में तनिक भी अन्तर नहीं दीखता यह ग्रन्थों के मर्मस्पर्शी पर्यवेक्षक वैद्य महानुभावों के लिये विस्मय का विषय अवश्य है।

३—सन् ३८ में वैद्य सम्मेलन पत्रिका के किसी अङ्क में "मानस रोग" पर एक मौलिक ग्रन्थ लिखने के लिये क्रमशः चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट, न्यायदर्शन, सांख्य कारिका, वैशेषिक सूत्र आदि के पूर्ण संकेतों द्वारा नवीन लेखकों के लिये अनुपम मार्ग प्रदर्शित किया है। ऐसे अनेक विषयों पर सोपान बना कर लिख गये हैं। जिस पर विद्वान वैद्यों को ऊपर चढ़कर विभिन्न कोणों से शास्त्रों का मन्थन करके प्रतिदिन नूतन साहित्य की रचना, वैज्ञानिक विषयों का सात्म्यी करण दुर्लभग्रन्थों की खोज करके आयुर्वेद को समुपबृंहित करना चाहिये।

४—आचार्य जी का प्राचीन शास्त्रों में अनुसन्धान—रस शास्त्रोक्त प्रधान द्रव्य पारद पद्मराग, काच, स्फटिक, सूर्यकान्त, वज्र आदि ८९ के लगभग द्रव्यों के वर्णन के विषय में संहिता ग्रन्थों का स्थल निर्देश पूर्वक सुन्दर संग्रह को देखकर आचार्य प्रवर की सूक्ष्मातिसूक्ष्म शोधन कला से विद्वानों के हृदय में अत्यन्त आनन्द होता है। (रससागरामृत परिशिष्ट)

आचार्य जी ! पार्थिव द्रव्यों का पिष्टी तथा भस्म इन दोनों पद्धतियों से प्रयोग करते थे। वे कहा करते थे कि आर्यकाल में पार्थिव द्रव्यों के प्रयोग अञ्जन सदृश अति सूक्ष्म चूर्ण (पिष्टि) बना कर ही प्रायः होते थे। इसमें प्रमाण दिया करते थे—

"प्रवाल मुक्ताञ्जन शंख चूर्णं लिह्यात्तथा काञ्चन गैरिकोत्थम्" (सु. उ. अ. ४४ श्लो. २१)

"पिबेत्तथा तण्डुल धावनेन प्रवाल चूर्णं कफ मूत्र कृच्छ्रे" (च. चि. अ. २६ श्लो. २६)

पार्थिव द्रव्यों की अग्निपुट द्वारा भस्म निर्माण करने की विधि रसशास्त्र के विकास के बाद हुई है। इसीलिये सुश्रुत चरकादि में भस्म विधान नहीं मिलता है। कुछ वैद्य समुदाय में यह जो प्रचार सुनने में आता है कि मुक्ता प्रवाल आदि उपरत्नों की पिष्टि बनाने की प्रक्रिया यूनानी हकीमों की देखा देखी प्रचलित हुई है। यह धारणा नितान्त ठीक नहीं है। क्योंकि लोह सुवर्ण रौप्य आदि के सूक्ष्म चूर्णों का प्रयोग "अयस्कृति" के नाम से सुश्रुत में तथा सूक्ष्म चूर्ण के रूप से चरक में मिलते हैं। चरक सुश्रुत के समय में भी उनकी पिष्टियों के ही प्रयोग होते थे। इसके लिये प्रमाण में यह वचन देते थे—

"तीक्ष्ण लोह पत्राणि तनूनि लवण वर्गं प्रदिग्धानि" सूक्ष्म चूर्णानि कारयेत् अन्तान्तव परिस्रावितानि। ततो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा बलं मात्रां मधुसर्पिभ्यां संसृज्योपयुंजीत । एवं लोहे ष्वयस्कृतयो व्याख्याता:" । (सु. चि. अ. १०)

"त्रिफला या रसे मूत्रे गवांक्षारेऽथ लावणे । क्रमेण वैङ्ग दीक्षारे किंशुकक्षारे एव च । तीक्ष्णायसस्य पत्राणि वह्निवर्णानि साधयेत । चतुरङ्गुल दीर्घाणि तिलोत्सेध तनूनिच । ज्ञात्वा तान्यञ्जनाभावि सूक्ष्म चूर्णानि कारयेत ।

× × ×

अनेनैव प्रकारेण हेम्नश्च रजतस्यच ।

आयु: प्रकर्षकृत सिद्धः प्रयोग: सर्व रोगनुत ।

(च. चि. अ. १ पा. ३)

अञ्जन सदृश सूक्ष्म चूर्णानि कारयेदित्यर्थ: । इस विषय में और भी कई प्रमाण दिया करते थे उनमें एक सुश्रुत उत्तर तंत्र अ. १८ श्लोक ८५-९५ में लिखित चूर्णाञ्जन के योग में सौवीराञ्जन, सुवर्ण, ताम्र और रौप्य इनको मूषा में अग्नि पर गलाकर गोमूत्र, दधि, घृत, मधु आदि द्रव पदार्थों में निर्वापित कर सूक्ष्म चूर्ण बना कर प्रयोग करने का आदेश दिया करते थे ।

रसाञ्जन के विषय में विचार—

प्राचीन चरक सुश्रुत के टीकाकारों के समय से ही रसाञ्जन के विषय में मतभेद आ रहा है । आज भी बंगाल के वैद्यों को छोड़ कर प्राय: सभी भारतीय वैद्य रसाञ्जन के नाम से "रसौंत" (दार्वीहरिद्रारसक्रिया) का व्यवहार करते हैं । वे यह भी कहा करते थे "डल्हण" के समय में रसाञ्जन शब्द से कई वैद्य "रसौंत" तथा कई वैद्य "कृष्ण पाषाण सदृश" धातुद्रव्य स्रोतोञ्जन दोनों को रसाञ्जन नाम देते थे तथा रसाञ्जन को स्रोतोञ्जन का एक पर्याय भी मानते थे । इसी आधार पर आज भी बंगाल के वैद्य काले सुरमे को रसाञ्जन मानते हैं । भारत के सुप्रसिद्ध वैद्य श्री दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी जी लिखित रस रत्न समुच्चय टीका (पृ. ५९-६०) में रसाञ्जन को "यलो आक्साइड आफ मर्क्यूरी" कहा है । ऐसा कहकर तथा अग्नि सारं, रसगर्भ, रसाग्रजं, रसोद्भवं इन शब्दों से पारदघटित उपरोक्त कल्पना में प्रमाण दिये हैं । इसी तरह स्व०डा०वामन गणेश देसाई जी ने भी पारद की पीतभस्म अर्थात "यलो आक्साइड आफ मर्क्यूरी"को ही रसाञ्जन नाम दिया है(भारतीय रस शास्त्र पृ. ३३०)इन दोनों मतों का खण्डन इस तरह करते थे—कि "संहिताओं में रसाञ्जन के खाने के प्रयोग पर्याप्त मिलते हैं ।"

दार्व्या रसाञ्जनस्यच निम्ब पटोलस्य खदिर सारस्य । आरग्वध वृक्षकयो स्त्रिफलाया: सप्तपर्णस्य । इति षट् कषाय योगा: कुष्ठघ्ना: सप्तमश्च तिनिशस्य । स्नाने पाने च हिता: । (च. चि. अ. ७-९७-९८) ऐसे चरक चि. अ. १४-१९५ तथा च. चि. अ. १९-५६-५९, च. चि. अ. ३०-९०-९६ ।

सुश्रुत में भी—

तद्वत्ताक्ष्यं मास मात्रंच पेयम् । (सु. चि. अ. ९ श्लो. ४६)

इन आधारों पर रसाञ्जन रसौंत ही हो सकता है । "यलो आक्साइड आफ मर्क्यूरी" नहीं ।

सु. सू. अ. ३८ श्लोक ४५ प्रियङ्ग्वादि गण में रसाञ्जन और स्रोतोञ्जन दोनों का उल्लेख है, इसलिये दोनों को एक मानना भी अनुचित है ।

शल्य चिकित्सा का चमत्कार
कटी आंतों को जोड़ दिया ।

गोंडा जिले के बलरामपुर अस्पताल के शल्य चिकित्सक डा० एन. वी. मिश्र के पास एक ऐसा व्यक्ति लाया गया जिसका पेट शत्रुओं ने चीर कर उसकी आंतें टुकड़े टुकड़े कर दी थीं । और इधर उधर फेंक दी थीं । उस आदमी के सम्बन्धी उस मूर्छित व्यक्ति को मयअन्त्र टुकड़ों के उठाकर उपरोक्त डाक्टर के पास ले आये । डाक्टर के पास आते ही उस व्यक्ति को रक्त प्रदान किया गया और कई घंटे जो आंतें बाहर पड़ी रह कर निर्जीव हो गई थीं, उन्हें शुद्ध साफ कर डाक्टर ने शेष आंत के साथ लगाकर सी दिया और उन्हें यथा स्थान बिठा कर पेट सी दिया । कुछ दिनों तक उस व्यक्ति को रक्त व द्राक्षज विलयन लवण युक्त सिरा मार्ग से देते रहे । पांच दिनों के बाद उस व्यक्ति की मूर्छा दूर हो गई और दो सप्ताह के बाद वह व्यक्ति दूध, द्राक्षज, मांस रस, फल रस आदि लेने लगा । अब वह बिल्कुल स्वस्थ होकर अपने घर चला गया है । इस शल्य चिकित्सा से स्वयं डाक्टर भी आश्चर्य करते हैं कि कई घंटे तक आंतों के निर्जीव बाहर रहकर उनमें पुनर्जीवन आजाना आत्मवादियों के एकात्मवाद के सिद्धान्त को जबर्दस्त ठेस लगाने वाली बात है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैद्य-हकीम ध्यान दें !

वैद्य समाज को यह तथ्य हृदयंगम कर लेना चाहिये कि वर्तमान समय में राज्य की आयुर्वेद-विरोधी-नीति के कारण आयुर्वेद का जो ह्रास हो रहा है, उससे रक्षा का एकमात्र साधन यही है कि सार्वजनिक जनता का ध्यान आयुर्वेद की वस्तु स्थिति के प्रति आकर्षित किया जाय और आयुर्वेद के पक्ष में जनमत जाग्रत करके जनता के द्वारा राज्याधिकारियों को इस बात के लिये विवश किया जाय कि वे अपनी पाश्चात्य विज्ञान के अन्धानुकरण पर आधारित स्वास्थ्य चिकित्सा नीति को परिवर्तित करे और भारत के अपने मौलिक प्राचीन स्वास्थ्य विज्ञान आयुर्वेद को शनैः शनैः समाप्त होने से बचावें। यही नहीं, उसको ही भारत का राष्ट्रीय चिकित्सा-विज्ञान घोषित करें। आयुर्वेद के हित में ऐसे ही प्रभावकारी प्रयत्नों से कुछ सफलता मिल सकती है।

यह सर्व विदित है कि भारत सरकार पर आयुर्वेद के पक्ष में जनमत प्रकट करने के विचार से सुख्यात आयुर्वेद सेवी पंडित रामनारायण वैद्य ने अखिल भारतीय स्तर पर एक सार्वजनिक हस्ताक्षर आन्दोलन संचालित किया है। यह आन्दोलन आयुर्वेद हित के विचार से बहुत ही महत्व-पूर्ण एवं सामयिक है। सभी दूरदर्शी आयुर्वेदज्ञों ने इसका प्रबल समर्थन किया हैं। देश के विभिन्न भागों से लाखों भारतीय नागरिकों के हस्ताक्षर कराये जा चुके हैं। पिछले महीने यह विचार किया गया था कि संग्रहीत हस्ताक्षर पत्र एक विशेष ज्ञापन सहित आयुर्वेद-विद्वानों के अखिल भारतीय शिष्ट मण्डल द्वारा महामहिम राष्ट्रपति महोदय की सेवा में समर्पित कर दिये जावें। एतदर्थं हर प्रदेश से एक एक, दो-दो शीर्षस्थ विद्वान चुनकर शिष्ट मण्डल का निर्धारण कर लिया गया था। परन्तु इस आन्दोलन के सूत्रधार वैद्यराज पंडित रामनारायण जी शर्मा के यकायक अधिक अस्वस्थ हो जाने के कारण निर्धारित कार्यक्रम को रोक देना पड़ा। पंडित रामनारायण जी वैद्य विगत एक माह से अधिक काल से बहुत अस्वस्थ हैं और उनके चिकित्सकों का यह आदेश है कि कम से कम दो माह तक वे पूर्ण विश्राम करें। ऐसी स्थिति में हस्ताक्षर आन्दोलन सम्पादन और हस्ताक्षर पत्रों का महामहिम राष्ट्रपति महोदय को समर्पण करने के आयोजन का भार पण्डित रामनारायण जी वैद्य ने मुझको सौंपा है। आयुर्वेद के लिए इस वृद्धावस्था में जो कुछ कर सकूं, वह मेरे लिये सौभाग्य की बात है। वैद्य रामनारायण जी की इच्छा है कि इस कार्य को मैं शीघ्र कर दूं। परन्तु यह कुछ अच्छा प्रतीत नहीं होता है कि आंदोलन के मूल संचालक की अनुपस्थिति में हस्ताक्षर पत्र राष्ट्रपति महोदय को अर्पित किये जावें। इससे तो यह अधिक उचित प्रतीत होता है कि आगामी दो माह के समय में हस्ताक्षर आंदोलन को कुछ और तीव्रगति से चलाया जावे और देश के सम्पूर्ण वैद्य हकीम तथा आयुर्वेद से प्रेम रखने वाले भारतीय इसमें अपना भरपूर सहयोग देवें। मेरी ऐसी ही मान्यता है और अनेक आयुर्वेद हितैषियों का यही परामर्श है कि आन्दोलन को अभी और भी व्यापक बनाया जावे। वर्तमान स्थितियों में सरकार को आयुर्वेद के प्रति न्याय करने हेतु आकृष्ट एवं बाध्य करने का एकमात्र प्रभावशाली तरीका यही है कि आयुर्वेद के विषय में भारतीय जनता का वास्तविक अभिमत प्रकट किया जावे। हस्ताक्षर आंदोलन उसका उचित साधन है। इसलिए प्रत्येक वैद्य हकीम का यह अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वह पूरी रुचि के साथ इस आंदोलन में भाग ले। यह कार्य वैद्यनाथ प्रतिष्ठान अथवा किसी के व्यक्तिगत हित, श्रेय या प्रतिष्ठा से सम्बन्धित नहीं है। आयुर्वेद और वैद्य हकीमों के ही सामूहिक हित का आवश्यक कार्य है। यदि इसमें भी वैद्य-हकीम सक्रियता नहीं दिखा सकते तो इसका अर्थ यही है कि वे स्वयं ही अपनी ह्रासपूर्ण स्थिति के लिए जिम्मेवार बनना चाहते हैं। करोड़ों की आबादी वाले देश से कुछ लाख नागरिकों के हस्ताक्षर एकत्र कर लेना सन्तोषजनक नहीं है, जब कि हम दिन रात कहते हैं कि भारत की ८५प्रतिशत जनता आयुर्वेद से लाभान्वित होती है और आयुर्वेद को चाहती है। दूसरी ओर सरकार को यह भ्रम है कि जनता आयुर्वेद को नहीं चाहती तो हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम सरकार को यह दिखायें कि देश का विशाल जनमत हमारे साथ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी दशा में प्रत्येक वैद्य-हकीम को हस्ताक्षर संग्रह का कार्य अपना आवश्यक कर्तव्य समझ कर करना चाहिये। जो हस्ताक्षर पत्र वैद्य बन्धुओं को भेजे गये हैं या भेजे जा रहे हैं उन पर वैद्यों के नहीं वस्तुतः सार्वजनिक जनता के हस्ताक्षर कराने हैं। वैद्य-हकीम अपने चिकित्सालय में बैठे ही अपने यहां नित्य आने वाले रोगियों और नागरिकों से उन पर हस्ताक्षर करा सकते हैं। हस्ताक्षरित पत्रों को भेजने में डाक व्यय का भी संकोच यदि कुछ वैद्य हकीम करते हैं तो यह शोभनीय नहीं है। राज्य की उपेक्षा और विनाशक नीति के कारण आयुर्वेद एवं वैद्य-हकीमों के सामने जीवन-मरण का प्रश्न आज उपस्थित है। ऐसे संकट काल में वैद्य-हकीमों को अधिक सतर्कता अधिक संगठन और सक्रियता से काम लेना चाहिये। जिन सज्जनों ने अब तक हस्ताक्षर पत्रों पर जनता के हस्ताक्षर करा के नहीं भेजे हैं, उनसे मेरा साग्रह निवेदन है कि वे शीघ्र अपने यहां की जनता के अधिक से अधिक हस्ताक्षर करा के मेरे पास अथवा श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० झांसी के पते पर यथाशीघ्र भिजवायें। हस्ताक्षर पत्र के साथ अधिक हस्ताक्षरों के लिये सादा कागज भी जोड़ा जा सकता है, जो सज्जन अधिक मात्रा में हस्ताक्षर पत्र चाहें वे मुझे पत्र द्वारा आदेश करें, अपेक्षित मात्रा में हस्ताक्षर पत्र उन्हें भेजे जावेंगे।

इस हस्ताक्षर आन्दोलन को आगे दो माह और निरन्तर रखने के विचार में, मेरा एक अन्य उद्देश्य भी है। पण्डित रामनारायण जी वैद्य के निर्देशन में बैद्यनाथ प्रतिष्ठान ने एक दूसरा महत्वपूर्ण आयोजन और किया है। वैद्य समाज को विदित है कि गोलोक वासी आचार्य श्री यादव जी महाराज की सेवा में उत्कृष्टतम अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का आयोजन किया गया था। श्री यादव जी महाराज ने इस आश्वासन पर उसकी स्वीकृति प्रदान की थी कि यह ग्रन्थ आयुर्वेद वाङ्मय की अपूर्व और सर्वोत्कृष्ट रचना के रूप में प्रस्तुत किया जावे। आयुर्वेद के दुर्भाग्य से आचार्य श्री यादव जी महाराज असमय ही गोलोकवासी हो गए और उनके जीवन काल में उक्त ग्रन्थ पूर्ण न हो सका। प्रारम्भ में ही ग्रन्थ के निमित्त मौलिक सामग्री एकत्र करने में पर्याप्त समय लगा। उन दिनों कागज की महर्घता थी अतः ग्रन्थ के लिये विशेष रूप से कागज बनवाने में बड़ा समय गया। दूसरी ओर यह अनिवार्य था कि आचार्य श्री की वांछानुसार ग्रन्थ को इतनी उच्च कोटि का बनाया जावे कि उसे अद्वितीय कहा जा सके। इसी प्रयत्न में ग्रन्थ के आयोजक संलग्न रहे। उत्कृष्ट रचनाओं में अधिक समय लगना स्वाभाविक होता है। आयुर्वेद शास्त्र चर्चा आचार्य जी का सर्वोपरि प्रिय विषय था, यह सभी जानते हैं। दो विवेचन परिषदें तो आचार्य जी स्वयं सम्पन्न कर चुके थे। आयुर्वेद शारीर शब्दार्थ विनिश्चय का कार्य आचार्य जी अपूर्ण छोड़ गये थे। उसको पूरा करना आवश्यक कर्त्तव्य था। आचार्य जी के उक्त अभिनन्दन ग्रंथ में उनके इस प्रिय विषय को पूर्ण करके सम्मिलित करना वांछनीय समझा गया। उसमें बहुत समय लगा, जो कि विषय की गम्भीरता के अनुसार स्वभाविक ही था। ग्रंथ के प्रकाशन में विलम्ब का यह भी एक कारण है। निश्चय ही वैद्यनाथ प्रतिष्ठान ने लगभग तीस हजार रुपया व्यय और अन्य बौद्धिक परिश्रम करके यह बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। अब उक्त ग्रन्थ तैयार है। वैद्य रामनारायण जी की इच्छा है कि अब यह ग्रन्थ आचार्य जी के उत्तराधिकारी को एक विशिष्ट समारोह में समर्पित किया जावे। जुलाई मास में इसके लिये वे एक अखिल भारतीय विद्वत्सम्मेलन कराना चाहते हैं। मैं समझता हूँ उस अवसर पर ही हस्ताक्षर पत्र महामहिम राष्ट्रपति महोदय को अर्पित करने का आयोजन अधिक प्रभावकर होगा। एक पंथ दो काज हो जावेंगे। इसलिये हस्ताक्षर आन्दोलन को दो महीने और बढ़ाने का मेरा विचार है।

मैं इस आयुर्वेद हित के महत्वपूर्ण कार्य में सम्पूर्ण वैद्य-हकीम समाज से सक्रिय और रुचिपूर्ण सहयोग की अपील करते हुए आग्रह करता हूँ कि वैद्य-हकीम कृपा कर आयुर्वेद पक्ष में अधिक से अधिक जनता के हस्ताक्षर करावें। इस आयोजन से आयुर्वेद की जनप्रियता प्रकट होगी और सार्वजनिक क्षेत्र में प्रचार होगा।

सुधानिधि-कार्यालय
३, सम्मेलन मार्ग,
प्रयाग, इलाहाबाद।

भवदीय हितेच्छु
जगन्नाथप्रसाद शुक्ल वैद्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समालोचना

धन्वन्तरि मासिक का नारीरोगाङ्कः—

सम्पादक—वैद्य देवीशरण गर्ग आयुर्वेदाचार्य। प्रकाशक—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

साइज $\frac{२०\times३०}{८}$ पृष्ठ संख्या ५२० :

प्रस्तुत अंक धन्वन्तरि 'मासिक' का फरवरी मार्च १९६० का सम्मिलित अंक है जो चालू वर्ष के विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया गया है। विशेषांक क्या है, आकार में तो एक वृहद् ग्रन्थ प्रतीत होता है जिस में लगभग १४० लेख प्रकाशित हैं। सम्पूर्ण नारी रोगों को २४ शीर्षकों में विभक्त कर प्रत्येक शीर्षक सम्बन्धी सभी लेखों को क्रमशः एक साथ रखा गया है। इस प्रकार स्त्री रोगों सम्बन्धी प्रत्येक विषय के लेख एकत्र रहने से पाठकों के लिये उस विषय की जानकारी का क्रम सुविधाजनक बना दिया गया है।

बहुत से लेख सचित्र हैं। स्त्री जननेन्द्रिय रचना के प्रथम प्रकरण में तथा स्त्री रोग परीक्षा प्रकरण में इन चित्रों के द्वारा विषय के स्पष्टीकरण में बहुत सहायता मिली है। स्त्री रोग परीक्षा प्रकरण के कुछ लेख चिकित्सकों के लिये विशेषतः स्त्री चिकित्सकों के लिये क्रियात्मक उपयोगितापूर्ण हैं।

आजकल अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का महत्व दिनोंदिन चिकित्सा के क्षेत्र में बढ़ता जा रहा है यह नव्य विज्ञान की ही देन है। स्त्रियों के रजोदर्शन से अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का विशेष सम्बन्ध है जिसका वर्णन प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रों में न होने से प्रायः वैद्य समाज इससे अनभिज्ञ है। आर्तव प्रकरण के कुछ लेखों में इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला गया है जो आयुर्वेदीय चिकित्सकों के लिये ज्ञानवर्द्धक है। इस प्रकरण में एक बात खटकने वाली है और वह यह कि भिन्न-भिन्न लेखों में एक-एक शब्द के भिन्न-भिन्न पारिभाषिक पर्याय प्रयुक्त किये हैं जिससे एक विषय होने पर भी भिन्न २ लेखों को पढ़ते समय भ्रम सा हो जाता है परन्तु इसमें दोष न तो लेखकों का है न सम्पादकों का। इस त्रुटि का कारण है हिन्दी में पारिभाषिक शब्दावली का निश्चित न होना। नव्य विज्ञान से सम्बन्धित हिन्दी लेखों और पुस्तकों में समानता एवं एकरूपता लाने के लिये नवीन वैज्ञानिक शब्दों के पारिभाषिक पर्याय निश्चित करना अत्यन्त आवश्यक है, अतः प्रसंगवश हम वैद्य समाज का ध्यान इस ओर आकृष्ट कर रहे हैं।

समालोच्य विशेषांक में आर्तव दोष, प्रदर रोग, योषापस्मार (हिस्टीरिया), वन्ध्यत्व, गर्भपात, गर्भच्युति, अर्बुद, प्रसूति ज्वर, गर्भाशय शोथ, योनि कण्डू, स्तन रोग आदि अनेक स्त्री रोगों सम्बन्धी लेखों का अच्छा संग्रह विद्यमान है। सौन्दर्य प्रकरण के कुछएक लेख ऐसे हैं जिन की चिकित्सकों के लिये कोई उपयोगिता नहीं न ही वह नारी रोगों से कोई सम्बन्ध रखते हैं, अतः अप्रासङ्गिक हैं।

सन्तति नियमन आज के समाज में एक प्रमुख विषय बना हुआ है। इसका सम्बन्ध स्त्रियों के स्वास्थ्य से भी है और वैद्यों से भी। समालोच्य विशेषांक में इस विषय को सर्वथा अछूता छोड़ दिया गया है। सम्भवतः इसकी ओर सम्पादकों का ध्यान नहीं गया अथवा इस पर कोई लेख ही प्राप्त नहीं हुआ क्योंकि वैद्य समाज में इस विषय की जानकारी प्रायः नहीं के तुल्य है।

विशेषांक न्यूज प्रिंट पर छपा है। और छपाई भी सामान्य दर्जे की है। विशेषांक सहित धन्वन्तरि का वार्षिक मूल्य ५॥) है परन्तु अकेले विशेषांक का मूल्य ८॥) रखना नितान्त असंगत एवं व्यवसायिक नियमों के विरुद्ध बात है।

समालोचक—क.गौरीलाल चानना बी.ए.वैद्य वाचस्पति

सूचना

श्री परशूराम पुरीया राजस्थान आयुर्वेदिक कालेज का नवीन सत्र सन् ६० की जुलाई से प्रारम्भ होगा। प्रवेशार्थियों को इस अवधि से पूर्व ही अपने स्थान सुरक्षित कराने हेतु कालेज से आवेदन पत्र व नियमावली प्राप्त कर लेनी चाहिए। प्रवेश योग्यता मध्यमा, उपाध्याय, प्रवेशिका, प्रथमा, संस्कृत से मैट्रिक व अन्य तत्सम परीक्षा अपेक्षित हैं।

राजस्थान सरकार द्वारा सहायता व मान्यता प्राप्त इस संस्था में भिषग्वरीय पाठ्यक्रमानुसार कर्माभ्यास हेतु विविध मोडलस्, चार्ट, यन्त्र, शस्त्र तथा अन्यान्य उपकरण एवं साजसज्जा से सुसज्जित आतुरालय, औषधालय प्रयोगशाला रसायनशाला पुस्तकालय वाचनालय आदि विभागों की सुव्यवस्था है। इन साधनों के आधार पर सुयोग्य प्राध्यापक अपनी विशिष्ट शिक्षण शैली से प्रतिपाद्य विषय छात्रों को हृदयंगम कराते हैं। प्रवेशेच्छु शीघ्रता करें। स्थान सीमित हैं। योग्य छात्रों को छात्र वृत्ति भी दी जाती है। छात्रावास में, आवास, प्रकाश पानी तथा पाचक का प्रबन्ध निःशुल्क हैं।

वैद्य पुरुषोत्तम शर्मा
प्रिंसिपल
परशुराम पुरीया
राजस्थान आयुर्वेदिक कालेज
सीकर (राजस्थान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसव निर्माणार्थ सागवान काष्ठ के ढोल

प्राचीन काल से ही वैद्यों में आसव निर्माणार्थ प्रायः मट्टी के पात्रों को प्रयोग करने का प्रचलन है। परन्तु मट्टी के पात्र में दो बड़े दोष हैं एक तो मसामदार होने से आसव द्रव उस में से चू कर बाहर निकल सकता है। दूसरे मृत्पात्र तापवाहक होने के कारण सन्धानार्थ द्रव के अन्दर आवश्यक उत्ताप को स्थिर नहीं रख सकता, जिस से आसव निर्माण क्रिया (सन्धान) में बाधा उत्पन्न हो सकती है। लकड़ी के ढोल इन दोनों दोषों से मुक्त हैं। लकड़ी में भी सागवान की लकड़ी ऐसी कठोर है कि निरन्तर वर्षों तक पानी के संसर्ग में रहने पर भी यह नहीं गलती। अतः सागवान के बने ढोल चिर काल तक खराब नहीं होते और आयु पर्यन्त काम देते रहते हैं। मृत्पात्र की तरह इन्हें घृत परिप्लुत करने का झंझट भी नहीं करना पड़ता। जल से प्रक्षालन कर स्वच्छ करके इन का प्रयोग किया जा सकता है। मृत्पात्र की तरह इनके फूटने का भी भय नहीं।

हमारे यहां वर्षों से इन ढोलों का प्रयोग हो रहा है। श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी द्वारा लिखित "आसव विज्ञान" पुस्तक के प्रकाशन के बाद से देश के प्रत्येक कोने से इन लकड़ी के ढोलों के लिये अनेकों वैद्यों की मांग आती रही है। अतः हमने बिलायत से आने वाले माल के खाली ढोल जो बड़ी बड़ी मिलों में रासायनिक पदार्थों में लग कर आते हैं उनके संग्रह का प्रयत्न किया है। वह साफ करने पर आसव निर्माण के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। आशा है वैद्य समाज तथा औषध निर्माता इन का प्रयोग कर आसव निर्माण प्रक्रिया को समुन्नत करने की दिशा में अग्रसर होंगे। इस से उन्हें सुविधा भी होगी और आसव भी उत्तम बनेंगे। प्रत्येक ढोल की समाई इतनी है कि उसमें १॥ मन आसव भर कर रखा जा सकता है। मूल्य प्रति ढोल १२)। बड़ा ढोल जिसमें ६मन आसव रखा जा सकता है मूल्य३०)। दोनों का मार्ग व्यय भिन्न। आर्डर के साथ पेशगी आना जरूरी है।

निवेदक—मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट-अमृतसर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याधि-मूल विज्ञान (पूर्वार्ध)

श्री स्वामी हरिशरणानन्द की नव्य कृति

छपगया ! छपगया !! छपगया !!!

यह वैज्ञानिक युग है, शरीर के भीतर जब कोई व्याधि हो जाती है तो उसे अब तक अनुमान से ही जानते थे। किन्तु वैज्ञानिकों ने ऐसे साधन मालूम कर लिए हैं कि शरीर के भीतर जब व्याधियों का प्रादुर्भाव हो रहा हो तो वह कैसे हुआ करता है, और उसमें कौन कौन से व्याधियों के उत्पादक कारण है। इसको उन्होंने नव्य प्रायोगिक विधियों से खूब अच्छी तरह से देखा व जांचा। एक ही प्रयोगशाला ने नहीं, अनेकों प्रयोगशालाओं ने मिलकर जांच की और जो तथ्य उन्हें मिले और वे प्रकाश में आये उनको संकलित कर व्यवस्थित रूप दिया गया है। इन प्रायोगिक विधियों ने चिकित्सा के अनेकों मान्य सिद्धान्तों पर पानी फेर दिया है।

आयुर्वेद का सिद्धान्त है—"मिथ्याहार विहाराभ्यां दोषाः ह्यामाशयाश्रयाः"। आहार विहार की अनियमितताओं से आमाशय में दोषों का उत्थान होता है। आहार सम्बन्धी और पचन सम्बन्धी विषय का प्रायोगिक ज्ञान इतना अधिक बढ़ चुका है जिनके सन्तुलित स्थिति से मनुष्य स्वस्थ रहता है उसमें असन्तुलित स्थिति उत्पन्न होते ही रोगों का प्रादुर्भाव होता है। यह 'द्रव्य साम्यमरोग्यता' का सिद्धान्त किस तरह देखा समझा गया यह आयुर्वेद विद्वानों के समझने की चीज है। इसी का वैज्ञानिक विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है। यह ग्रन्थ का पूर्वार्ध मात्र है जो ४०० से अधिक पृष्ठों में पूर्ण हुआ है। १० वर्ष के परिश्रम के बाद इसका पूर्वार्ध ही पाठकों के हाथ में पहुँचा रहे हैं। सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य १२) है।

मैनेजर—पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर

ब्रांच—खारी बावली, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ७ भाद्रपद सम्वत् २०१७ संख्या ९

सितम्बर १९६०

गुरुकुल पत्रिका
गुरुकुल काँगड़ी

आयुर्वेद-विज्ञान

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

सम्पादक
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

Gurukula Kangri Library Haridwar

विषय-सूची

१. भारत सरकार का आयुर्वेद पर नया वार होने वाला है १३७
२. मूत्र परीक्षा १४०
३. मृत्यु का कारण १४५
४. अधिमन्थ (ग्लाकोमा) विवेचन १४८
५. असहनीयता जन्य व्याधियां १५१
६. समालोचना ... ...

प्रकाशक—
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, खारी बावली, दिल्ली-६

मुद्रक—बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा नई सड़क, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ३० नये पैसे होगा।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये। अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्व-प्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा। किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, व करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायेगा।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर किसी परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-सम्बन्धी प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये आयुर्वेद-विज्ञान के ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न एक रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके प्रश्न और उत्तर छापे जायेंगे।

मैनेजर

शिवा गुटिका

(जीर्ण और वृद्ध रोगियों के लिये दिव्य रसायन)

यह योग चक्रदत्त भैषज्य रत्नाकर और योगरत्नाकर ग्रन्थों में रसायनाधिकार में आया है इस योग का प्रमुख द्रव्य शिलाजीत सूर्यतापी है जिसे कई वनस्पतियों और जीवनीय गण की औषधियों द्वारा ग्रीष्म काल की आतप में भावित कर उसकी मलाई उतारी जाती है। पश्चात कुछ अन्य औषधियां मिला कर इस की गुटी बनाई जाती है।

शास्त्र में इसे आमवात, यक्ष्मा, पाण्डु, नपुन्सकता, मृगी तथा शिर, नेत्र, कण्ठ, फुप्फुस एवं हृदय के कई रोगों में लाभकारी लिखा है। इसका मुख्य गुण रसायन है। अर्थात् किसी भी जीर्ण रोग से, जरावस्था में अथवा किसी भी तरह जब शरीर की कार्य व्यवस्था बिगड़ जाय, शरीर की कोषायें निर्बल विकृत हो जायें तो यह औषधि स्वास्थ्य को पुनः बिल्कुल ठीक कर देती है, ऐसा अपने पर और अन्य रोगियों पर इसे प्रयोग करके हमने देखा है। जीर्ण रोगों से पीड़ित रोगियों व वृद्धावस्था में होने वाले विकारों तथा दुर्बलता में तो यह गुटिका विशेष रूप से लाभप्रद रसायन सिद्ध हुई है।

रसायन औषध दो चार दिन खाने से लाभ नहीं करती। दो गोली प्रातः सायं २-३ मास तक निरन्तर खानी चाहिये। एक मास सेवन करने योग्य ५ तोला गोली के पैकिट का मूल्य केवल ५) है, पैकिंग डाक खर्च भिन्न।

पता-मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, ६०-६१, अकालीमार्केट, अमृतसर

ब्रांच—खारी बावली दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद-विज्ञान

आयुर्विदेव वितते किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्नपरकैर्भवतीह लभ्यम्
शक्तिं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ।।

वर्ष ७ | भाद्रपद २०१७ वि०, सितम्बर १९६० ई० | अंक ९

भारत सरकार का आयुर्वेद पर नया वार होने वाला है !

क्या भारत सरकार आयुर्वेद को संरक्षण देना नहीं चाहती ? यदि भारत सरकार का आयुर्वेद को संरक्षण देने का इरादा होता तो जिस तरह इन १२ वर्षों में उसने सारे भारत में अलोपैथी की शिक्षा के लिए लगभग २२-२३ मेडिकल कालेज खोले हैं उसके साथ ही एक दो आयुर्वेदिक कालेज भी खोल सकती थी और आयुर्वेद की शिक्षा का स्तर उठाने के लिए नये सिरे से पाठ्य ग्रन्थों का निर्माण करा सकती थी। और वह चाहती तो आयुर्वेद को विज्ञान सम्मत बनाने का प्रयत्न कर सकती थी, किन्तु उसने कुछ भी नहीं किया न करने का इरादा रखती हैं। प्रत्युत वह आयुर्वेद को समाप्त करने का विचार रखती है इसीलिये आयुर्वेदज्ञों पर नित्य नये प्रतिबन्ध लगाने की योजना बनाती रहती है। आसव बनाने पर उसने प्रतिबन्ध लगाया, अफीम, भांग आदि द्रव्यों जो आयुर्वेदज्ञ औषधियों में डाला करते थे उनके उपयोग पर भी उसने प्रतिबन्ध लगाया। अब वैद्य इन्हें स्वतन्त्रता के साथ उपयोग में नहीं ला सकते हैं।

वैद्यों के लिए भारत सरकार कुछ और कठिनाई उत्पन्न करना चाहती हैं। विश्वस्त रूप से ज्ञात हुआ है कि भारत सरकार ने राज्य सरकारों को एक सर्क्यूलर भेजा है उस सरक्यूलर में राज्यों से पूछा गया है "क्या आयुर्वेदिक औषधियों को ड्रग एक्ट के आधीन करके उन पर अलोपैथी जैसे प्रतिबन्ध लागू करना उचित होगा ?" यदि राज्य सरकारों ने भारत सरकार की हाँ में हाँ मिला दी तो वैद्यों पर एक और नई मुसीबत खड़ी हो जाएगी। इससे उन थोड़े से वैद्यों को तो लाभ होगा जो सरकार द्वारा मान्य कालेजों से प्रमाणित हैं। अन्य समस्त वैद्य इन आयुर्वेदिक औषधियों के उपयोग से वंचित हो जायेंगे जो कालेजों से प्रमाणित नहीं। इससे लाखों वैद्य बेकार हो जायेंगे। और उन्हें दूसरा धन्धा ढूंढना होगा। इनका स्थान फिर धीरे २ डाक्टरों के हाथ पहुँचता रहेगा। इस तरह वैद्यों की संख्या नगण्य रह जायेगी। ड्रग एक्ट के आधीन जो वैद्य आ जायेंगे वे अलोपैथी की औषध फिर बिना रोक टोक के प्रयोग कर सकेंगे। इस तरह भारत सरकार आयुर्वेद को सीमित करती हुई १० वर्ष के भीतर इसे समाप्त कर देगी ऐसे कुछ लक्षण दिखाई दे रहे हैं।

इस समय भारत सरकार जो चाहे कर सकती है

वैद्य स्वयं तो कुछ करने योग्य नहीं, किन्तु आयुर्वेद सम्बन्धी विषय में सरकार का हस्तक्षेप भी बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं। यदि भारत सरकार इसमें हस्तक्षेप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करे तो यह विरोध के लिए तैयार हो जाते हैं। वैद्य समझते हैं कि यह हमारे व्यवसाय में हस्तक्षेप है। किन्तु ऐसा समझना भूल है। आयुर्वेदिक चिकित्सा का सम्बन्ध जन समाज के स्वास्थ्य से है। स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों में हस्तक्षेप सरकार के विधान द्वारा विहित है। इसीलिए तो स्वास्थ्य मन्त्रालय का एक भिन्न कार्यालय सरकार के द्वारा स्थापित है। और उस पर देश के स्वास्थ्य रक्षा की समस्त जुम्मेवारी है। यदि सरकार चाहती कि आयुर्वेद समुन्नत हो तो इसके लिए विधान बना सकती थी और उस विधान में यह व्यवस्था कर सकती थी कि विद्यमान समय में आयुर्वेद का स्वरूप कैसा हो और उसके शिक्षा ग्रन्थ कैसे बनें? जिस तरह वह इस समय हिन्दूओं के विरोध करने पर भी हिन्दू पब्लिक ट्रस्ट बना कर उसे इसी संसद के अधिवेशन में कानून का रूप देने के लिये कटिबद्ध हो रही है और वह अनेकों धार्मिक संस्थाओं के द्वारा विरोध करने पर भी उसे पास कराने पर तुली दिखाई देती है. इसी तरह यदि वह आयुर्वेद को संरक्षण देना चाहती तो उस की इस इच्छा में कोई बाधा नहीं डाल सकता था। क्योंकि लोकसभा और राज्य सभा में उसका बहुमत है।

केन्द्रीय सरकार ड्रग ऐक्ट संशोधन बिल पेश कर रही है। १० अगस्त को राज्य सभा में स्वास्थ्य मन्त्री श्री करमरकरजी ने बतलाया कि केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों के साथ परामर्श करके सभी प्रकार की औषधियों के निर्माण पर नियन्त्रण करने का एक बिल पेश करने का इरादा रखती है।

वह सन् १९४० के ड्रग एक्ट के संशोधन विधेयक पर हुई बहस का उत्तर दे रहे थे। उन्होंने बताया कि पेश करने का प्रस्ताव स्वास्थ्य मन्त्रियों की केन्द्रीय परिषद की आगामी बैठक में भी रखा जा रहा है। विधेयक बिना किसी संशोधन के स्वीकार कर लिया गया।

बहस में भाग लेने वाले अधिकांश सदस्यों ने मांग की थी कि आयुर्वेद यूनानी व होमियोपैथिक सभी प्रकार की दवाइयों के निर्माण पर नियन्त्रण की व्यवस्था होनी चाहिए।

बिल में सरकार को दवाई के निरीक्षण करने के लिये इन्सपैक्टर नियुक्त करने का अधिकार दिया गया है। तथा खराब दवाई बनाने या बेचने वाले के लिए कम से कम एक वर्ष की कैद और जुर्माने की व्यवस्था है। श्री करमरकर जी ने यह भी बताया कि यह बिल स्वास्थ्य मन्त्रियों की केन्द्रीय परिषद तथा लोक सभा की प्राक्कलन समिति की सिफारिशों के मुताबिक बनाया गया है और इसको लेकर राज्य सरकारों व केन्द्रीय सरकार के बीच संघर्ष होने की कोई सम्भावना नहीं।

यह विधेयक आयुर्वेद और यूनानी को समाप्त कर देगा। वह किस तरह? सुनिए। आयुर्वेदिक व यूनानी औषधियों में जो कच्ची वनस्पतियां पड़ती हैं उनमें से चौथाई के करीब बाहर से आती हैं जैसे पारा, सिंगरफ, हरताल, मूँगा सीप, सुरमा, कपूर; पिपरमेंट, दारचीनी, लौंग, जायफल, जावित्री आदि अनेकों चीजें हैं। विदेश से आने वाली इन चीजों पर सरकार ने कंट्रौल कर रखा है और आयात निर्यात नीति के अनुसार सरकार इनको मंगाने के लाइसेंस कुछ व्यक्तियों को ही देती है इसमें चोर बाजारी इतनी बढ़ गई है और व्यापारियों ने इन्हें रोक कर इनकी कीमतें इतनी ज्यादा बढ़ा दी हैं कि बाजार में यह चौगुने कीमत पर बिक रही हैं इसी से बाजार में इनका अभाव बना रहता है। तभी तो इन चीजों में मिलावट खूब हो रही है जो भी कच्ची औषध बाजार में नहीं मिलती वही चीज नकली बन कर बाजार में आ जाती हैं।

भारत सरकार यदि इन कच्चे औषध द्रव्यों पर नियन्त्रण करती और ऐसा सख्त कानून बनाती कि नकली वनस्पतियों को बेचने पर उन्हें दंड दिया जाता तो बाजार में अच्छी और उत्तम दवाईयां मिल सकतीं। किन्तु भारत सरकार ने नकली दवाइयों के रोक थाम के जो कानून बनाये हैं वह बहुत शिथिल हैं। दूसरे उन पर किसी भी राज्य में कोई भी अमल नहीं हो रहा। स्वास्थ्य डिपार्टमेंट की ओर से जो इन्सपेक्टर नियुक्त हुये हैं उनके सम्बन्ध उन नकली दवा बेचने वालों से खूब सांठ गांठ के हैं। और उनका सदा मुँह मीठा होता रहने के कारण इस पर कुछ भी अमल नहीं हो रहा।

इस समय जो भी औषध मार्केट में समाप्त हो जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है वही दुकानदारों के द्वारा नकली बाजार में आ जाती है और असली के अभाव में वही बिका करती है। इस समय एक दो नहीं सैंकड़ों चीजें बाजार में नकली बिक रही हैं जैसे—सफेद जीरा, काला जीरा, सोंठ, मिर्चकाली, मिर्च सफेद, सिलारस, सकमूनियाँ, कस्तूरी, केसर, हींग, मुश्कतरामसी, लोबान.अशोकछाल, दालचीनी, पीपर, रेवंदउसारा, हल्दी, जायफल, जावत्री, कुष्ठ, पुष्करमुल, कहरबा, जुन्दबेदस्तर, शीरखिस्त, बनफसापत्र आदि हजारों चीजें हैं जब सरकार इन नकली चीजों की बिक्री पर नियन्त्रण नहीं करती तो आयुर्वेदिक यूनानी औषध कैसे स्टैन्डर्ड बन सकती हैं।

यदि भारत सरकार का इरादा आयुर्वेद यूनानी के संरक्षण का होता तो सबसे पहले वह नकली दवाइयों की बिक्री पर रोक लगाकर इनको बन्द करती और आयुर्वेदिक यूनानी में काम आने वाली समस्त दवाइयों को टेस्ट कराकर उसके असली और नकली की परीक्षा का साधन जुटाती और ऐसी स्टैन्डर्ड औषधियों का एक मेटीरिया मेडिका बनवाती। तत्पश्चात उन असली औषधियों से तैयार होने वाली दवाइयों का किसी प्रयोग शाला में परीक्षण करा कर उनका एक स्टेन्डर्ड नियत कर उनका एक फार्माकोपिया तैयार कराती। तब आयुर्वेदिक यूनानी की औषधियों को ड्रग एक्ट के आधीन लेकर उस पर नियन्त्रण करती तो यह दोनों चिकित्सा पद्धतियां जीवित रहतीं। इस समय न तो आयुर्वेदिक औषधियां स्टैन्डर्ड हैं न यूनानी की। एलोपैथी की समस्त औषधियाँ स्टैंडर्ड हो रही हैं यदि उन्हें उक्त एक्ट के आधीन ले लिया गया तो यह समस्त औषधियाँ स्टैन्डर्ड न होने के कारण इनको बनाने से और इनको उपयोग करने से रोका जा सकेगा। क्योंकि इस एक्ट के आधीन वही औषध उपयोग में लाई जा सकती है जो स्टैन्डर्ड हो चुकी हो। इसका अर्थ यही है कि जिस दिन सरकार ने यह एक्ट पास कर दिया उसी दिन से आयुर्वेदिक और यूनानी औषधियां अप्रमाणिक हो जायेंगी और इनका व्यवहार रोक दिया जायगा इस तरह लाखों वैद्य बेकार हो जायेंगे और देश में बेकारी ही नहीं बढ़ेगी प्रत्युत देश के स्वास्थ्य को संभालना सरकार के लिये मुश्किल हो जायगा। ग्रामों में जहां एक भी डाक्टर नहीं वहां बीमार वे मौत मरा करेंगे या फिर वे बीमार शहरों की तरफ भागेंगे। उस समय जो अव्यवस्था और डाक्टरों के द्वारा लूट का बाजार गर्म होगा वह अवर्णनीय होगा। क्या सरकार के स्वास्थ्य अधिकारियों ने इस पहलू पर विचार किया है?

GURUKULA KANGRI LIBRARY HARIDWAR

स्वागत समिति

४३वाँ अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन दिल्ली

कार्यालय—श्री मारवाड़ी औषधालय, किनारी बाजार, दिल्ली

माननीय महानुभाव ! दि० २९-६-१९६०

हमें यह सूचित करते हुए परम हर्ष होता है कि अ. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन का चिरप्रतीक्षित ४३वां वार्षिक अधिवेशन, जोकि गत दो वर्ष से स्थगित था, अब दि. २४, २५ तथा २६ दिसम्बर १९६० को दिल्ली में होगा। यह निर्णय दि० १५-६-६० को स्वागताध्यक्ष कविराज श्री वैद्यनाथ सरकार के निवास स्थान पर संपन्न स्वागत समिति की कार्यकारिणी समिति तथा महासम्मेलन स्थाई समिति द्वारा गठित तिथि निर्धारण उप-समिति की सम्मिलित बैठक में किया गया है। इस बैठक में महासम्मेलनाध्यक्ष कविराज श्री अनन्त त्रिपाठी शर्मा एव प्रधान मन्त्री श्री वामन राव दीनानाथ वैद्य की उपस्थिति उल्लेखनीय है।

स्वागत समिति के सदस्यों एवं कार्यकर्ताओं से सानुरोध प्रार्थना है कि तन-मन-धन से अधिवेशन की सफलता के लिये प्रयत्नशील होकर आयुर्वेदोन्नति के इस पुण्य कार्य में सहयोग के भागी बनें।

-: सहयोगाभिलाषी :-

कविराज वैद्यनाथ सरकार — स्वागताध्यक्ष
वैद्य ओंकार प्रसाद शर्मा — स्वागत मन्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूत्र-परीक्षा

हम अपने शरीर के भीतर तीन प्रकार के मल उत्पन्न करते रहते हैं (१) वायवीय (२) द्रवीय (३) सघनीय। जो वायुरूप हमारे शरीर में मल बनते हैं उसे तो हम त्वचा और फुफ्फुसों से बाहर निकालते रहते हैं। जो द्रवरूप मल बनता है वह प्रस्वेद और मूत्र मार्ग से बाहर निकालते हैं। जो सघन गाढ़े मल होते हैं उसे मल मार्ग से बाहर करते रहते हैं। वायवीय मल को छोड़ कर बाकी दोनों मलों की स्थिति, न्यूनाधिकता, उनके वर्ण उनमें विद्यमान द्रव्यों के द्वारा शरीर के स्वास्थ्य व रोग की स्थिति का बहुत कुछ ज्ञान होता है। इसका पता पूर्वकाल के चिकित्सकों को बहुत न्यून था। बाद की प्रायोगिक खोजों से इस बात का पता चला कि हम सब के शरीर में जो क्षय-पूर्ति के व्यापार चला करते हैं उन व्यापारों में जो आंतरिक मल बना करते हैं उनमें से मूत्र एक ऐसा मल है जिसकी यदि सही सही परीक्षा कर लें तो शरीर के भीतर अनेकों हो रही विकृतियों का पता लग सकता है। क्योंकि देखा जाता है जो शरीर के चलते व्यापार में कोई विकृति उत्पन्न हो जाती है वह मूत्र, मल द्वारा निकलने वाले द्रव्यों की स्थिति से जानी जाती है। इन परिवर्तनीय द्रव्यों का हमें सही ज्ञान हो जायं तो हमें उन द्रव्यों के सहारे शरीर में हो रही विकृति का भी बहुत कुछ ज्ञान हो जाता है। तभी इस बात की परीक्षा के साधन ढूंढ़े जाने लगे। उसी के परिणाम स्वरूप मूत्र-परीक्षा के द्वारा शरीर में हो रही विकृति का बहुत कुछ ज्ञान होने लगा। मूत्र की परीक्षा तीन प्रकार से ली जाने लगी (१) भौतिक (२) रासायनिक (३) अण्वीक्ष। बिना किसी यान्त्रिक साधनों के केवल हम मूत्र को अपनी ज्ञानेन्द्रियों के सहारे उसके वर्ण विभेद, न्यूनाधिक मात्रा, तेलबिन्दु निपात आदि से या उसके निक्षिप्त द्रव्यों के वर्ण से जो ज्ञान प्राप्त करते हैं वह भौतिक परीक्षा कहलाती है। आयुर्वेदज्ञों की पहुँच इस परीक्षा तक सीमित रही है। इसके पश्चात् जब रसायन शास्त्र की उन्नति हुई तो मूत्र में विद्यमान द्रव्यों को रासायनिक विधियों से संश्लेषित विश्लेषित कर देखने के साधन ज्ञात होते चले गए और इसके द्वारा इस का पता लगने लगा कि शरीर के भीतर क्षयपूर्ति व सात्म्यीकरण की जो क्रियाएं चला करती हैं उन व्यापारों में जब व्याघात आ जाता है तो मूत्र में जाने वाले द्रव्यों के अनुपात में भी अन्तर पड़ जाता है। प्रायः स्वस्थावस्था में क्या क्या द्रव्य मूत्र में निकला करते हैं इसको देखा गया। ज्ञात हुआ कि प्रत्येक मनुष्य जिसकी आयु १५—४५ के मध्य हो उसे २४ घंटे में लगभग १॥ सेर से १॥। सेर तक मूत्र उतरा करता है। इस मूत्र में किस किस द्रव्य की कितनी कितनी मात्रा होती है? इसको जब निकाला गया तो निम्नलिखित औसत मात्रा ज्ञात हुई।

मूत्र के द्रव्य

२४ घंटे के कुल मूत्र की मात्रा १५०० धान्य (Gram)
उसमें जल की मात्रा १४४० ,,
पार्थिव (Solids) द्रव्य ६०·०० ,,

जब पार्थिव द्रव्यों को विश्लेषित कर उनकी औसत मात्रा निकाली गई तो भिन्न भिन्न पार्थिव द्रव्यों की निम्न मात्रा ज्ञात हुई :—

पार्थिव द्रव्यों की मात्रा

पार्थिव द्रव्य	धान्य में
मूत्रिया (Urea)	३५·००
मूत्राम्ल (Uric acid)	०·७५
अश्वमूत्राम्ल (Hippuric acid)	०·७
स्फुरिकाम्ल (Phosphoric acid)	३·०
वलिकाम्ल (Sulphuric acid)	२·०
पवनियां (Ammonia)	०·६५
क्रव्यनीन (Creatinine)	०·६
लवणजन (Chlorine)	११·०
पांशुजम (Potassium)	२·५
सैंधजम (Sodium)	५·५
चूनजम (Calcium)	०·२६
मगनम (Magnesium)	०·२१

उक्त तालिका दर्शाती है कि मनुष्य के मूत्र में जल की मात्रा सर्वाधिक रहती है उससे उतर कर मूत्रिया की तत्पश्चात सैंधजम और लवणजन अर्थात सैंधव [illegible] की। बाकी जो चार धातुएं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताई गई हैं यह स्वतन्त्र रूप में नहीं होतीं प्रत्युत यह भी लवण क्षारों, मूत्रेत, वलिकेत, स्फुरेत के यौगिक में होती हैं।

यह मल द्रव्य कहाँ से बन कर मूत्र में आते हैं ?

अश्व मूत्राम्ल और पवनियां की उत्पत्ति अधिकतर वृक्कों में होती है। बाकी चीजें रक्त में से वृक्कों द्वारा छन कर बाहर निकाली जाती हैं जो चीजें सन्तुलन से अधिक होती हैं वही छनती है। मान लीजिए एक व्यक्ति ने कुछ दिन के लिए नमक खाना छोड़ दिया और रक्त में सैंधव लवण की मात्रा सन्तुलन स्थिति से अधिक नहीं रही तो वृक्क सैंधव लवण को छान कर नहीं निकालेंगे। इसी से स्वस्थ व्यक्तियों के मूत्र में तो २४घण्टे की इसकी मात्रा १६.५ धान्य पाई जाती है। लवण न खाने वाले के मूत्र में इसकी मात्रा घट जाती है। हम आहार में जो भी कुछ खाते है वह पचने से लेकर सात्म्यीकरण व क्षय-पूतिकरण तक उन खाद्यपेय द्रव्यों के कणों में रासायनिक परिवर्तन होते ही रहते हैं। उसी परिवर्तन काल में जो नये से नये पदार्थ शरीर के भीतर बनते हैं और रक्तस्थ होते रहते हैं उनमें से जो भी सन्तुलन सीमा से बढ़ने लगते हैं उन्हीं को वृक्क अपनी स्पर्श क्षमता से जानते रहते हैं कि किस द्रव्य की मात्रा रक्त में बढ़ रही है उसी को यह छानने लगते है। वृक्कों की इस स्पर्श-क्षमता को वृक्कदेहली कहते हैं।

एक बात और स्मरण रखना चाहिये कि शरीर की क्षयपूर्ति के समय और लसीय द्रव्यों के सात्म्यीकरण के समय प्राय: उच्छिष्ट रूप में जो द्रव्य बचते या बनते हैं वे प्राय: अम्लीय स्वरूप के होते है किन्तु कभी कभी इसके विपरीत क्षारीय द्रव्यों की भी वृद्धि हो जाती है। तब वृक्क जिनकी वृद्धि देखते हैं उन्हीं को छानकर मूत्र मार्ग से बाहर निकालने का प्रयत्न करते हैं ताकि रक्त में द्रव्यों का सन्तुलन बना रहे।

अम्लीय और क्षारीय मूत्र में कौन से द्रव्य मूत्र मार्ग से बाहर निकलते हैं उनकी सूची निम्न है।

अम्लीय मूत्र में जाने वाले द्रव्य

१ मूत्राम्ल (Uric acid)
२ मूत्रेत (Urates)
३ अमणिभ मूत्रेत (Amorphous Urates)
४ चूकेत (Oxalates)
५ सैंधाम्ल मूत्रेत (Acid Soda Urates)
६ अश्वमूत्राम्ल (Hippuric acid)
७ सिकताइन (Cystine)
८ पाण्डुरीन (Xanthin)
९ पनीरिन (Tyrosine)
१० शुभ्रोन (Leucine)

क्षारीयमूत्र में जाने वाले द्रव्य

१ चून स्फुरेत व मग्न स्फुरेत (Calcium & Magnesium Phosphates)
२ पवनिया स्फुरेत (Ammonium Phosphates)
३ पवनियां मग्न स्फुरेत (Ammonium Magnesium Phosphates)
४ पवनियां मूत्रेत (Ammonium Urates)
५ कज्जलेत (Carbonates)
६ कुलस्तिराल (Cholesterol)

स्वस्थ व्यक्ति के रक्त की सदा ही प्रतिक्रिया यत्किंचित क्षारीय रहती है। किन्तु कभी कभी किसी व्याधि के होने पर उसकी क्षारीयता कम हो जाती है। इस प्रकार जब रक्त में अम्लता बढ़ जाती है तो मूत्र भी अम्लीय हो जाता है और जब तक उसका अम्लत्व न घट जाय मूत्र अम्लीय बना रहता है और रोगों की स्थिति के अनुसार उपरोक्त द्रव्यों में से कोई न कोई मूत्र में अधिक आता रहता है। इससे रोग ज्ञान में अत्यन्त सहायता मिलती है। किन्तु जो पदार्थ मूत्र में सदैव निकलते रहते हैं और उनकी न्यूनाधिकता रुग्ण काल में जब देखी जाती है तो उन्हें किस तरह देखा और जाना गया ? इसकी परीक्षा का कुछ वर्णन देना वैद्यों के लाभ की बात होगी। मूत्र में जो द्रव्य निकला करते हैं उनमें से एक सात्म्यीकरण के समय प्रादुर्भूत होते हैं। दूसरे क्षयपूर्ति के समय उत्पन्न होने वाले या क्षयपूर्ति में न उपयोजित होने के कारण जब उनकी मात्रा सन्तुलन से बढ़ जाती है तब जाने लगते हैं या किसी विकृति या विकरों ओजों के न्यूनाधिक हो जाने के कारण जब आगे के द्रव्य ठीक नहीं बनते तो रक्तस्थ द्रव्यों का सन्तुलन बिगड़ जाता है या फिर वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्रा से अधिक उत्पन्न होने लगते हैं या न्यून। जो अधिक होते हैं वे द्रव्य मूत्र मार्ग से बाहर कर दिये जाते हैं। उनको रासायनिक रचना की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया गया है (१) पवनीय (२) अपवनीय।

पवनीय द्रव्यों की परीक्षा

जितना भी पवन (Nitrogen) पवनीय यौगिकों के रूप में मूत्र द्वारा निकलता है वह सब प्रस्रजन (Protein) के सात्म्यीकरण काल में उत्पन्न होता है। हिसाब से देखा गया है कि मूत्रस्थ पवन के एक भाग को उत्पन्न करने के लिए ६.२५ भाग प्रस्रजन का शरीर में उपयोग होता है। जितने भी हम प्रस्रजनीय द्रव्य खाते हैं वे सारे के सारे विश्लेषित होकर सात्म्यीकरण काल में उसका बहुत सा अंश पवनीय यौगिकों में बदल जाता है और वही मूत्र द्वारा बाहर निकलता है। मान लो यदि हम १०० धान्य प्रस्रजनीय द्रव्यों का सेवन करें तो उससे ३० धान्य मूत्रिया और ५ धान्य पवनियां, मूत्राम्ल और क्रव्यनीन आदि द्रव्य उत्पन्न होंगे। इन सभी द्रव्यों में लगभग १५ धान्य के पवन की कुल मात्रा रहती है।

मूत्र में उपस्थित पवनीय यौगिकों का मान

मूत्रिया	८४ प्रतिशत से		८७ प्रतिशत तक		
पवनियां के यौगिक	२	,,	,, ५	,,	,,
मूत्राम्ल	१	,,	,, ३	,,	,,
क्रव्यनीन मूत्रीन (Purin) आदि द्रव्य	७	,,	,, १०	,,	,,

स्वस्थावस्था में साधारण भोजन से प्रति २४ घंटे में १५-२० धान्य पवन मूत्र मार्ग से निकला करता है। किन्तु जब भोजन में प्रस्रजन की मात्रा बढ़ जाय तो मूत्र में मूत्रिया आदि की मात्रा भी बढ़ जाती है। प्रस्रजन जब आहार में घट जाय तो मूत्र में उक्त पदार्थों की मात्रा घट जाती है।

मूत्र में समस्त पवन की मात्रा को जानने के लिए कई प्रकार से इसको जानने की विधियों का आविष्कार हो चुका है किन्तु वे सब विधियां बहुत जटिल होने से वैद्यों के समझ में तब तक आना कठिन है जब तक विज्ञान और उच्च गणित को न पढ़ें। साधारणतया मूत्रिया को जानने की निम्न विधि व्यवहार में लाई जाती है।

मूत्रिया की परीक्षा

मूत्र के कुछ बूंद काच पट्टिका (Slide) पर टपका दें उस बूंद पर पवनाम्ल (Nitric acid) की एक बूंद टपका दें और मन्द २ ज्वाला पर उसका जल उड़ावें। पानी के सूख जाने पर मूत्रिया पवनेत (Urea Nitrate) के मणिभीय रवे चमक उठेंगे। मूत्रिया को पवन में बदल कर भी उसकी मात्रा को जिरार्डस यूरियोमीटर से सही जान सकते हैं।

पवनियाँ

साधारण आहार लेने से मूत्र में प्रायः पवनियां की मात्रा आधे से १ धान्य तक निकला करती है। इससे विश्लेषित पवन की कुल मात्रा २ से ५ प्रतिशत तक रहती है। जब खटाई, अचार खट्टे फल आदि आहार के साथ अधिक खाये जाएं तो मूत्र में पवनियां की मात्रा बढ़ जाती है। अर्थात रक्त में अम्लत्व बढ़ने पर मूत्र में पवनियां की मात्रा बढ़ जाती है। शरीर में पवनियां की उत्पत्ति पवनाम्लों (Amino acid) से होती है पवनाम्ल प्रस्रजन के विश्लेषण से प्रादुर्भूत होते हैं। यकृत में जाकर इन पवनाम्लों का अधिक भाग मूत्रिया व पवनियां में बदल जाता है। और उसका कुछ अंश रक्तस्थ अम्लीय पदार्थों से मिल कर लवण के रूप में परिवर्तित होता रहता है। यह पवनियां इसी लवण रूप में मूत्र के द्वारा शरीर के बाहर कर दिया जाता है। लवणों के रूप में इसकी मात्रा अहर्निश में ३ से १२ धान्य तक रहती है। इसकी न्यूनाधिकता रक्तस्थ अम्लता वृद्धि पर निर्भर है।

मूत्राम्ल की परीक्षा

मूत्र में मूत्राम्ल मूत्रेत् (Urates) यौगिकों के रूप में ही निकलता है। यह मूत्रेत् दो प्रकार के होते हैं। (१) उदासीन (२) अम्लीय। उदासीन मूत्रेत् तो सदा मूत्र में विलय रहते हैं। अम्लीयों की यदि वृद्धि हो जाय तो वह मूत्र को शीशी में रखने पर प्रक्षिप्त होने लगते हैं। तब उसके रवे पिसे हुए लाल मिर्च के रूप में नीचे बैठे दिखाई देते हैं। इसके रवों की पहचान अण्वीक्ष यन्त्र से बड़ी आसानी से हो जाती है। यदि मूत्र में मूत्राम्ल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक मात्रा में हो तो फेहि्लग का विलयन वर्ण विपर्यय कर देता है अर्थात उसे प्रहसित (Reduce) कर देता है। इसकी मात्रा को निकालने की विधि विस्तृत होने से उसका वर्णन छोड़ दिया गया है।

क्रव्यनीन व देहज मूत्रीन

क्रव्यनीन का निर्माण तो कोषाओं मांसपेशियों की क्षय-पूर्ति के समय होता है यकृत में भी बनते पाई गई है। यह भी फेल्हिग विलयन को विवर्ण कर देती है। इससे इसकी पहचान होती है। इसकी मात्रा सदा ही मूत्र में स्थिर रहती है। जो एक धान्य के आस पास होती है। फुप्फुस प्रदाह, मन्थर ज्वर, हनुस्तम्भ, श्वेताणु वृद्धि, पाण्डु, यकृत व वृक्क नाश, मांसपेशी क्षीणता, पक्षाघात आदि रोगों में इसकी मात्रा घट जाती है।

देहज मूत्रीन की उत्पत्ति कोषा मींगी के क्षय काल में अर्थात कोषा के नष्ट होने पर उस समय कोषा और मींगी की मृत देह मे अधिकतर मूत्राम्ल बनता है किन्तु कुछ मात्रा उस समय मींगी के अवशेष से प्रथम एक यौगिक मींगीन (Neuclin) बनता है यही देहज मूत्रीन में बदल जाता है। यह मींगीन के कई यौगिक देखे गये हैं। जो सब देहज मूत्रीन ही कहलाते हैं। इनकी मात्रा १ से ५ प्रतिशत तक पाई जाती है। यह द्रव्य क्षय जन्य प्रक्रिया में प्रादुर्भूत होता है और किसी रोग ज्वर काल में तब बढ़ता है जब शरीर का क्षय बढ़ जाता है। इसके जानने की परीक्षाएं तो कई हैं किन्तु इसका रोगों के ज्ञानार्थ कोई महत्व नहीं।

अश्व मूत्राम्ल

यह अश्व के मूत्र में तो काफी रहता है किन्तु यत्किंचित मात्रा इसकी मनुष्य के मूत्र में भी सदा विद्यमान रहती है। जो २४ घन्टे के मूत्र में आधा धान्य से अधिक नहीं पाई जाती। काले शहतूत, खट्टे बेर, खट्टे अंगूरों के खाने से मूत्र में इसकी मात्रा बढ़ जाती है। किन्तु किसी रोग में यह घटते बढ़ते नहीं पाया जाता इसलिये इसकी उपस्थिति स्वाभाविक मान कर जाँचने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता।

सितिन वर्तुलीन और सूत्रीन

मूत्र में उक्त तीनों अस्रजनें रुग्णावस्था में देखी जाती हैं। यह अस्रजनें सदा रक्त में विद्यमान रहती हैं। इनमें से सितिन और वर्तुलीन ही मूत्र में अधिक देखी जाती है।

यह रक्तस्थ अस्रजनें उस समय मूत्र में जाने लगती हैं जब तन्तुओं की सात्म्यीकरण प्रक्रिया रुकने लग जाती है या पचन व्यवस्था बिगड़ी रहती है। उस समय रक्त में यह द्रव्य सन्तुलन से अधिक हो जाते हैं तभी मूत्र में जाने लगते हैं। इसी को शुक्लोमेह (Albuminuria) कहते हैं। किसी भी प्रकार की यह अस्रजनें मूत्र में जांय सब इसी नाम से पुकारी जाती हैं। इसको देखने जांचने का आसान तरीका है। मूत्र को लेकर उसे छान स्वच्छ कर लें यदि छानने पर भी धुंधला रहे तो यह समझना चाहिये कि इसमें किसी प्रकार के जैव विद्यमान हैं। उस धुंधले मूत्र में थोड़ा सा वारारिकज्जलेत (Barium Carbonate) मिला कर परीक्षा नली में भरकर भ्रामक यन्त्र में कुछ देर घुमाने से जितने भी जैव मूत्र में विलय होते हैं सब नीचे तल पर एकत्र हो जाते हैं। फिर मूत्र को दूसरी परीक्षा नली में ऊपर २ से निकाल लें। और दो तिहाई उस परीक्षा नली में भरकर बुन्सन की लौ अथवा सामान्य स्पिरिट लैम्प पर उस मूत्र का ऊपरी हिस्सा गरम करें। सारी परीक्षा नली गरम न होने पावे। केवल ऊपर का ही मूत्र गरम हो। उसे उबाल बिन्दु तक गरम करें नली को जरा एक ओर झुकाकर गरम करना चाहिये। यदि मूत्र में किसी प्रकार की अस्रजन होगी तो ऊपर का मूत्र अस्वच्छ गदला हो जायगा। इस अस्वच्छ भाग पर दो चार बूंद तनु चुक्राम्ल (Dilute Acetic acid) के डाल दें यदि वह अस्वच्छता नष्ट हो जाय तो स्फुरेतों की उपस्थिति जानना चाहिये और चुक्राम्ल डालने पर अस्वच्छता स्थिर रहे तो सितिन की उपस्थिति समझना चाहिये।

दूसरी परीक्षा—परीक्षा नली में चौथाई इंच के लगभग तीव्र शोरकाम्ल (Strong Nitric acid) भर दें फिर परीक्ष्य मूत्र की एक दो बूंद टेढ़ी की हुई परीक्षा नली के सिरे पर टपकादें, ताकि वह परीक्षा नली की दीवार के साथ २ मूत्र बहकर शोरकाम्ल पर फैल जाय। नली को स्थिर रहने दें हिलने न पावे। एक आध मिनट के बाद अम्ल और मूत्र की सन्धि पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्वेत रेखा उत्पन्न हो जाय तो समझना चाहिये कि मूत्र में सितिन या वर्तुलीन विद्यमान है। यह परीक्षा इतनी अच्छी है कि मूत्र में दो सहस्रांश अस्रजन विद्यमान हो तो उसका भी पता इससे लग जाता है।

इस परीक्षा में कभी कभी अम्ल और मूत्र के सन्धि स्थल पर लाल नसवारी वर्ण की रेखा प्रकट होती है। यह मूत्र में नीलोल (Indol) की उपस्थिति का सूचक है।

तीसरी विधि— रसकपूर ४ भाग
निम्बुकाम्ल (सत) २ "
मधुरिन (Glycerin) १० भाग
परिस्रुत जल १०० "

इसका विलयन तैयार करें और शोरकाम्ल विधि से ही चौथाई इंच परीक्षा नली में भरकर उसी तरह नली पर बूंद दो बूंद मूत्र बहाकर उस विलयन पर फैलने दें। इससे भी वैसी ही रेखा उत्पन्न होगी। इस परीक्षा में ३५०,००० में १ भाग भी सितिन मूत्र में विद्यमान होगी तो भी वह सन्धि स्थल पर सफेदी की रेखा देगी। इस तरह मूत्र में अस्रजन की उपस्थिति को जानने की ६-७ विधियां हैं।

अपवनीय द्रव्यों की परीक्षा

शर्करा या मधुमेह

हम जितने भी काज्जलि द्रव्य-शर्कराएं, श्वेतसार (मांड) आदि खाते हैं वे सब पचन व्यवस्था में द्राक्षज में बदल जाते हैं। यह द्राक्षज या द्राक्ष शर्करा (ग्लूकोज) रक्त के एक हजार भाग में ६-१२ भाग तक सदा विद्यमान रहती है। हम यदि कभी अधिक मात्रा में शर्करी द्रव्य आहार में ले लें तो उक्त सन्तुलन से अधिक द्राक्षज को यकृत और पेशी तन्तु मधुजन में बदल कर संचित कर लेते हैं। आहार लेने के एक डेढ़ घटे बाद रक्त में द्राक्षज की मात्रा १५ भाग तक भी पहुंच जाती है किन्तु इतनी बढ़ने पर भी मूत्र में नहीं जाती। इसी से १५ भाग तक को वृक्क रोधन मर्यादा या वृक्क देहली माना जाता है। इससे जब रक्त में द्राक्षज की मात्रा १८ भाग तक बढ़ जाती है तब वह मूत्र में जाने लगती है। इसी को शर्करा मेह या मधुमेह कहते हैं।

मूत्र में शर्करा की परीक्षा

जब मूत्र में द्राक्षज विलय होती है तो यह शीघ्रता से ऊष्मीकृत (oxidise) हो जाता है। यदि कोई ऐसा विलयन उस मूत्र में मिला दिया जाय जो ऊष्मजन त्यागने वाला हो तो उससे द्राक्षज के अणु मिल कर शीघ्र ऊष्मीकृत हो जाते हैं। ऊष्मीकरण सदा क्वथनांक पर ही होता है ठण्डे मूत्र में नहीं। तुत्थ या नीलाथोथा हमारा ऐसी ही वस्तुओं में से है जिसके विलयन में काष्टिक सोडा मिलाने से वह नीलेथोथे का यौगिक ताम्रक ऊष्मिद (cupric oxide) बन जाता है। वह जल में अविलेय है परन्तु इसमें निम्बुयेत (tartrate) की कुछ मात्रा डाल दी जाय जिस में शर्करा विद्यमान हो तो फिर यह विलेय रहता है और इसका वर्ण नीला होता है। जब इसे किसी ऐसे मूत्र में मिला कर उबाला जाय जिसमें शर्करा हो तो इसका ताम्रक ऊष्मिद ताम्रस ऊष्मिद (cuprous oxide) में बदल जाता है। इसमें ऊष्मजन का एक अणु ताम्रक से निकल कर द्राक्षज से मिल जाता है इसी से ताम्रक से वह ताम्रस में बदल जाता है। जब ताम्रक ऊष्मिद किसी ऐसे मूत्र में मिलाकर उबालते हैं तो ताम्रक विलयन का वर्ण गहरा नीला रहता है जब इसका यौगिक बदल जाता है तो उसके साथ इसका रंग भी बदल जाता है। अब इसका वर्ण नीले से हिरमिजी रंग हो जाता है। इस विधि से मूत्र में विद्यमान द्राक्षज का शीघ्र ज्ञान हो जाता है। यह फेल्हिंग विलयन है। जो दो विलयनों के मिलाने से बनता है। वह निम्न है—

(क) फेल्हिंग विलयन

तुत्थ ३४·६४ धान्य को पीसकर परिस्रुत किये २०० सी. सी. ऊष्म जल में डालकर शीतल कर रखें। ठण्डा हो जाने पर इनमें २६५ सी.सी. परिस्रुत जल मिला कर कुल मात्रा ५०० सी. सी. का लें।

(ख) फेल्हिंग विलयन

रोशले साल्ट (Rochelle Salt) मणिभाकृति लें १८० धान्य इसको ३०० सी. सी. ऊष्म परिस्रुत जल में विलय कर लें फिर इसमें ७० धान्य शुद्ध कास्टिक सोडा डाल दें दोनों का विलयन बन जाने पर ठन्डा होने दें पुनः इसमें इतना परिस्रुत जल और मिलावें कि ५०० सी. सी. हो जाय। आवश्यकता के समय दोनों विलयनों को मिलाने पर पांशुक ताम्रक निम्बुएत का यौगिक बन जाता है जो गहरे नीले रंग का विलयन होता है। इसका आविष्कार फेल्हिग ने किया था इसी से यह परीक्षा उसी के नाम से प्रसिद्ध है।

[शेष पृष्ठ १४७ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु का कारण

बहुत से लोगों की यह धारणा है कि मृत्यु या मरना एक अवश्यम्भावी घटना है इसे रोका नहीं जा सकता। कुछ लोगों के विचार हैं जब मनुष्य की आयु पूरी हो जाती है तभी मनुष्य मरता है। क्या आयु की निश्चित अवधि होती है? यदि ऐसा होता तो पूर्व काल में बड़ी बड़ी लम्बी आयु के मनुष्यों की जो गाथाएं पुस्तकों में पढ़ने को मिलती हैं क्या वह निरी गप्प हैं? ऐसा विश्वास नहीं होता। इस समय भी हम ऐसे अनेकों व्यक्ति पाते हैं जो एक सौ वर्ष से ऊपर की आयु के हैं। रूस में तो कई प्रान्तों में १५०-१५० वर्ष की आयु के व्यक्ति विद्यमान हैं। क्या जिनकी आयु १०० वर्ष से ऊपर हो जाती है वे वास्तव में अपनी निश्चित अवधि से अधिक की उम्र के माने जाएं या यह माना जाय कि उन सबों की आयु वास्तव में लम्बी हैं।

आयुर्वेद तो आयु की कोई निश्चित अवधि निर्धारण नहीं करता। वह तो कहता है कि यदि मनुष्य नियमित आहार व्यवहार बनाये रखे और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे तो ऐसे स्वस्थ व्यक्ति की आयु बढ़ सकती है। आयुर्वेद के अनेकों कल्प ऐसे दिये हैं जिनमें इस बात का उल्लेख है कि इन कल्पों का प्रयोग करके अनेक व्यक्ति हजारों वर्षों तक जीवित रहे हैं। यदि औषधियाँ आयु को बढ़ा सकती हैं तो जीवन की अवधि निश्चित न हुई बढ़ सकती है।

आयु कैसे बढ़ सकती है?

यदि शरीर स्वस्थ रहे, संचारी व्याधियों को रोकने की क्षमता विद्यमान हो, आहार भी उत्तम हो, उनमें खाद्योजांशों की मात्रा समुचित बनी रहे, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के कार्य व्यापार समुचित स्वस्थ रूप में होते रहें तो मनुष्य की आयु निश्चित ही १०० वर्ष के ऊपर आसानी से जा सकती है। अगस्त १९५६ के आयुर्वेद विज्ञान के अंक में कायाकल्प की औषध का आविष्कार नामक लेख में हमने बतलाया है कि रूमानियां का एक डाक्टर खाद्योजांश सी में कुछ बल्य व बृंहण औषधियां मिलाकर उसने ऐसी दवा तैयार कर ली है जिसके उपयोग से अनेकों वृद्ध पुरुष फिर से युवावस्था को प्राप्त हो गये हैं।

खाद्योजांश सी का शरीर के भीतर पहुंच कर क्या प्रभाव होता है? वह किस तरह शरीर में नया जीवन फूंक देता है यह समझने वाली बात है। शरीर में व्याधि उत्पादक कोई अंग है तो वह एक मात्र अन्न प्रणाली है। हमारे अपने अनुभव की बात है कि इस अन्न प्रणाली में हम जो भी आहार के रूप में खाद्य पेय द्रव्य पहुँचाते हैं उन सबों के यौगिक तभी विच्छेदित होते हैं यदि उसमें बहिःस्रावी अनेकों पाचक रसों का उचित मिश्रण होता रहे। जिसे हम पचन क्रिया का नाम देते हैं यह वास्तव में चूल्हे पर दाल, भात पकानेवत् उदर में जाकर आहार का पचन नहीं होता। इस सिद्धान्त को तो हमें इस कारण छोड़ देना चाहिये क्योंकि यह भ्रमोत्पादक है। पेट में वस्तुएं पकती नहीं, प्रत्युत उनके यौगिकों का विश्लेषण होता है। जो खाद्य द्रव्य निगूढ़ यौगिक में बँधे होते हैं वह विकरों के प्रभाव से टूटते हैं और वह सरल यौगिकों में बदलते चले जाते हैं। इसी को हम पचन का नाम देते हैं। वास्तव में यह पचन नहीं है। पचन का अर्थ है उस वस्तु का गल जाना। किन्तु यहां आहार गलता नहीं, प्रत्युत विश्लेषित होता है। विश्लेषण और पचन दोनों क्रियाएं भिन्न भिन्न हैं। जब हम स्वाद के मारे आहारीय द्रव्य अधिक खा लेते हैं और वह आमाशय में इतनी अधिक मात्रा में भर जाता है कि आमाशय की क्रिया को रोक देता है जिसके कारण वह पूरी तरह से नहीं चलती, तब वह आहारीय द्रव्य आमाशय में अधिक देर तक रुके रहते हैं और उनसे विकर भी पूरी तरह सब ओर नहीं पहुँच पाते। इसीलिये आहार का बहुत सा भाग विश्लेषित होने से रह जाता है। ऐसी ही वस्तुएं जब विश्लेषित नहीं होतीं तो वह आमाशय में चिपकने लग जाती हैं ऐसी अपक्व वस्तुओं का शोषण भी नहीं होता। किन्तु यह नहीं समझना चाहिये कि वह विकृत द्रव्य उसी तरह के बने रहते होंगे ऐसी बात नहीं है। उन विकृत आहारीय द्रव्यों में और भी अग्राह्य रूप की ऐसी विकृति होने लग जाती जो शरीर के लिये हानिकारक होती है। ऐसे ही द्रव्य केवल आमाशय में ही चिपक कर नहीं रह जाते प्रत्युत क्षुद्रान्त्र, बृहदन्त्र आदि में भी चिपक कर रह जाते हैं। जिस तरह चलती हुई मशीनों में कुछ न कुछ मैल जमती रहती है उसी तरह इस अन्न प्रणाली में भी आहारीय द्रव्यों के पूर्णतया न पचने के कारण उनके अवशिष्ट द्रव्य आंतों में चिपक कर रह जाते हैं। यही चिपके हुये द्रव्य पच्यमान लेहों को शोषित नहीं होने देते। जब शोषण घट जाता है तो शरीर को पूरी तरह पोषण सामग्री नहीं मिलती इससे फिर शरीर निर्बल होने लग जाता है। यही निर्बलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धीरे धीरे बढ़ कर शरीर को असमर्थ करती चली जाती है। इसी असमर्थता से जब शरीर जर्जरित होता है वही बुढ़ापे के रूप में हमारे सामने आता है। इसी तरह कोई रोग जब लग जाता है वह भी एकाएक शरीर को निर्बल कर के असमर्थ बना देता है यह असमर्थता की जब निवृत्ति नहीं होती तो ऐसे ही व्यक्ति कालकवलित हो जाते हैं।

हमारा अपना अनुभव है कि मनुष्य के अन्त्राशय में धीरे धीरे मैल संचित होती रहती है यही मैल जब शोषण में बाधा डालती है तब शरीर को पूरा पोषण नहीं मिलता। इसी से वह निर्बल होता चला जाता है। शरीर को जब पूरा आहार नहीं मिलता तो कोषाएं मृत होती चली जाती हैं इसीसे शरीर पर झुरियां पड़ जाती हैं, बाल सफेद हो जाते हैं। और जब वह व्यक्ति अधिक असमर्थ हो जाता है तभी अथवा किसी अंग में विकृति के बढ़ जाने पर वह अंग जब काम करना बन्द कर देता है तो अन्य अंग भी उसी तरह काम करना बन्द देते हैं जैसे एक मशीन। अनेक बार आप देखते हैं कि मशीन का जब एक पुर्जा खराब हो जाता है तो सारी मशीन रुक जाती है। यही बात शरीर में होती है। मृत्यु होने पर शरीर की अन्य कोषाएं उस समय नहीं मरती, वह बहुत देर के बाद मरा करती हैं, जब उनके आस पास के रक्त का संचार रुक जाता है।

प्राय: सबसे अधिक विकृति कहीं होती है और जो जरा व मृत्यु में कारण बनती है वह अन्त्राशय में ही प्रधानत: होती है। अन्त्राशय की उपमा रसोई घर से दी जा सकती है। जहां भोजन तैयार करते समय उसमें व्यवहार के लिये इस्तेमाल में आने वाले बर्तन सामान स्थान सब ही मलिन हो जाते हैं। किन्तु उसकी नित्य सफाई न होती रहे तो रसोई का स्थान बैठने के योग्य नहीं रह जाता। हमारे शरीर में यह रसोई स्थान शायद ही कभी साफ होता हो। वैद्य कहेंगे कि रेचन दे देने पर तो उदर साफ हो जाता है, ऐसा समझना भूल है। रेचन से तो ऊपर का मल ही निकला करता हैं जो चीजें अन्त्राशय में चिपक जाती हैं वह साधारण रेचन से नहीं निकला करतीं। उनको दूर करने का तो यही तरीका है कि या तो काफी दिन लंघन कराया जाय और साथ में नित्य ही मृदु रेचन या बस्तिकर्म कराते रहें तो वह मल धीरे धीरे छुटता है और देखा गया है कि १५-१५, २०-२० दिन तक उदरदरी को शुद्ध करने का प्रयत्न करने पर कठिनता से कोष्ठ शोधन होता है।

१९४७ में जब मैं स्वयं आमवात के कष्ट से घिर गया और चिकित्सा से कोई लाभ न मिलने पर कोष्ठ शोधन का निश्चय किया तो लंघन और कोष्ठ शोधन जब करने लगा तो १५-१६ दिन के बाद वृहदन्त्र में से लम्बे लम्बे रेशे की आकृति का ऐसा जमा हुआ पदार्थ छुटने लगा कि उसके छुटने के साथ ही आमवात की पीड़ा में लाभ होता चला गया। लगातार दो मास लंघन और बस्तिकर्म करते रहने से तब जाकर कोष्ठ शुद्ध हुआ। उसके बाद शरीर में इतनी तेजी से शक्ति बढ़ने लगी कि मैं इसका कोई अन्दाजा न लगा सका। १५-२० दिन में शरीर पहले से अधिक हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ हो गया। थोड़े दिन के बाद ऐसा अनुभव हुआ कि मेरा जीवन काल बढ़ गया है। यह बात सच निकली। आज एक पूरा युग व्यतीत हो गया है अब तक मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा ही नहीं प्रत्युत पूर्ण स्वस्थ हैं और जैसे युवावस्था में मैं काम करता था और थकता न था आज ७३ वर्ष की अवस्था में हूं किन्तु युवावस्था के तुल्य ही सारे काम करता हूं। अन्त्राशय के शोधन से मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि इसके शुद्ध हो जाने पर खाद्य द्रव्यों का पचन और शोषण बढ़ जाता है। और उदर के शुद्ध रहने पर अन्त्राशय व मलाशय में जो अनेक प्रकार के कीटाणुओं का सदा वास बना रहता था एक बार तो वे पूर्णतया निकल गये। यह ठीक है कि शरीर या अन्त्राशय जैवों से रहित कभी नहीं होता। किन्तु मुझे अनुभव हुआ कि काफी दिनों तक पेट के अन्दर अपानवायु नहीं बनी। जब खाद्य पेय के द्वारा पुन: नये सिरे से कीटाणुओं का प्रवेश हुआ और वे वृहदन्त्र में बढ़ गये तब फिर अपानवायु का सरना आरम्भ हो गया। जब तक वृहदन्त्र में कीटाणु पुन: स्थान नहीं बना पाए थे। तब तक मल में मल की गन्ध भी न होने के बराबर थी। जब कीटाणुओं की वृद्धि हुई तो मल में फिर गन्ध की मात्रा बढ़ गई। इससे पता चला कि अनेक प्रकार की गन्ध पूर्ण वायुओं का सर्जन यह कीटाणु जब आहार भक्षण करते हैं उस समय उनके आहारीय द्रव्यों के विश्लेषण से इन वायुओं की उत्पत्ति होती है। यह वायु भी रक्त में प्रवेश करके उसे दूषित कर देती हैं और कोषाओं पर बुरा प्रभाव डालती है।

कल्पकारी औषधियां भी नव जीवन ला देती है

आयुर्वेद में अनेकों कल्पों का उल्लेख है, जिनके सेवन से कहते हैं कि पूर्वकाल में लोगों की अवस्था बढ़ गई थी। रूमानिया के डाक्टर अन्नाअसलात ने खाद्योजांश सी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से संयुक्त कुछ औषधियां तैयार की हैं। उनके उपयोग से अनेकों व्यक्तियों के शरीर पुनः वृद्ध से युवावस्था में परिवर्तित हो गये हैं। यह खाद्योजांश सी किस तरह नव जीवन प्रदान करती है? खोजों से ज्ञात हुआ है कि यह द्रव्य जब शरीर के भीतर पहुँचता है तो कोषाओं की रासायनिक क्रियामें भाग लेता है। और कोषाओं के श्लिषजन (कोलेजन) नामक द्रव्य को उत्पन्न करने में सहायता करता है। यह श्लिषजन वह संयोजक द्रव्य है जो एक कोषा को दूसरे कोषा से संलग्नित रखता है। इसी के कारण एक कोषा दूसरे से जुड़ी रहती है। दूसरे यह समस्त कोषाओं को समुचित क्रियाशील बनाये रखने में सहायता करता है। इसकी उपस्थिति के समय कोषा में नव निर्माण का काम खूब चला करता है। यही नहीं यह भी देखा गया है कि इसकी उपस्थिति में रक्त निर्माणकारी मज्जा कोषाओं को रक्त निर्माण के लिये पूर्ण उत्तेजना मिलती है। इसका अर्थ यह है कि खाद्योजांश सी जब शरीर की निर्माण क्रिया रुक जाती है उस समय शरीर कोषाओं को सक्रिय बनाने में और नव निर्माण में पूरा सहयोग देता है। इसीसे शरीर में सक्रियता की वृद्धि हो जाती है। सम्भव है इसमें अन्य खाद्योजांश भी सहायक हों। देखा गया है कि खाद्योजांश ए और खाद्योजांश बी$_{१}$, बी$_{२}$ बी$_{१२}$ व डी$_{२}$ आदि भी समुचित मात्रा में पहुँचते रहें तो आहार का पूर्णतया शोषण होता है। जब शोषण बढ़ जाता है तब वृहदन्त्र में लगी हुई पुरानी वस्तुएं भी छुट जाती हैं। और अन्त्रकला की सक्रियता बढ़ने पर अन्त्रांकुरों में लगी व चिपटी हुई वस्तुएं छुट जाती हैं। जब शरीर के क्रिया व्यापार बढ़ जाते हैं और नव निर्माण का काम होने लगता है उस स्थिति में शरीर की निर्बलता दूर हो जाती है और शरीर की झुरियां आदि सब मिट जाती हैं। इसीसे मनुष्य की आयु बढ़ जाती है। और मनुष्य अधिक समय तक जीवित रह कर मृत्यु से बचा रहता है।

[शेष पृष्ठ १४४ का]

परीक्षा के समय दो बातों का ध्यान रखें (१) मूत्र ताजा हो (२) मूत्र में सितिन विद्यमान न हो। यदि सितिन की मात्रा हो तो उस मूत्र में २-४ बूंद चुक्राम्ल की डाल कर उबाल लेने पर सितिन का थक्का बन जाता है उसे छानकर भिन्न कर लें फिर परीक्षा करें। मूत्र में द्राक्षज की मात्रा अधिक हो तो मूत्र का वर्ण हिरमिजी न होकर नसवारी हो जाता है। उक्त दोनों विलयन ताजे बनाने चाहिये पुराने काम नहीं देते।

दूसरी बेनिडिक्टस परीक्षा

तुत्थ रवादार — १७.३ धान्य

सैंध निम्बूयेत (Sodium Citrate) १७०.० धान्य

अन उदिद सैंध कज्जल (Anhydrous Sodi Carb) १०० धान्य

जल — १०० सी. सी.

अथवा नं० २

सैंध कज्जलेत रवादार — २०० धान्य

तुत्थ रवादार — १७.३ धान्य

पहले तुत्थ को १५० सी. सी. परिस्नुत जल में विलय कर लें, फिर चाहे उपरोक्त दोनों चीजों का इलहदा इलहदा ५०० सी. सी. परिस्नुत जल में विलय बना हो। इन दोनों को मिलाने पर फिर उसमें तुत्थ विलयन डालें अथवा नं० २ का सैंध कज्जलेत तुत्थ विलयन में मिलाकर इन दोनों योगों में इलहदा इलहदा इतना परिस्नुत जल और डालें कि इसका विलयन हजार सी. सी. बन जाय। इन दोनों योगों में से कोई योग लेकर उसका घोल परीक्षा नली में ५-१० सी.सी. भर कर उसमें १०-१५ बूंदें परीक्ष्य मूत्र की डाल कर उसे उबालें। यदि मूत्र में द्राक्षज की मात्रा विद्यमान होगी तो लाल, पीला, हरा किसी वर्ण का निक्षेप उस विलयन में नीचे बैठ जायगा। यह परीक्षा प्रथम परीक्षा से अधिक विश्वसनीय है।

तीसरी परीक्षा नाई लैण्डर्ज विलयन

कास्टिक सोडा — १० धान्य

प्रथम इसे १०० सी. सी. परिस्नुत जल में मिलाकर गरम करें जब विलयन बन जाय इसमें सैंध पांशु निंबुयेत (Soda Potassium Tartarate) ४ धान्य और विस्मिथ सब नाइट्रेट दो धान्य। यह दोनों चीजें उक्त विलयन में डाल कर उसे अंधेरे स्थान में छान कर नीली शीशी में भर कर अंधेरे स्थान में प्रकाश से बचाकर रख लें यह विलयन १० भाग परीक्ष्य मूत्र १ भाग दोनों को मिलाकर २-३ मिनट तक उबालें। यदि इस मूत्र में द्राक्षज होगी तो उस परीक्षा नली के तल पर काले वर्ण का निःक्षेप बैठ जायगा। यह परीक्षा उत्तम है।

[बाकी अगले अंक में]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिमन्थ [ग्लाकोमा] विवेचन

वृद्धै रेतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम् ।
तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवेदनाः ॥
उत्पाट्यत इवात्यर्थं नेत्रं निर्मथ्यते तथा ।
शिरसोर्धं च तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः ॥
हन्याद्दृष्टिं श्लैष्मिकं सप्तरात्रा दधिमन्थो रक्तजः पंचरात्रात् ।
षड्रात्राद्वातिको वै निहन्यात् मिथ्याचारात् पैत्तिकः
सद्यएव ॥ माधव निदान॥

आयुर्वेदज्ञों ने यह माना है कि अभिष्यन्द के बिगड़ जाने पर या बढ़ जाने पर जो रोग नेत्र में हो जाता है वह अधिमन्थ होता है । इससे नेत्र में तीव्र वेदना होती है और नेत्र के भीतर जैसे कोई नेत्रान्तर्गत द्रव को मथ रहा हो नेत्र के गोलक को उखाड़ रहा हो ऐसा प्रतीत होता है। इससे भिन्न आधे सिर में तीव्र वेदना होती है। इस कष्ट से दृष्टि का नाश हो जाता है । मिथ्याचार से सद्य ही वरना पांच छैः या सात दिन में दृष्टि जाती रहती है।

आयुर्वेदज्ञ तो त्रिदोषवाद के मानने वाले थे इसलिये उन्होंने दोषों के अनुसार दृष्टि नाश के समय को निश्चित किया है। किन्तु आधुनिक समय में नेत्र विशेषज्ञों ने इस रोग के सम्बन्ध में जो खोज की है और उसके कारण को जो जाना है आज हम इस पर विस्तार के साथ विचार करेंगे। हम तो यह समझे थे कि जब नेत्र दुखने आते हैं यदि उस समय अभिष्यन्द का ठीक से उपचार न किया जाय या उस समय कुपथ्य होता रहे तो वह अभिष्यन्द बिगड़ कर अधिमन्थ के रूप में परिणत हो जाता है। पर बात ऐसी नहीं है।

अभिष्यन्द क्या है ?

पूयोत्पादक कीटाणुओं का जब अन्त्रकला में उपसर्ग हो जाता है और उससे नेत्रकला में जो शोथ उत्पन्न हो जाता है उससे आंख में लाली आ जाती है, उसे अभिष्यन्द या आंख दुखना कहते हैं। इससे जो विकार बढ़ते हैं वह सब नेत्र की बाह्य कला में बढ़ते हैं, उससे नेत्र में क्षत हो जाते हैं फोला, जाला, धुन्ध आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। किन्तु इससे अधिमन्थ नहीं होता। अधिमन्थ में जो वेदना बतलाई गई है वह नेत्र के भीतर होती है और नेत्र के भीतर जैसे कोई उसके भीतरी द्रव को मथता हो ऐसा प्रतीत होता है फिर उसके साथ ही नेत्रांडों को कोई अपनी जगह से उखाड़ने लग रहा हो ऐसी प्रतीति होती है और उसके साथ ही आधे सिर में दर्द होता है। इस कष्ट से दृष्टि जल्दी नाश को प्राप्त हो जाती है यह बातें अभिष्यन्द में नहीं होतीं। अधिमन्थ एक स्वतन्त्र रोग है और वह निम्न कारणों से होता है। नेत्र गोलक कोई ठोस अंग नहीं है, उसका बहुत सा भाग पोला होता है जिसके आगे कन्दुकाकार नेत्र का वह समस्त भाग आता है जिसमें तारामंडल, कांच, दृष्टिविन्दुपटल आवरण आदि आवश्यक अंग विद्यमान हैं इससे भिन्न इसमें तेजोसलिल (Aquous) तथा अर्धघन काचरस (Vitreous) पूर्णतया भरा रहता है। यह तेजोसलिल और काचरस किस अभिप्राय से नेत्रांड में भरे रहते हैं ? और नेत्रांड कैसे उभरा हुआ रहता है ? इसे भी वैद्यों को समझना चाहिये।

देखने की क्रिया का अर्थ है किसी बाह्य वस्तु का दृष्टि पटल पर चित्र बनना। दृष्टि पटल पर चित्र जब बन सकता है जब बाहर से आने वाली प्रकाश किरणें नेत्र के आवर्तक अंगों तक पहुँच कर इस प्रकार आवर्तित हों कि दृष्टि पटल पर वे केन्द्रित हो जायें। इसके लिये प्रत्येक आवर्तक अंग की वक्रता तथा एक दूसरे से उसकी दूरी स्थिर रखने के लिये नेत्र की गोलाई में इस प्रकार का प्रकृति ने साधन बना रखा है कि इस क्रिया को पूर्ण करने के लिए ही नेत्र की दीवारें सदा तनी रहती हैं अर्थात् नेत्र के अन्दर कुछ चाप बना रहता है। जिससे वह दीवारें तनी रहती हैं।

इसी से नेत्र के प्रत्येक अंग अपने निर्दिष्ट स्थान पर स्थिर रहते हैं और वह बाहर के वायु मंडल के दबाव से अन्दर को नहीं दबते। नेत्र के इस आन्तरिक चाप को ही नेत्राभ्यन्तर चाप कहते हैं। यह चाप किस तरह से स्थिर रहता है ? नेत्रान्तर्चाप को स्थिर रखने के लिये तेजोसलिल का मुख्यतया हाथ होता है। सन्धान गात्र और तारा मंडल आदि में रक्त का जो संचरण होता रहता है वह रक्त निःस्यन्दित हो कर उसमें से जो लसिका भिन्न होती है वही तेजो सलिल में पहुँचती है। इस तेजोसलिल के अन्दर २०–२५ सहस्रांश लम्बन का पारदीय चाप सदा बना रहता है। यही नेत्रान्तरिक चाप कहलाता है। यह तेजो सलिल काच, काचरस, कर्णिका आदि ऐसे अंगों को जिनमें रक्त वाहनियां नहीं रहतीं उनको पोषण पहुँचाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी तेजो सलिल का काम होता है। रक्त से निःस्यन्दित होकर पोषक द्रव काचरस में व्यापक रहता है। यही तेजो सलिल कांच को चारों ओर से आच्छादित किये रहता है। इसी से इन अंगों को पूर्णतया पोषण मिलता रहता है। जितना इसका व्यय होता रहता है उतना ही रक्त से निःस्यन्दित होकर उसमें पहुँचता रहता है और जो अशुद्ध भाग रह जाता है वह पूर्वग्रह के मार्ग से वापस जाता है। उस तरह से धमनिकाओं में रक्त का चाप अधिक रहा करता है। इसी के कारण उसमें से लसिका को निःस्यन्दित होने में सुविधा रहती है। यदि किसी कारण से तेजो सलिल में वे त्याज्य द्रव्य जो पूर्वग्रह के मार्ग से वहिर्गत होते रहते हैं इनकी निकासी में वाधा आ जाय तो तेजो सलिल में इनके रुकने से नेत्रान्तरिक चाप बढ़ने लग जाता है। इसके साथ ही जब विकारी द्रव्य बढ़ने लगते हैं तो पोषक द्रव्यों की मात्रा घटने लग जाती है इससे विषाक्तता बढ़ने लगती है और यदि रक्त से निःस्यन्दित होकर लसिका भी तेजो सलिल में आती रहे तब भी नेत्रान्तरिक चाप बढ़ता है। इस तरह से तेजो सलिल में द्रव का रुकना या द्रव का बढ़ना यह दोनों ही नेत्रान्तरिक चाप को बढ़ाने में सहायक होते हैं। पूर्वग्रह की सिरकाओं में कोई त्रुटि आ जाय और अशुद्ध द्रव का निःसरण न हो तो इस अवरोध से नेत्रान्तरिक चाप भी बढ़ने लगता है। पूर्वग्रह एन्टेरियर (Anterior) नेत्रांड के मध्य में ढाई सहस्रांश लम्बन गहरा होता है जो किनारों की ओर घटता चला जाता है। पूर्वग्रह चाप प्रभाव से जितना कम गहरा होगा उसका कोण भी उतना अधिक संकुचित होगा और उसके अवरुद्ध होने की उतनी अधिक सम्भावना रहती है। इस रोग की उत्पत्ति में अब तक दो कारण देखे गये हैं (१) औपद्रविक (२) प्राथमिक।

औपद्रविक अधिमन्थ

इसमें आरम्भ में नेत्रान्तर्गत प्रथम रक्त चाप नहीं बढ़ता, प्रत्युत पहले कोई उपद्रव अर्थात् कोई अन्य कारण या कष्ट होता है उसके बाद फिर तेजो सलिल में विकार आता है। इसमें अब तक निम्न कारण देखे गये हैं। अभिष्यन्द होने के बाद यदि नेत्रांड में क्षत हो जाय और क्षत के कारण कर्णिका छिद्र तारा-मंडल से जुड़ जाय या वह व्रण भर जाने पर फोला या जाला बन जाये और तारामंडल उससे जुड़ जाय तो ऐसी दशा में आगे की ओर खिंचाव पड़ने लगता है इस खिचाव के कारण पूर्वग्रह कोण भी खिच कर छोटा होता है इससे तेजो सलिल का विकृत भाग पूरी तरह नहीं निकल पाता।

दूसरा कारण:—किसी किसी के आंख में क्षय उत्पन्न हो जाने के बाद तारामंडल काच से पीछे की ओर चिपक जाता है इससे तेजो सलिल पश्चात् ग्रह से पूर्वग्रह में नहीं पहुँच पाता जिसके रुकने के कारण उसका चाप बढ़ने लगता है।

तीसरा कारण:—यदि किसी तरह काच पर आघात लग जाय और उसमें शोथ उत्पन्न हो जाय तो इससे काच का आकार बढ़ जाता है इस वृद्धि का परिणाम यह होता है कि तारामंडल आगे की ओर खिसक आता है और इससे पूर्वग्रह कोण कर्णिका के अधिक निकट आ जाता है इससे सिरकाओं के मार्ग संकुचित हो जाते हैं और तेजो सलिल का विकृत भाग उससे छन कर नहीं निकल पाता। इससे भी नेत्रान्तर्गत चाप वृद्धि होती है।

चौथा कारण:—यदि किसी कारण से काच अपने स्थान से खिसक जाय तो उसके हटने पर भी पूर्वग्रह कोण में अवरोध उत्पन्न होकर तेजो सलिल रुकने लगता है इससे भी नेत्र चाप बढ़ने लगता है।

पांचवां कारण:—यदि किसी कारण से नेत्रान्तर्गत कोई अर्बुद उत्पन्न हो जाय यह भी सिरकाओं पर अपनी वृद्धि का दवाव डालकर उसके मार्ग को अवरोध कर देता है इससे भी तेजो सलिल रुक कर नेत्रान्तर्गत चाप वृद्धि होती है।

छठा कारण:—यदि किसी कारण से नेत्रान्तर्गत रक्तस्राव हो जाय तो उसके कारण काच और तारामंडल आगे की ओर बढ़ आते हैं इससे भी पूर्वग्रह कोण अवरुद्ध हो जाता है। फिर उस रक्त स्राव का तेजो सलिल सितिन युक्त होने के कारण वह सितिन सघन होने लग जाता है इससे भी विकृत द्रव का वहिर्गमन रुक जाता है। इससे भी नेत्रान्तरिक चाप बढ़ता है। इस तरह और भी दो तीन कारण नेत्रान्तर्गत चाप बढ़ाने के देखे गये हैं।

प्राथमिक अधिमन्थ

अवस्था वृद्धि के साथ कुछ न कुछ काच में वृद्धि होती है काच के बढ़ने से सन्धान प्ररोहा (Ciliary process) के मध्य का स्थान कम हो जाता है। इसके घटने पर यदि कहीं इस स्थिति में शोथ उत्पन्न हो जाय तो सन्धान प्ररोहा और कांच के किनारे दोनों पास पास आ जाते हैं। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर तेजो सलिल का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है ऐसी स्थिति में अधिमन्थ के दौरे होने लगते हैं और इससे चिरकालीन अधिमन्थ के दौरे होते देखे जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि किसी को मोतिया बिन्द होने लग रहा हो तो इससे भी काच में वृद्धि होती है काच के बढ़ने पर तारामडल के किनारे कर्णिका की ओर बढ़ आते हैं जिसके कारण पूर्वग्रह का मार्ग तंग हो जाता है इससे तेजोसलिल के द्रव में से निःसृत होने वाले अंश रुक जाते हैं इससे भी नेत्रान्तर्गत चाप वृद्धि होती है. यह प्राथमिक अधिमन्थ तीन प्रकार का देखा जाता है:—तीव्र, चिरकालीन और सामान्य।

तीव्र रक्तिमा सहित अधिमन्थः—इसकी चार अवस्थाएं मानी जाती है (१) पूर्वरूप (२) रोगारम्भकरूप (३) पूर्णरूप (४) अपक्रान्ति।

प्राग्रूप का ज्ञान सावधानी से नेत्र परीक्षा करने पर कर्णिका और मध्य में कुछ घूसर वर्ण दिखाई देते हैं और दृष्टि मान्द्यता होती है और प्रकाश के चारों ओर इन्द्रधनुष जैसा घेरा सप्तरंगी बनता दिखाई देता है सिर तथा नेत्रों में कुछ भारीपन प्रतीत होता रहता है। ऐसी दशा आने पर पूर्वग्रह कुछ उथला हो जाता है और कनीनिका पसरी हुई एवम् गोल या अण्डाकार हो जाती है। नेत्र चाप कुछ बढ़ा हुआ और साथ में परिकर्णिक में कुछ ललाई भी रहती है। कनीनिका की प्रकाश के प्रति कुछ क्रियाशीलता भी घट जाती है। यह अवस्था कुछ घंटों रह कर फिर शान्त हो जाती है तथा नेत्र पूर्णतः ठीक हो जाते हैं। इस अवस्था में दृगसन्धान शक्ति (Power of accomodation) का कुछ ह्रास अवश्य होता है। जिसके कारण रोगी को अधिक नम्बर के ऐनक लगाने की आवश्यकता होती है। दृष्टि वृद्धि की इस प्रकार वृद्धि होने पर अधिमन्थ का सन्देह होता है। इसे दूर करने के लिये नेत्रों की भली प्रकार परीक्षा करानी चाहिये। इस पूर्वरूप के कारणों में चिन्ता, निद्रानाश, मलावरोध आदि कारण होते हैं। इस तरह दौरे इस रोग के आरम्भ में महीने दो महीने में आते हैं फिर उनका समय घटता जाता है फिर सप्ताहों के अन्तर से आने लगते हैं। पूर्वरूप की यह अवस्था वर्षों चला करती है तत्पश्चात् रोग का रूप प्रकट हो जाता है।

रोगारम्भक रूप

जब चिन्ता, निद्रानाश, मलावरोध आदि कारणों से रोग का दौरा होता है तो दृष्टिनाश, दृष्टिक्षेत्र का संकुचित होना, नेत्र में तीव्र पीड़ा इसके प्रधान लक्षण होते हैं। पीड़ा पंचकरोटी नाड़ी के मार्ग से बढ़ती हुई मालूम पड़ती है साथ ही आधे सिर में शूल भी पैदा होता है। कभी कभी पीड़ा इतनी उग्र होती है कि उसके कारण उत्क्लेद, वमन, घबराहट होती है और किसी किसी को ज्वर हो जाता है। नेत्रान्तर्गत परीक्षा करने पर आन्तरिक चाप बढ़ा हुआ मिलता है। कर्णिका धुंधली तथा चेतनाहीन दिखाई देती है। कनीनिका भी ऐसी स्थिति में फैली होती है और वह गोलाकार या अंडाकार हो जाती है और ऐसा दिखाई देता है कि वह कनीनिका निश्चेष्ट हो रही है। तारा मंडल का वर्ण भी विवर्ण हो जाता है। पूर्वग्रह समतल सा, तेजो सलिल गहरा हो जाता है काच और तारामंडल के किनारों का भाग आगे की ओर कुछ बढ़ा हुआ दिखाई देता है। इसके साथ ही परिकर्णिका ललाईयुक्त व नेत्रकला भी लालिमा पूर्ण होती है और उसमें कुछ शोथ की प्रतीति होती है। अधिकांश व्यक्तियों में रोग कुछ दिनों के बाद शांत हो जाता है तथा कुछ दृष्टि बढ़ जाती है। किन्तु वह अपनी पूर्णता को कभी नहीं प्राप्त होती। कुछ न कुछ दृष्टि मान्द्यता रहती है। दृष्टि क्षेत्र भी संकुचित होता है. विशेष कर नासिका की ओर। नेत्रान्तर्गत चाप सदा बढ़ा मिलता है। कुछ दिन की शान्ति के बाद पुनः दौरा होता है और प्रत्येक दौरे के बाद दृष्टि मान्द्यता बढ़ती जाती है और अन्त में रोगी अन्धा हो जाता है। इसी अवस्था को रोग का पूर्ण रूप कहते हैं। जब रोग पूर्ण रूप तक पहुँच जाता है उसके बाद भी जब कष्ट नहीं घटता तो नेत्रगोलकों में अपक्रान्ति आरम्भ हो जाती है। इससे वह भी नष्ट हो जाते हैं। पहले वह नेत्र गोलक मृदु हो जाते हैं फिर अन्त में बैठ जाते हैं।

यह रोग भारतवर्ष में बहुत अधिक देखा जाता है। प्रत्येक नेत्र वैद्य को इसके काफी रोगी देखने को मिलते हैं किन्तु जो नेत्र चिकित्सक नहीं, वह रोग को समझने में समर्थ नहीं होते। इस रोग का प्रधान लक्षण होता है नेत्रन्तर्गत चाप का बढ़ना। इसकी देखने समझने के वैद्यों के पास कोई साधन नहीं होते। शूल आदि के जो लक्षण होते हैं उससे रोग को पहचानना कठिन होता है। यह रोग अधिकतर ४० वर्ष की अवस्था के बाद ही अधिक होता है इससे कम आयु वालों को क्वचित ही देखा जाता है और पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक होता है और दूर दृष्टि वालों की अपेक्षा सामीप्य दृष्टि वालों को अधिक होता है। बहुत से लोगों का विचार है कि यह रोग कुछ न कुछ पैत्रिक होता है। जिनके माता पिता को यह रोग हुआ हो उनके बालकों में २५ प्रतिशत पाया जाता है।

लक्षण—प्रकटतया मस्तिष्क में शूल, नेत्र स्राव का जारी होना, दृष्टि नाश, उत्क्लेद, वान्ति भ्रान्ति शीत [शेष पृष्ठ १५२ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असहनीयता जन्य व्याधियाँ

कई बार देखा गया है किसी व्यक्ति को कोई औषध देते हैं तो उसके खाने पर उसे कोई न कोई कष्ट हो जाता है। तब हम कहते हैं कि यह औषध उसके अनुकूल नहीं बैठी। कई ऐसे व्यक्ति भी देखे गये हैं उन्हें कई खाद्य द्रव्य अनुकूल नहीं पड़ते। जब वे ऐसी चीजें खा लेते हैं उससे कोई न कोई कष्ट उत्पन्न हो जाता है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भी इन असह्यता जन्य कष्टों का उल्लेख आया है। यथा :—

औषधगन्धजे (ज्वरे) मूर्छा शिरोरुग्वमथुः क्षवः। सुश्रुत।

इस पर टीकाकार लिखता है:—

औषधगन्ध इति तीव्र औषधगन्ध घ्राणजं पुष्पेभ्यो गन्धरजसी ओजसिम्यो यदाऽलिनः। इत्यादिना वृद्ध सुश्रुतेन पठित तृणपुष्पाख्यं ज्वरमत्रैवान्तर्भावयन्ति।

ऐसी असह्य उद्वगिनकारी वस्तु के सम्पर्क से या सेवन से कोई कष्ट हो जाता था तो उस कारण को व्याधिजनक कारण नहीं मानते थे। क्योंकि प्रतिकूल वस्तु के प्रभाव से जो व्यथा उत्पन्न हो जाती थी वह कुछ घंटों में या कुछ दिनों में अपने आप दूर हो जाती थी। किन्तु ऐसे प्रतिकूल प्रभावकारी द्रव्यों का जो प्रभाव होता था उसका व्याधि कारणों में किसी ने विवेचन नहीं किया।

हम सब त्रिदोषवाद को मानते हैं तृणपुष्पाख्य ज्वर में ग्रन्थकार ने इस ज्वर में कौन सा दोष कुपित होता है इसका उसने कोई उल्लेख नहीं किया।

प्रकृति विपरीत द्रव्य भी व्याधि के कारण होते हैं

आधुनिक अनुसन्धानों से ज्ञात हुआ है कि मनुष्यों में किसी औषध विशेष के सेवन करने पर या किसी पुष्प की गन्ध लेने पर या आहारीय द्रव्यों में से किसी द्रव्य के खाने से और औषधियों के सूचीभरण देने से किसी किसी व्यक्ति में हानिकर प्रभाव उत्पन्न होते देखे जाते हैं। किसी को श्वास का कष्ट हो जाता है, किसी को खांसी आने लगती है, किसी को शीतपित्त हो जाता है, किसी को उदर्द निकल आते हैं, किसी को विचर्चिका, कंडू, पामा, वमन, हृल्लास, अर्धावभेदक, शिरःशूल, नासाशोथ, प्रतिश्याय,क्षवथु,ज्वर आदि कोई न कोई उपद्रव होते देखे जाते हैं। यह कष्ट अतिसम्वेदनशीलता या असहनीयता के कारण ही उत्पन्न होते हैं। यह असहनीयता किस कारण से उत्पन्न होती है? इसकी अब आकर खोज हुई है।

अनुसन्धान से ज्ञात हुआ है कि किसी द्रव्य के प्रति असहनीयता में मुख्य कारण पैत्रिक या कुलज प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है। और यह परम्परा में आगे से आगे पहुँचती है इस पर खोजें हुई हैं। देखा गया है कि शरीर की कोषाओं में जो मींगी के आस पास संस्कारी मणिमाला होती है उसी में इसके संस्कार निहित होते हैं इसीसे वह आगे से आगे चली आती है। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि पिता को किसी पुष्प की गन्ध से ज्वर हो जाता हो तो पुत्र को ज्वर भी हो सकता है और अन्य कष्ट भी। जैसे:—शीतपित्त, उदर्द, कोठ, विचर्चिका, पामा, दद्रु आदि। यह भी देखा गया है कि बाल्यकाल में यह कष्ट प्रादुर्भूत नहीं होते,किशोरावस्था के बाद यह असहनीयता के विकार बढ़ते हैं। और इसका ज्ञान उस व्यक्ति को शीघ्र लग जाता है, जहाँ उसे एक दो बार उस वस्तु के सेवन से जब कष्ट सामने आते हैं तभी फिर उन दव्यों के सेवन से वह बचने का प्रयत्न करता है। इस समय प्रतिजैवी औषधियों, बलिसमूह की औषधियों (सल्फाड्रग्स) का उपयोग बहुत बढ़ गया है। जिन व्यक्तियों में असहनीयता की पैत्रिक प्रवृत्ति विद्यमान होती है वही व्यक्ति अधिक सम्वेदनशील देखे जाते हैं ऐसे व्यक्तियों में कोई कोई मृत्यु के मुख में चले जाते हैं। अभी थोड़े दिन की बात है एक संसद सदस्य को किसी रोग के समय पेन्सलीन का सूचीभरण दिया गया। एक ही सूचीभरण के देने पर उसके शरीर में अतिसम्वेदनशीलता असह्य स्थिति तक पहुँच गई। उससे उसकी मृत्यु हो गई।

अतिसम्वेदनशीलता और असहनीयता में अन्तर

जब से लसि चिकित्सा का आविष्कार हुआ है तब से अश्व, शशक, श्वान आदि अन्य प्राणियों के रक्त में रोहिणी, धनुस्तम्भ आदि कुछ रोगोत्पादक कीटाणुओं को प्रवेश करा कर उनके लसिका में उन्हीं उन्हीं कीटाणुओं द्वारा उस व्याधि के प्रतिजन या प्रतियोगी द्रव्य उत्पन्न कराये जाने लगे हैं। इन रोगोत्पादक जैवों को जब उन प्राणियों के शरीर में प्रवेश कराया जाता है तो उनके शरीर में एकाएक अतिसम्वेदनशीलता उत्पन्न हो जाती है और वह उससे व्याकुल होते हैं। कइयो में यदि वह असह्य हो जाय तो उनकी मृत्यु तक हो जाती है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवस्था बहुत कम ही प्राणियों में आ पाती है। एक बार का दिया सूचीभरण उन्हीं कीटाणुओं का पुनः दिया जाता है। इससे उन प्राणियों में व्याधिप्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हो जाती हैं। जब उस प्राणी की लसी पूर्ण व्याधि क्षम हो जाती है तो उसका रक्त निकाल कर उससे लसिका को भिन्न करके उसे सुरक्षित रखते हैं। जब कभी किसी व्यक्ति को रोहिणी या धनुस्तम्भ जैसे रोग लग जाते हैं उस समय उस लसिका के सूचीभरण देने पर उस असाध्य रोग से उस प्राणी का जीवन बचाया जा सकता है।

मनुष्यों से इतर अन्य प्राणियों में कृत्रिम विधि से जो अतिसम्वेदनशीलता उत्पन्न करके उस प्राणी को उस रोग के प्रति सक्षम बनाया जाता है इसीलिये इसे अतिसम्वेदन-शीलता (Hyper sensitiveness) का नाम दिया गया है। यदि किसी मनुष्य में अकृत्रिम विधि से स्वतः उक्त कष्ट प्रादुर्भूत होता है तो उसके लिये असहनीयता (Allergy) शब्द का व्यवहार हुआ है।

मनुष्यों में कुछ औपसर्गिक रोगों के होने बाद भी असहनीयता जन्य रोग होते हैं। अनेकों रोगियों में उपदंश, पूयमेह (सुजाक), कुक्कुरकास, फुफ्फुस प्रदाह, संचारी प्रतिश्याय (इन्फ्लुइन्जा) आदि रोग जब हो जाते हैं तो उन व्याधियों से निवृत्ति होने के बाद कई व्यक्तियों को काफी समय तक अनेकों द्रव्यों के प्रति असहनीयता बनी रहती है अर्थात् अनेकों चीजें उनके अनुकूल नहीं पड़तीं। इसका कारण कुछ लोग निर्बलता को मानते हैं। असहनीयता भी तो स्वयं एक प्रकार की निर्बलता ही होती है जो उन वस्तुओं के सेवन करने पर शरीर में असहनीयता उत्पन्न कर देती है। और जिसे एक बार कोई असहनीयता जन्य कष्ट हो जाता है उसका आक्रमण बहुत ही साधारण सा कारण पाकर होता रहता है। यह भी देखा जाता है कि एक ही तरह के द्रव्य असहनीय व्यक्तियों में कई बार एक से लक्षण उत्पन्न करते हैं कई बार उनके लक्षणों में बहुत सी भिन्नता देखी जाती है। उदाहरण के लिये यदि एक ही अतिसूक्ष्मवेदी व्यक्ति को अण्डे की सफेदी खिलाई जाय तो उससे जो कष्ट होते हैं वैसे ही कष्ट यदि वह व्यक्ति शंख का कीड़ा खा ले तो उससे भी वैसे ही लक्षण वाला रोग देखा जाता है। और कई बार ऐसा भी देखा जाता है कि एक बार गन्ध से उसे श्वास का कष्ट होता है तो दूसरी बार उसे श्वास का कष्ट न होकर सिर दर्द और ज्वर आदि हो जाते हैं। और जिसको कोई असहनीयता जन्य रोग लग रहा हो जैसे श्वास हो जाया करता हो तो ऐसे व्यक्ति को उसके साथ नाक बन्द होना, नाक बहने लगना, जल्दी जल्दी प्रतिश्याय हो जाना साधारण बात होती है। इसलिये ऐसे अति सूक्ष्मवेदी व्यक्तियों की स्थिति को सबसे पहले वैद्य को समझना जरूरी है। यदि वैद्य रोगी की इस स्थिति को अच्छी तरह जान ले तो उसकी चिकित्सा में उसे बहुत सुकरता हो जाती है। विद्यमान समय में इस तरह के जो भी अनुसन्धान होते जा रहे हैं यदि वैद्य इनको समझने का प्रयत्न करें तो उन्हें व्याधियों की स्थिति को समझने में बहुत सुविधा हो सकती है।

[शेष पृष्ठ १५० का]

लगना और हृदय की गति का घटना इसके मुख्य लक्षणों में से हैं। किन्तु नेत्र परीक्षा से ही इस बात का ज्ञान होता है कि नेत्रान्तर्गत चाप बढ़ा हुआ है तभी इसका सही ज्ञान होता है।

इसमें जो शिरःशूल होता है वह सारे सिर में नहीं होता। प्रत्युत भृकुटी से लेकर एक ही ओर प्रायः होता है और वह पीड़ा भी असह्य होती है। अधिमन्थ में जो नेत्रों से जल का स्राव होने लगता है वह उस जल में चिपचिपापन या ल्हेस वगैरह कुछ नहीं होते, इसका कारण यह है कि जो वात नाड़ियां अश्रुग्रन्थि का नियमन करती हैं नेत्रान्तर्गत चाप वृद्धि से उनके नियमन में अनियन्त्रिता आ जाती है! उसके उत्तेजन के कारण ही नेत्रस्राव बढ़ जाता है। जिस रोगी को पीड़ा और अश्रु-स्राव के साथ ही दृष्टि मान्द्यता बढ़ने लगे या एकाएक दृष्टिनाश हो तो समझ लेना चाहिये कि इसको अधिमन्थ है।

अधिमन्थ रोग के निदान करने वाला यन्त्र

अभी ताजी सूचना मिली है कि अमेरिका के डाक्टरों ने एक ऐसे सरल यन्त्र का आविष्कार किया है कि उसके द्वारा देखने पर नेत्रान्तर्गत चाप को आसानी से नापा जा सकता है। इस यन्त्र को लगाने पर उसकी सूई यह बतला देती है कि इस समय नेत्रान्तर्गत तेजो सलिल का चाप कितना है। इससे रोग का ज्ञान होते ही उसे रोका जा सकता है और रोगी को इस भयंकर कष्ट से बचाया जा सकता हैं।

संसार में नित्य नये आविष्कार होते रहते हैं पर वैद्यों को कुछ आता जाता तो है नहीं यह आविष्कार करें तो कैसे करें?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समालोचना

१. मूत्र परीक्षा—(अंग्रेजी भाषा में), लेखक—श्री एल. एस. भटनागर, प्रकाशक—आयुर्वेदीय स्नातकोत्तर शिक्षा केन्द्र जामनगर पृष्ठ संख्या १६० ।

जामनगर के आयुर्वेदीय स्नातकोत्तर शिक्षा केन्द्र के प्रत्येक शिक्षार्थी को अन्तिम परीक्षा में बैठने से पूर्व किसी आयुर्वेदीय विषय पर खोज पूर्ण निबन्ध (thesis) लिखना होता है। प्रस्तुत प्रकाशन श्री एल. एस. भटनागर द्वारा लिखा एक ऐसा ही निबन्ध है जिसे लिखने में उन्होंने अपने तत्कालीन योग्य अध्यापक श्री सी. द्वारकानाथ (जो इस समय केन्द्रीय सरकार स्वास्थ्य मन्त्रालय के देशी चिकित्सा पद्धति परामर्शदाता के पद पर नियुक्त हैं) से मार्ग दर्शन लिया।

आधुनिक निदान पद्धति में मूत्र परीक्षा को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है इसी बात से प्रेरित होकर लेखक ने इसे अपने निबन्ध का विषय चुना। निबन्ध का उद्देश्य आयुर्वेदीय संहिताओं का आधुनिक ज्ञान के प्रकाश में मूल्यांकन करना है।

निबन्ध तीन भागों में विभक्त है।

प्रथम भाग में लेखक ने मूत्र निर्माण सम्बन्धी भिन्न भिन्न शास्त्रीय सन्दर्भों को बड़े परिश्रम पूर्वक एकत्र संकलन कर उन्हें विषयानुकूल क्रम में रखकर सारे प्रकरण की एक ऐसी व्याख्या प्रस्तुत की है जो आधुनिक प्रत्यक्ष ज्ञान के लगभग समानान्तर है। उक्त संकलन से यह बात प्रकट है कि किसी भी एक आयुर्वेदीय शास्त्र में अथवा अनेकों शास्त्रों के सन्दर्भों को एक साथ रखने पर भी मूत्र प्रकरण का जो चित्र हमें मिलता है वह अस्पष्ट अधूरा एवं भ्रामक है। लेखक ने इस प्रकरण की जो सयुक्तिक व्याख्या प्रस्तुत की है उसकी पृष्ठ भूमि में लेखक द्वारा आधुनिक शरीर शास्त्र एवं शरीर क्रिया विज्ञान के अध्ययन से उपार्जित ज्ञान की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। केवल मात्र शास्त्रीय आयुर्वेद का ज्ञाता कोई व्यक्ति ऐसी व्याख्या प्रस्तुत नहीं कर सकता इससे आयुर्वेद में इस प्रकरण की त्रुटि स्पष्ट है।

इसके अतिरिक्त भिन्न २ आयुर्वेद शास्त्रों में और कहीं २ एक ही शास्त्र के भिन्न २ प्रकरणों में सिरा, धमनी, वस्ति, वृक्क आदि शब्दों का भिन्न २ अर्थों में प्रयोग हुआ है जिससे विषय और अधिक अस्पष्ट हो गया है। लेखक ने ऐसे सभी शब्दों का शास्त्रीय विवेचन कर तथा आधुनिक शरीर शास्त्र के साथ उसका समन्वय कर प्रत्येक शब्द को निश्चित अर्थ में प्रयुक्त किया है।

निबन्ध के दूसरे भाग में स्वस्थावस्था और विभिन्न रुग्णावस्थाओं में मूत्र के रस, रूप, गन्ध, स्पर्श आदि सम्बन्धी समस्त शास्त्रीय वचनों का विवेचना पूर्ण संकलन किया गया है।

तृतीय भाग में शास्त्रोक्त वचनों के आधार पर लेखक द्वारा स्नातकोत्तर शिक्षा केन्द्र से संलग्न अस्पताल में किये गये अनेकों स्वस्थ व्यक्तियों एवं ३०० से अधिक रुग्ण व्यक्तियों के मूत्र परीक्षण प्रयोगों का ब्यौरा दिया गया है। तैल विन्दु परीक्षा विवरण लेखक की गवेषणात्मक वृत्ति का सूचक है। सभी प्रयोगों में लेखक ने केवल मात्र शास्त्रोक्त भौतिक परीक्षा साधनों स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि का सहारा लिया और इस परिणाम पर पहुँचे कि इन साधनों की शुद्धता व बारीकी विश्वसनीय नहीं अतः निश्चित परिणामों की प्राप्ति के लिए आधुनिक भौतिक व रासायनिक साधनों की सहायता लेनी चाहिए।

निबन्ध निसन्देह बड़े परिश्रम एवं मनोयोग पूर्वक लिखा गया है। एतदर्थ लेखक महोदय प्रशंसा के पात्र हैं। शुद्ध आयुर्वेद के ज्ञाता वैद्यों के लिए विशेष रूप से ज्ञान वर्द्धक है अतः हिन्दी भाषा में छपता तो अधिक वैद्य इससे लाभान्वित हो सकते।

२. देह प्रकृति विज्ञान—लेखक वैद्य यशवन्त वासुदेव पाटणकर प्रकाशक जामनगर स्नातकोत्तर शिक्षा केन्द्र पृष्ठ संख्या ८८ यह प्रकाशन भी स्नातकोत्तर शिक्षा केन्द्र के एक अन्य शिक्षार्थी द्वारा लिखा निबन्ध (thesis) है।

संसार में एक मनुष्य की प्रकृति दूसरे से नहीं मिलती। इसका निर्माण जाति, कुल, देश और काल के सम्मलित प्रभाव से होता है उसकी आयु और व्यक्तित्व भी प्रकृति को प्रभावित करते हैं। इस सम्बन्ध में आधुनिक और प्राच्य मान्यता में कोई अन्तर नहीं। मनुष्य के जीवन, स्वास्थ्य एवं रुग्णावस्था पर मनुष्य की प्रकृति के प्रभाव को सभी समान रुप से स्वीकार करते हैं। आयुर्वेद का प्रयोजन है "स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणमातुरस्य रोग प्रशमनं चेति"। इस दृष्टि से देह प्रकृति विज्ञान वैद्यों के समझने योग्य विषय है। आयुर्वेद में इस बात का उल्लेख मात्र है कि शुक्रशोणित संयोग के समय उनमें विद्यमान माता पिता के कुछ सहज गुण बालक के शरीर में स्थित हो जाते हैं। पर आधुनिक वैज्ञानिकों ने परम सूक्ष्म यन्त्रों की सहायता से शुक्रशोणित की उस संयुक्त कोषा का निरीक्षण कर विद्यमान वर्ण पिण्डिकाओं (Chromosomes) तथा उन पर चिपके प्रकृति निर्माता कणों (genes) का प्रत्यक्ष दर्शन कर लिया हैं। प्रस्तुत निबन्ध लेखक ने प्राच्य और प्रतीच्य दोनों शास्त्रों से उद्धरण देकर अपने विषय का अच्छा विवेचन किया है।

समालोचक :—क. गौरीलाल चानना बी. ए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं०डी-७२०

व्याधि-मूल विज्ञान (पूर्वार्ध)

श्री स्वामी हरिशरणानन्द की नव्य कृति

छपगया ! छपगया !! छपगया !!!

यह वैज्ञानिक युग है, शरीर के भीतर जब कोई व्याधि हो जाती है तो उसे अब तक अनुमान से ही जानते थे। किन्तु वैज्ञानिकों ने ऐसे साधन मालूम कर लिए हैं कि शरीर के भीतर जब व्याधियों का प्रादुर्भाव हो रहा हो तो वह कैसे हुआ करता है, और उसमें कौन कौन से व्याधियों के उत्पादक कारण है। इसको उन्होंने नव्य प्रायोगिक विधियों से खूब अच्छी तरह से देखा व जांचा। एक ही प्रयोगशाला ने नहीं, अनेकों प्रयोगशालाओं ने मिलकर जांच की और जो तथ्य उन्हें मिले और वे प्रकाश में आये उनको संकलित कर व्यवस्थित रूप दिया गया है। इन प्रायोगिक विधियों ने चिकित्सा के अनेकों मान्य सिद्धान्तों पर पानी फेर दिया है।

आयुर्वेद का सिद्धान्त है—"मिथ्याहार विहाराभ्यां दोषाः ह्यामाशयाश्रयाः"। आहार विहार की अनियमितताओं से आमाशय में दोषों का उत्थान होता है। आहार सम्बन्धी और पचन सम्बन्धी विषय का प्रायोगिक ज्ञान इतना अधिक बढ़ चुका है जिनके सन्तुलित स्थिति से मनुष्य स्वस्थ रहता है उसमें असन्तुलित स्थिति उत्पन्न होते ही रोगों का प्रादुर्भाव होता है। यह 'द्रव्य साम्यमरोग्यता' का सिद्धान्त किस तरह देखा समझा गया यह आयुर्वेद विद्वानों के समझने की चीज है। इसी का वैज्ञानिक विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है। यह ग्रन्थ का पूर्वार्ध मात्र है जो ४०० से अधिक पृष्ठों में पूर्ण हुआ है। १० वर्ष के परिश्रम के बाद इसका पूर्वार्ध ही पाठकों के हाथ में पहुँचा रहे हैं। सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य १२) है।

मैनेजर—पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर

ब्रांच—खारी बावली, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ७ आश्विन सम्वत् २०१७ संख्या १०

अक्तूबर १९६०

आयुर्वेद-विज्ञान

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

[केवल रजिस्टर्ड चिकित्सकों, अस्पतालों व प्रयोगशालाओं के लिये]

सम्पादक

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

विषय-सूची

१. आयुर्वेद के शत्रु कौन ?	१५३
२. क्या भारत सरकार आयुर्वेद को मान्यता देगी ?	१५६
३. हृदय के रक्त प्रवाह को मापने वाला यन्त्र	१५८
४. एक नई चिकित्सा पद्धति का आविष्कार	१५९
५. वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण	१६४
६. नकली चांदी के वर्क भी बाज़ार में आ गये	१६७
७. समालोचना	१६७
८. दाशमिक (मीट्रिक) मान क्या है ?	१६८

प्रकाशक—

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, खारी बावली, दिल्ली—६

मुद्रक—बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा नई सड़क, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा ।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ३० नये पंसे होगा ।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये ।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये ।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये । अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये ।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये । अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा ।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये ।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये ।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्व-प्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा ।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा । किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, व करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा ।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये ।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायेगा ।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर किसी परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-सम्बन्धी प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये आयुर्वेद-विज्ञान के ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न एक रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके प्रश्न और उत्तर छापे जायेंगे ।

मैनेजर

शिवा गुटिका

(जीर्ण और वृद्ध रोगियों के लिये दिव्य रसायन)

यह योग चक्रदत्त भैषज्य रत्नाकर और योगरत्नाकर ग्रन्थों में रसायनाधिकार में आया है। इस योग का प्रमुख द्रव्य शिलाजीत सूर्यतापी है जिसे कई वनस्पतियों और जीवनीय गण की औषधियों द्वारा ग्रीष्म काल की आतप में भावित कर उसकी मलाई उतारी जाती है । पश्चात कुछ अन्य औषधियां मिला कर इस की गुटी बनाई जाती है ।

शास्त्र में इसे आमवात, यक्ष्मा, पाण्डु, नपुन्सकता, मृगी तथा शिर, नेत्र, कण्ठ, फुप्फुस एवं हृदय के कई रोगों में लाभकारी लिखा है । इसका मुख्य गुण रसायन है । अर्थात् किसी भी जीर्ण रोग से, जरावस्था में अथवा किसी भी तरह जब शरीर की कार्य व्यवस्था बिगड़ जाय, शरीर की कोषायें निर्बल विकृत हो जायें तो यह औषधि स्वास्थ्य को पुनः बिल्कुल ठीक कर देती है, ऐसा अपने पर और अन्य रोगियों पर इसे प्रयोग करके हमने देखा है । जीर्ण रोगों से पीड़ित रोगियों व वृद्धावस्था में होने वाले विकारों तथा दुर्बलता में तो यह गुटिका विशेष रूप से लाभप्रद रसायन सिद्ध हुई है ।

रसायन औषध दो चार दिन खाने से लाभ नहीं करती । दो गोली प्रातः सायं २–३ मास तक निरन्तर खानी चाहिये । एक मास सेवन करने योग्य ६० ग्राम गोली के पैकिट का मूल्य केवल ५) है, पैकिंग डाक खर्च भिन्न ।

पता-मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, ६०-६१, अकालीमार्केट, अमृतसर

ब्रांच—खारी बावली दिल्ली ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद-विज्ञान

आयुर्विदेव विततै किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्नपरकैर्भवतीह लभ्यस्
शवितं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ॥

वर्ष ७ | आश्विन २०१७ वि०, अक्टूबर १९६० ई० | अंक १०

आयुर्वेद के शत्रु कौन ?

धूर्तराट् शिवशर्मा ने जिस व्यक्ति को १९५८ के वार्षिक अधिवेशनार्थ अ० भा० आयुर्वेद महा मंडल के प्रधान पद पर सुशोभित किया था, वह व्यक्ति अपने को "उत्कल विधान सभाया : सदस्य आसम् (M. L. A.) आन्ध्र विश्वविद्यालयस्य उत्कल विश्व विद्यालयस्य च पारिषद (Senator) आसं तिष्ठामि च। उत्कल विश्व विद्यालयस्य आयशः सकलानामपि शिक्षा चिकित्सा समितिनां सभ्यो भवति" की घोषणा करता है। यदि वह व्यक्ति विधि विधान का ज्ञाता होता तो महा मण्डल का वार्षिक अधिवेशन दो वर्ष तक स्थगित रखने का उपक्रम न करता।

संसार के किसी संस्था के विधान में यह आश्चर्य-जनक घटना देखने को नहीं मिलेगी कि आय व्यय संतुलन पत्र व अनुमानिक आय व्यय बजट वार्षिक अधिवेशन की अवहेलना कर दो दो बार स्थायी समिति द्वारा स्वीकृत मान लिए जायें।

अ० भा० आयुर्वेद महा सम्मेलन की नियमावली में उल्लेख हैं :—

धारा—१६, (ग) २—"प्रधान मंत्री महामण्डल के कार्यों एवं प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में एक वार्षिक विवरण तैयार करके पूर्व वर्ष के आय-व्यय विवरण तथा वर्षान्त के सन्तुलन पत्र आय-व्यय निरीक्षक की सम्मति के साथ स्थायी समिति में उपस्थित करेंगे। स्थायी समिति की स्वीकृति के अनन्तर अग्रिम वर्ष के लिये अनुमानिक आय-व्यय के हिसाब के साथ उन्हें महा सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में अन्तिम निर्णय के लिये उपस्थित करेंगे।"

"घ—कोई अप्रत्याशित अथवा युक्तियुक्त कारण उपस्थित होने पर स्थायी समिति वार्षिक अधिवेशन को सामयिक रूप से दूसरे वर्ष तक स्थगित कर सकती है। इस (घ) नियमानुसार एक वर्ष के लिये अप्रत्याशित, युक्ति युक्त कारण उपस्थित किये जाने पर अगले वर्ष तक के लिये ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वार्षिक अधिवेशन स्थगित किया जा सकता था। किन्तु अधुना विधान शास्त्री पं० अनन्त त्रिपाठी ने १९५८ और १९५९ के दो अधिवेशन स्थगित कर महा मंडल नियमों की अवहेलना की है।

१९५८ के महा मंडलाध्यक्ष का चुनाव अवैधानिक हुआ

महा मंडल नियम व विधान की धारा ४-क४ में अंकित है :—"किसी सदस्य की सदस्यता उस समय तक स्थिर रहेगी जब तक कि सदस्यता के नियमानुसार वार्षिक शुल्क की अदायगी होती रहेगी।"

तथा—

"९ धारा, ४ ख के अनुसार बनने वाले मान्य सदस्य का वार्षिक शुल्क प्रति वर्ष ३० जून तक महा सम्मेलन के प्रधान कार्यालय में जमा हो जाना चाहिये। अन्यथा तदुपरान्त वे अपने सदस्य के अधिकारों से वंचित हो जायेंगे।"

आयुर्वेद का शत्रु कौन ? नामक प्रथम लेख में मैंने आयुर्वेद विज्ञान अप्रैल १९६० अंक के पृष्ठ ५१ पर प्रधान को इंगित किया था कि "शिवशर्मा ने सैकड़ों ऐसे जाली सदस्य भर्ती किये जिन्होंने कभी चन्दे की रकमें अदा नहीं कीं। यह रकमें कोई सौ दो सौ की नहीं प्रत्युत ५,३८९,५० पैसे की रकम है। यह रकम १९५८ में लगभग ५५० सदस्यों से प्राप्त करनी थीं। जिन सदस्यों ने अपना वार्षिक शुल्क अदा नहीं किया था वे सदस्यगण उक्त ९ धारा ४ ख के अनुसार ३० जून के बाद सदस्यता से वंचित हो गये थे।

देखो :—फरवरी १९५९ की सम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित सन्तुलन पत्र की प्रतिलिपि—

विभिन्न प्राप्तव्य शुल्क

१९५६–५७ का	२७११·००	
१९५७–५८ ,,	१७७४.५०	
१९५८–५९ ,,	१४९०.००	योग–५९७५·५०

सम्मेलन पत्रिका १९५९ फरवरी

जिन सदस्यों ने सदस्यता शुल्क अदा नहीं किया था वे व्यक्ति महा मंडल प्रधान के चुनाव में मत पत्र देने के अधिकारी नहीं थे, किन्तु उन्होंने उस समय अपने मत पत्र दिये। इन्हीं सदस्यता से वंचित हुए सदस्यों के बहुमत से प्रधान पद के लिये श्री पंडित अनन्त त्रिपाठी जी चुने गये। इनका चुनाव इसी दृष्टि से अवैधानिक हुआ। तीन वर्ष तक जिन व्यक्तियों ने सदस्यता शुल्क अदा नहीं किया था उन व्यक्तियों को अब १९६० में आकर निकाला गया। देखो जनवरी १९६० की सम्मेलन पत्रिका पृष्ठ ६७। इन सदस्यों की संख्या थोड़ी नहीं ८८८ है। इनको अब आकर क्यों निकाला गया ? जब इन्होंने नियमानुसार १९५८ में ३० जून तक अपना सदस्यता शुल्क अदा नहीं किया था। यह तो सदस्यता के अधिकार से उसी समय वंचित हो गये थे। शिव शर्मा ने इन व्यक्तियों से इच्छित वोट प्राप्त करने थे। इसीलिये इन्हें उस समय पदच्युत नहीं किया गया।

धोके बाजों को महा मंडल से निकाला जाय

फरवरी की सम्मेलन पत्रिका में जो वार्षिक बजट और सन्तुलन पत्र दिखाया गया है वहां निम्नलिखित प्राप्तव्य शुल्क सदस्यों से लेना है :—१९५७ का २७७८·०० और १९५८ का २९०७·५०। अर्थात् सदस्यता शुल्क अभी उन सदस्यों से प्राप्त होना है उसे महामंडल की सम्पत्ति में जमा दिखाया गया है। जो वास्तव में महा मंडल की सम्पत्ति में विद्यमान नहीं। यह महा मंडल के सदस्यों को कितना भारी धोका दिया गया प्रधान मन्त्री वामनराव और शिवशर्मा दोनों कितना गम्भीर अपराध कर रहे हैं। गलत हिसाब पेश करके महा मंडल की प्रतिष्ठा को धूल में मिला रहे हैं किन्तु यह लोग अपने बहुमत से अवैधानिक कार्यों को उन अपदस्य व्यक्तियों के बल पर वैद्य समाज को मूर्ख बनाते चले आ रहे हैं। इन्हें महा मंडल की सदस्यता से अपदस्य क्यों नहीं किया जाता।

पूना के अधिवेशन की कार्यवाही अवैधानिक थी

१० दिसम्बर १९५९ को पूना में जो अधिवेशन हुआ था उस अधिवेशन पर शिवशर्मा के साथ जो व्यक्ति बम्बई से आये थे, इनमें दो व्यक्तियों ने उस वर्ष महा मंडल सदस्यता शुल्क अदा नहीं किया था, उनके नाम निम्न हैं :

श्री नारायण हरि जोशी २५५ मुम्भाट नाका, बम्बई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नं० ४। दूसरी सदस्या थी श्रीमती लक्ष्मीबाई बोरवणकर १८६ ठाकुर द्वारा रोड बम्बई देखो महा मंडल सदस्यों की १५ मई १९५९ तक बने सदस्यों की सूची।

जो सदस्य संस्था के अधिकारों से नियमानुसार वंचित हो गया हो वह व्यक्ति किसी अधिवेशन में उपस्थित हो और उस कार्यवाही में भाग ले तो सभा विधान के साधारण नियमानुसार उस अधिवेशन की समस्त कार्यवाही अवैधानिक हो जाती है। उस अधिवेशन में १७८१ रुपया जो अप्राप्य ऋण मान कर छोड़ दिया गया है यह और आनुमानिक आय-व्यय बजट की स्वीकृति सब अवैधानिक कार्य हुए हैं।

इसीलिये इन्होंने जो रुपया श्री लंका यात्रा पर महा मंडल का व्यय किया है इन व्यक्तियों को वापस देना चाहिए।

क्या अनन्त त्रिपाठी जी पद लिप्सित नहीं

यदि उनको पद की लिप्सा न होती तो वह महा मंडल की प्रतिष्ठा को बनाये रखते और १९५८ में दिल्ली में महा मंडल का अधिवेशन करके महा मंडल की और अपनी दोनों की प्रतिष्ठा को बनाते। महामना श्री राजेन्द्र प्रसाद जी भारत के राष्ट्रपति उस समय महा मंडल के अधिवेशन में पधारते तो महा मंडल की प्रतिष्ठा बढ़ती। किन्तु वह अवसर जान बूझ कर इन्होंने गंवा दिया।

श्री पं० अनन्त त्रिपाठी महोदय का कथन है कि मैंने महा मंडल की प्रधानता ख्याति उपार्जन की इच्छा से स्वीकार्य नहीं की। मैं तो अपने प्रान्त में पहले ही प्रतिष्ठित व्यक्तियों में स्थान प्राप्त कर चुका हूं:—उत्कल विधान सभा का सदस्य हूँ; अनेक विश्व विद्यालयों का सिनेटर हूँ, और अनेक विश्वविद्यालयों का सभ्य हूँ महा मंडल का सभापति बन कर तो "केवलं गर्दभेनेवामितः-कायक्लेशः स्वीक्रियते। महा मंडलस्याधिवेशनेषु उपस्थातुमागतो धनराशि रपि व्ययी क्रियते। एकबारं देहली गमने एकस्य सप्ताहस्य चिकित्साया आयो गच्छति। दीयमाना दैनकी पंचरूप्यात्मिका पूर्ति नव पर्याप्ताभवति। स्वहस्तादधिकं व्ययीक्रियते। प्रतिदिन मे का घटिकाऽपि पत्रलेखनादौ व्ययीक्रियते। एतावत्पर्यन्तं सभापतिभिः पत्रादि लेखवाये कश्चन लेखकः प्रतिमासं पंचाशद्रूप्यकैन्योज्यते। न च मयाकोऽपि नियोजितः सर्वेकार्य स्वहस्तेन निरुह्यते। एतदर्थं सोऽयंभारः कदा गमिष्यति। अधिवेशनं कथमाश सम्पद्यते। एवमप्रत्याशितेभ्यस्तिरस्कारेभ्यः कदा मुक्तो भवेयमितिचिन्तयन्नेव तिष्ठति। तत्र न कोऽपि लाभःप्रत्युत क्षतिरेव कायनी मनसिकी आर्थिकी च वरीवर्ती तादृश पदलाभाय न मेकाऽपि लालसा आसीत् अस्ति वा।" यह सब कथन आपका वाग् विडम्बना है। ख्याति अर्जन की लालसा किसको नहीं? यश प्राप्ति की इच्छा किसको नहीं? आप वीतरागी नहीं, न आप जितसंगदोषः हैं, न आप अध्यात्म चिन्तक हैं, तब शिवशर्मा जैसे धूर्त के सहयोगी बन कर आपके कथन पर कोई व्यक्ति विश्वास नहीं कर सकता।

जिस उत्कल विधान सभा के आप सदस्य हैं क्या वह विधान सभा बिना अधिवेशन बुलाये उसकी कार्यकारिणी को यह अधिकार प्राप्त है कि वार्षिक बजट और आनुमानिक आय व्यय की स्वीकृति दे देती है और जो सदस्य अपदस्थ कर दिये जाते हैं या विधान के अनुसार किसी कारणवशात् अपदस्थ हो जाते हैं क्या वे अधिवेशन में उपस्थित हो सकते हैं? और वे अधिवेशन की कार्यवाही में मत विभाजन में हिस्सा लेते हैं? यदि नहीं तो आपकी प्रधानता में होने वाले अधिवेशनों में पदच्युत व्यक्तियों ने जो भाग लिया यह सब आपकी विधान सम्बन्धी अयोग्यता का सूचक है। जो कुछ मैंने उक्त अवैधानिक कृत्यों पर प्रकाश डाला है। किसी विधानज्ञ से सम्मति लें तब आपको अपनी त्रुटियों का ज्ञान हो सकता है।

इस समय आयुर्वेद पर जो विपत्ति आ रही है सरकार भी जिस आयुर्वेद को प्रच्छन्न रूप से मिटाने में तुली हुई है उसके अधिवेशनों को दो दो वर्ष तक स्थगित करके आपने वैद्य समाज के संगठन को निर्बल बनाने में और विग्रह उत्पन्न करने में शिवशर्मा को पूर्णतया सहयोग दिया है। आप में नैतिकता और साहस है तो आपको निष्पक्ष व्यक्तियों की एक उप समिति बिठा कर मेरे आक्षेपों की जांच करना चाहिये। तभी आप इस कलंक से मुक्त हो सकते हैं इस तरह नहीं। अब आयुर्वेद के शत्रु कौन? इस पर आप स्वयं विचारें।

हरिशरणानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या भारत सरकार आयुर्वेद को मान्यता देगी ?

जब से भारत सरकार ने योजना आयोग की स्थापना की है यह योजना आयोग किसी न किसी बात पर नई योजना भारत सरकार के सामने उपस्थित करती रहती है। उस में से किसी को सरकार मान्यता दे देती है किसी को ठुकरा देती है। आज कुछ मास हुए उस आयोजना आयोग ने आयुर्वेद खण्ड नाम से एक नई संस्था स्थापित की। जिसके कोई २२ सदस्य हैं। इसमें कई प्रतिष्ठित आयुर्वेदज्ञ भी हैं। इस आयुर्वेद खण्ड की एक बैठक पीछे २२ जुलाई को दिल्ली में हुई थी, जिसमें इसके मन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा तथा स्वास्थ्य मन्त्री श्री करमरकर जी भी पधारे थे। उस अधिवेशन ने सरकार से निम्न सिफारिशें की हैं—

(१) आयुर्वेदिक कालेजों का स्तर ऊंचा उठाया जाय, और चार साल का डिप्लोमा कोर्स रखा जाय। कालेजों में भर्ती के लिए न्यूनतम योग्यता निर्धारित की जाय। और जो विद्यार्थी सरकारी नौकरी में जाना चाहें उन्हें दो वर्ष और अध्ययन के बाद डिग्री दी जाय।

(२) स्नातकोत्तर अनुसन्धान केन्द्र खोले जायँ और आयुर्वेद की आवश्यक पाठ्य पुस्तकें तैयार कराई जांय।

(३) आयुर्वेदिक औषधियों का प्रामाणिक निघण्टु तैयार कराया जाय और साधारण बीमारियों के इलाज में काम आने वाली औषधियों की पड़ताल कराई जाय, और केन्द्रीय व क्षेत्रीय जड़ी बूटी के उद्यान लगाये जांय और उनके संग्राहलय खोले जायँ। इस सारी व्यवस्था को चलाने के लिए केन्द्र को चाहिये कि एक अलग संगठन बना कर उसके आधीन एक केन्द्रीय प्रयोगशाला स्थापित करे।

क्या भारत सरकार इस आयुर्वेद खण्ड की सिफारिशें मान लेगी ?

ऐसी आशा दिखाई नहीं देती। इसमें मुख्य कारण वैद्य समाज की अकर्मण्यता है। वह न तो समय की गति को देखता है, न वह समय के अनुसार अपने को बनाने का प्रयत्न करता है। उसे आयुर्वेद के प्राचीन ग्रंथों के सिवाय और कुछ नहीं आता। चिकित्सा क्षेत्र में विज्ञान की सहायता से जो उन्नति हो रही है उसे उसकी कुछ भी जानकारी नहीं। इस समय संसार किस तेजी से अनुसन्धानों की ओर बढ़ रहा है और असाध्य से असाध्य बीमारियों को साध्य बनाया जा रहा है यह उसे कुछ भी दिखाई नहीं देता। हां एक चीज इसमें की उसे अवश्य दिखाई देती है कि प्रति जैवी औषधियों के सूचीभरण से डाक्टरों के पास रोगियों को राजी होते देखता है उन औषधियों को वह प्रयोग में लाने का महान इच्छुक दिखाई देता है। क्योंकि यदि वह भी रोगियों को इसी तरह त्वरित राजी करने में समर्थ हो जाय तो उसकी जीविका आसानी से चल सकती है। इसलिए वह इन औषधियों को व्यवहार में लाने का इच्छुक है। किन्तु इस बात को जानना नहीं चाहता कि जिस ज्ञान विज्ञान के बल पर इन औषधियों का वैज्ञानिकों ने आविष्कार किया उस विधि को जानना नहीं चाहता। वह इनके उपयोग का अधिकार तो मांगता है किन्तु उसे यह अधिकार कैसे दिए जा सकते है ? इन औषधियों के उपयोग के वही व्यक्ति अधिकारी है जिन्होंने रसायन शास्त्र पढ़कर रासायनिक विधियों से इनके निर्माण क्रम को जाना है। जब हम अपनी आयुर्वेद पद्धति से इनके निर्माण को ही नहीं जानते न हम अपनी पद्धति से इनके गुण दोषों को समझ सकते हैं तब हम इन औषधियों के उपयोग के अधिकारी कैसे ? हम तो इनके उपयोग के अधिकारी तभी बन सकते हैं जब हम वैज्ञानिक विधि से इस विषय का अध्ययन करें। किन्तु हम अपने ज्ञान को तो बढ़ाना नहीं चाहते। न उसे आयुर्वेद में सम्मिलित करना चाहते हैं। क्योंकि यदि हम ऐसा करें तो अपने आयुर्वेद के अनेकों कल्पित सिद्धान्तों को छोड़ना पड़ता है। परन्तु आयुर्वेद ग्रन्थों में वर्णित कोई भी सिद्धान्त जो वैज्ञानिक कसौटी पर खरा नहीं उतरता उसे हम छोड़ना नहीं चाहते। जब हमें सत्यासत्य के निर्णय का ज्ञान नहीं, न असत्य को छोड़ना चाहते हैं न सत्य को ग्रहण करना चाहते हैं तब इस स्थिति में सरकार हमें कैसे मान्यता देगी ? यह एक विचारणीय पक्ष है। हम कहते हैं कि आयुर्वेद में समस्त शरीर रचना का पूर्णतया वर्णन है। शरीर क्रियाओं का भी उसमें पूर्णतया वर्णन है। प्राचीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद में कोई त्रुटि नहीं। जब उन धुरन्धर आयुर्वेदज्ञों से पूछा जाता है कि हमारे ग्रन्थों में मस्तिष्क संबन्धी कोई ज्ञान है? जितना इस समय तक जाना जा चुका है? वक्कों के सम्बन्ध में और उनके क्रिया कलापों के सम्बन्ध में हमारे ग्रन्थों में कितना वर्णन है? क्या उतना है जितना इस समय के अनुसन्धान से जाना जा चुका है। आयुर्वेद कहता है कि शरीर में रस अहर्निश परिभ्रमण करता रहता है किन्तु ऐसा दिखाई नहीं देता। उसके स्थान पर रक्त परिभ्रमण करता देखा जाता है। क्या आयुर्वेदज्ञों के पास कोई ऐसे साधन हैं जिससे वह आयुर्वेद ग्रन्थों में लिखी बातों को प्रत्यक्ष दिखला सकें? इसके उत्तर में आयुर्वेद के विद्वान कहते हैं "अनुसन्धान के मूल में तर्क स्थित रहता है। यथार्थ को सिद्ध करने के लिए ही तर्क शास्त्र की रचना हुई थी। वह कहते हैं कि युक्ति तो त्रिकाल सिद्ध है। तर्क ही शंका प्रवर्तक और तर्क ही शंका निवर्तक है। इसीलिए शास्त्र चर्चा आवश्यक है और इसी पर बल दिया जाना चाहिए और प्रकरण के अनुसार शब्दार्थ को ज्ञात करने पर जुट जाना चाहिये। इसके बिना किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता।"

—हरिदत्त शास्त्री

आयुर्वेदज्ञों का यह है अनुसन्धान। क्या इसी के बल बूते पर वे चाहते हैं कि सरकार हमें मान्यता दे देगी, यह सम्भव नहीं। जिन व्यक्तियों को इतनी समझ नहीं कि रिसर्च के मूल में तर्क शास्त्र रहता है। अनुसन्धान और तर्क में अन्तर नहीं समझते ऐसे आयुर्वेदज्ञों के बल पर आयुर्वेद को मान्यता दिलाने का प्रयत्न तो शेख चिल्लियों के स्वर्ग में जाने के तुल्य है।

हम सब कभी इस बात पर विचार नहीं करते कि आयुर्वेद ग्रंथों में शरीर रचना सम्बन्धी व शरीर क्रिया सम्बन्धी जो बातें आई हैं और जो भी सिद्धान्त की बातें हैं उनमें से कौन कौन सी सही हैं। हम इस दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन नहीं करते। सच्चाई को तो हम तभी पा सकते हैं जब कि दोनों पक्षों का तुलनात्मक अध्ययन करें। सरकार के बड़े बड़े अधिकारी आयुर्वेद की विशेषता का गुण गान करके आयुर्वेदज्ञों को बहुत बुरी तरह भुलावे में डाल रहे हैं। आयुर्वेदज्ञ इस स्थिति को जरा नहीं समझते। उनके चकमों में आ जाते हैं और आयुर्वेद को सर्वांगपूर्ण मानते चले आते हैं। हम दबी जबान से शल्य, शालाक्य की कमी को तो स्वीकार करते हैं किन्तु उसे लिया कैसे जाय और आयुर्वेद में उसे मिला कर आयुर्वेद को सर्वांग पूर्ण कैसे बनाया जाय? इस पर जरा विचार नहीं करते।

भारत सरकार मूर्खों की मंडली नहीं है

यदि भारत सरकार हमारे आयुर्वेद सिद्धान्त को जिस रूप में है यदि मान ले तो इसका अर्थ यह है कि वह एक ऐसे सिद्धान्त को मान्यता दे रहे हैं जो पूर्णतया विज्ञान सम्मत नहीं। इसका परिणाम क्या हो सकता है? कभी किसी ने सोचा है। इससे भारत सरकार की प्रतिष्ठा को बहुत बड़ा धक्का लग सकता है। ऐसी सरकार को अन्य सरकारें विचारवान नहीं कह सकतीं। संसार में विज्ञान का इतना बोलबाला है कि प्रकृति से लेकर उससे परे की सूक्ष्म वस्तुओं तक को जब प्रत्यक्ष कर लिया गया हो और उस सरकार के यहां बड़े बड़े वैज्ञानिक विद्यमान हों उनकी उपस्थिति में असिद्ध सिद्धान्तों को मानना तो अपने को मूर्ख बनाना है।

हम आयुर्वेद सिद्धान्तों में सरकार का हस्तक्षेप सहन नहीं करते

वैद्य समाज विज्ञान से बिलकुल कोरा कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं। किन्तु हम सब स्वयं तो आयुर्वेद ग्रन्थों में कुछ संशोधन करने में समर्थ नहीं पर किसी और का भी इसमें हस्तक्षेप बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं। सरकार के बड़े बड़े अधिकारी कहते हैं कि आयुर्वेद को विज्ञान सम्मत बनाया जाय जो सिद्धान्त असिद्ध हैं उन्हें ग्रन्थों से निकाल दिया जाय और अपनी संहिताओं का नए सिरे से प्रति संस्कार किया जाय अथवा विज्ञान सम्मत नये सिरे से ऐसे ग्रन्थ निर्माण कराये जायें जो आधुनिक समय की आवश्यकता पूरी कर सकें। हम स्वयं तो ऐसे ग्रंथों का निर्माण करने में समर्थ नहीं, किन्तु सरकार द्वारा कराने के लिये भी तैयार नहीं। न हम सरकार से यह कहना चाहते हैं कि तुम्हीं उभयज्ञ विद्वानों से ऐसे ग्रन्थों की रचना कराओ। हमें डर है कि यदि यह उभयज्ञ ग्रन्थों का निर्माण करेंगे तो हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन प्रसिद्ध सिद्धान्तों को निकाल कर ऐसे सिद्धान्तों को रख देंगे जो पाश्चात्य हैं। वह पाश्चात्य और भारतीय ज्ञान को भिन्न भिन्न समझते हैं और वह यह भी विश्वास करते हैं कि इनका समन्वय हो नहीं सकता। वैद्य समाज यह नहीं समझता कि सत्य वह है जो त्रिकाल में सत्य ही रहे। पाश्चात्य और भारतीय विचार धाराएं दोनों सत्य नहीं हो सकतीं। हम इस पर कुछ उदाहरण रखते हैं:—

भारतीय शरीर रचना पाँच तत्वों से हुई मानते हैं। पाश्चात्य प्रयोग जन्य ज्ञान से इसकी पुष्टि नहीं होती। इस समय मानवी शरीर रचना में कम से कम १६ तत्व काम आए देखे जाते हैं। हम आज तक पांच तत्वों से शरीर के निर्माण प्रक्रिया को दिखाने में असमर्थ हैं। किन्तु वैज्ञानिक अपने कहे १६ तत्वों को शरीर के अवयवों का विश्लेषण कर प्रत्यक्ष दिखला देते हैं। ऐसी दशा में संसार हमारी बात मानेगा कि वैज्ञानिकों की। इस प्रयोग जन्य काल में हमारा पंचतत्ववाद पंचत्व को प्राप्त हो चुका है। किन्तु हम मोहवश उस मुर्दे से अभी तक चिपके हुए उसे छोड़ना नहीं चाहते। ऐसी स्थिति में हमें सरकार कैसे मान्यता देगी।

दूसरा उदाहरण:—हम शरीर को एक आत्मावाला विश्वास करते चले आ रहे हैं किन्तु यह शरीर एक आत्मावाला है? या कि अनेकों आत्मावाला? इसको हम किसी साधन से जान नहीं सके हैं। उधर वैज्ञानिक कहते हैं कि शरीर एक आत्मा वाला नहीं, समस्त चराचर प्राणी एक आत्मा वाले नहीं। प्रत्युत अनेकों आत्माओं के समूह से इस रूप में प्रतिभासित होते हैं। इसको प्रयोगों द्वारा निम्न विधि से वे दिखला देते हैं। शरीर के कुछ अंग भाग को काट कर भिन्न यन्त्रों में सुरक्षित रख कर उन्हें काफी समय तक जीवित रखते हैं। जब शरीर का कटा भाग काफी समय तक जीवित रह सकता है तो ऐसी दशा में "अच्छेद्यो यमदाह्यो" का सिद्धान्त उड़ गया। आधुनिक काल की गर्भ वृद्धि के क्रम द्वारा प्रत्यक्ष दिखलाया जा सकता है कि गर्भ वृद्धि उन सजीव कोषाओं के विभाजन से होती है जो एक आत्मा वाले होते हैं। यह एकात्मा वाले को ही कोषा के नाम से पुकारते हैं। कोषा वृद्धि के द्वारा शरीर रचना में एक आत्मा से अनेकों आत्माएं इस शरीर में विकसित होती चली जाती हैं। किन्तु हम इस प्रयोग जन्य सिद्धान्त को न मान कर उस एकात्मवाद से ऐसे चिपके हुए हैं कि उसे छोड़ना नहीं चाहते। ऐसे असिद्ध सिद्धान्तों से चिपके रहने पर हमें सरकार कैसे मान लेगी? यदि वह इस स्थिति में हमें मान्यता दे दे तो यही समझा जायगा कि वह भी हमारी श्रेणी में आ गई।

हमारा काम वैद्यों को तर्क से प्रसन्न करना नहीं है। हम तो चाहते हैं कि वैद्य समय की स्थिति को देख कर अपने को बदलें और उसी तरह विश्व के समस्त ज्ञान विज्ञान का अर्जन कर आयुर्वेद की समृद्ध बनावें। तभी आयुर्वेद का कल्याण है। फिर आयुर्वेद को बिना किसी प्रेरणा के मान्यता मिल सकती है।

हृदय के रक्त प्रवाह को मापने वाला यन्त्र

हृदय में रक्त का संचार एक तो पम्प के रूप में होता है अर्थात् हृदय समस्त शरीर में रक्त संचार का एकमात्र प्रधान अंग है। दूसरे उसमें पोषणार्थ जो रक्त पहुँचा करता है उस रक्त का मार्ग दूसरा होता है। वह पोषक धमनियां अन्य मार्ग से आती हैं। और उसमें कोई बाधा आती है तो हृदय के रोग होने का भय होता है। किन्तु कपाटों के भीतर होकर जो रक्त प्रवाह होता रहता है इन कपाटों की गति ठीक से हो रही है कि नहीं इसको यद्यपि जानने की कई यान्त्रिक विधियां थीं किन्तु बाम कपाट के कार्य को जानने की कोई उत्तम विधि नहीं थी कि वह ठीक से काम कर रहा है कि नहीं। जब से रश्मि ग्राही और रश्मिविकीरक यन्त्रों का आविष्कार हुआ है इससे देखने जांचने का प्रयत्न होने लगा है। अभी ताजी अमेरिकन रिपोर्ट जो अमेरिकन मेडिकल एसोसियेशन की बैठकों में जो आविष्कारों की रिपोर्ट पेश की गई थी उसमें यह बताया गया है कि रश्मिविकीरक गाइगर कौन्टर में सुधार कर एक ऐसा यन्त्र निर्माण कर लिया गया है कि हृदय पर उसे लगाने से बाम कपाट में रक्त का संचार किस रूप में हो रहा है इसका सही ज्ञान हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक नई चिकित्सा पद्धति का आविष्कार

ध्वनि और पराध्वनि तरंगें

ध्वनि या शब्द को आयुर्वेदज्ञों ने आकाश का गुण माना है। वस्तुतः ध्वनि आकाश का गुण नहीं है। हमारी दार्शनिक विचारधारा किसी प्रयोग जन्य ज्ञान पर आधारित नहीं थी। यह तो अनुमान जन्य कल्पना से ऐसा मान लिया गया था। जब प्रयोग द्वारा इसकी खोज आरम्भ हुई तो ज्ञात हुआ कि किसी चीज से किसी चीज पर आघात करने से जो शब्द उत्पन्न होता है वह हवा के माध्यम से चल कर जब हमारे कान के पर्दे से टकराता है तब कान के पर्दे प्रकम्पित होते हैं और उसकी प्रतिक्रिया जब नाड़ी मंडल पर होती है उससे मस्तिष्क द्वारा हमें शब्द बोध होता है।

ध्वनि की परिभाषा

हवा मंडल के क्षेत्र में जब हम किसी चीज से आघात करते हैं या अपने कंठ, तालु प्रदेश और जिह्वा को गतिमान कर इन अंगों को परस्पर आघातित करते हैं तो उस समय जो ध्वनि उत्पन्न होती है उस ध्वनि से वायु मंडल के कण प्रकम्पित हो उठते हैं। उससे हवा में जो तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं वही जब हमारे कान तक पहुँचती हैं तब ध्वनि के रूप में या शब्द के रूप में सुनाई देती हैं। यह आघात जितना न्यून होता है उतनी ही उसकी ध्वनि तरंग छोटी उठती है और जितना अधिक जोर से वह आघात होता है उतनी ही उसकी ध्वनि तरंग बड़ी तीव्र होती है। ध्वनि के लिए किया गया द्रव्याघात जो हवा में प्रकम्पन उत्पन्न करता है उससे जो हवा में तरंगें बनती हैं वह तरंग कम्पन यदि २० बार प्रति सैकण्ड हो या, इससे अधिक २०००० तक हो तो इस सीमा का कम्पन हमारे कान ग्रहण करने में समर्थ रहते हैं। यदि ध्वनि द्वारा उठा कम्पन इतनी लघु तरंगें उत्पन्न करे कि प्रति सेकेण्ड २० से कम उसकी तरंगें हों या इतनी अधिक हों कि बीस हजार से अधिक प्रति सेकेण्ड की तरंगें उठें तो वह तरंगें हमारे कान नहीं सुन सकते, दार्शनिकों को इस बात का पता नहीं चला था कि वस्तुओं के संघर्ष से या आघात से जो शब्द उठता है उससे हवा में कम्पन पैदा होता है। उस कम्पन का प्रभाव हवा मंडल पर भी होता है और हवा में भी उस कम्पन से तरंगें उत्पन्न हुआ करती हैं। यह नव्य साधनों से ही देखा व समझा गया कि जैसे किसी वस्तु के आघात से जल में तरंगें उठा करती हैं ठीक इसी तरह हवा में भी उठा करती हैं। और इन हवा में उठी तरंगों में छोटी बड़ी उसी तरह की तरंगें उठ सकती हैं जैसे जल में। और इन तरंगों को कुछ सीमा तक ही हमारे कान ग्रहण कर सकते हैं इस को प्रयोगों से ही इस शताब्दी में जाना जा सका। जिन ध्वनियों की तरंगें २० से कम या २० हजार से अधिक हैं उन उन को हमारे कान नहीं सुन सकते ऐसी ध्वनि तरंगों को परा ध्वनि तरंगें कहते हैं।

इन पराध्वनि तरंगों का उपयोग कैसे ज्ञात हुआ

आपने देखा कि रेल के पुलों पर कहीं कहीं पोले नल (पाइप) पुलों के ऊपर से होकर आर पार तक जाते हैं यदि वे नल पूरी तरह से बन्द हों तो उस नल के एक ओर कोई ध्वनि करे और दूसरी ओर कोई दूसरा आदमी कान लगा कर उस ध्वनि को सुने तो वहाँ बड़ी साफ-साफ ध्वनि पहुँचती रहती है। इसी तरह कोई बालक एक बारीक धागा काफी लम्बा लेकर उसके दोनों सिरों पर एक एक चोंगा ऐसा बांधें कि धागे का सिरा उस चोंगे के बीच में रहे एक आदमी को काफी दूर खड़ा करके एक सिरा चोंगेवाला उसे दे दें और दूसरा आदमी दूसरा सिरा लेले। एक आदमी कान लगा ले और दूसरा मुंह लगा कर उस चोंगे में ध्वनि उत्पन्न करे तो दूसरे आदमी को उस धागे में से शब्द की तरंगें चल कर उसके कान तक पहुँचेंगी और वह दूसरे की बात को साफ साफ सुनेगा।

इससे इस बात का पता चला कि ध्वनि को किसी आधार पर सीधी रेखा में चलाना चाहें तो वह चल सकती है। और यह भी ज्ञात हुआ कि वह सीधी एक रेखा में हजारों मील जा सकती है। इसी अनुभव के आधार पर टेलीफोन और टेलीग्राफ आदि स हम ध्वनि को उपयोग में लाने में समर्थ हुए। यह भी ज्ञात हुआ कि जैसे हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्पण द्वारा प्रकाश को परावर्तित कर लेते हैं इसी तरह ध्वनि को भी दर्पण द्वारा परावर्तित कर एक स्थान पर उसे एकत्रित किया जा सकता है। प्रयोगों से देखा गया है कि जब ध्वनि को किसी एक स्थान पर केन्द्रित किया जाय तो कम्पन गति की क्षमता के अनुसार ही उसमें पूर्ण शक्ति विद्यमान रहती है। और उसकी शक्ति से बड़े बड़े काम लिए जा सकते हैं। इसी बात के ज्ञान ने पराध्वनि तरंगों के उपयोग का मार्ग प्रस्तुत कर दिया और वैज्ञानिकों ने परा ध्वनि उत्पादक यन्त्र निर्माण की ओर ध्यान दिया।

पराध्वनि उत्पादक यन्त्र का निर्माण

वैक्रान्त के षट् पहलू दार इंच डेढ़ इंच मोटे बड़े बड़े रवों को लेकर रुपये के बराबर उनके पतले-पतले टुकड़े काट कर उन्हें विद्युदावेशी बनाया गया और जब वे टुकड़े विद्युदावेशी हो गए तब वे पास-पास इस स्थिति में रखे गये कि उनमें विद्युदावेश के कारण कम्पन या गतिशीलता आ जाय। उन वैक्रान्त टुकड़ों के इस विद्युदावेश द्वारा कम्पित होता रहने से हवा में प्रति सेकण्ड २० लाख कम्पन की तरंगें उत्पन्न हो उठती हैं। इस पराध्वनि को एक सीधी रेखा में जब चला कर एक केन्द्र पर एकत्रित किया जाता है तो यह बड़ी ही प्रभाव शाली सिद्ध होती हैं। इस यन्त्र में सुधार कर अब तो ऐसे यन्त्र बनाये जा चुके हैं जिनकी कम्पन गति प्रति सेकेन्ड एक सहस्र करोड़ कम्पन वाली परा ध्वनि उत्पन्न कर सकती हैं। इन यन्त्रों का निर्माण भारत में भी होने लगा है। पाठक कहेंगे कि जो ध्वनि सुनाई नहीं देती उस ध्वनि को कैसे जाना गया? यहाँ पाठक इतना ही समझ लें कि वैक्रान्त के कुछ रवे ऐसे बनाये गये जिनके द्वारा कम्पन से उठी उस ध्वनि को जाना जा सकता है। इससे भिन्न रेडियो द्वारा भी पराध्वनि को सही-सही मालूम किया जा सकता है।

पराध्वनि तरंगों का उपयोग

हम ऊपर बतला चुके हैं ध्वनि को एक सीधो रेखा में चलाया जा सकता है और इसे दर्पणों के द्वारा परावर्तित कर किसी एक केन्द्र पर एकत्र भी किया जा सकता है। अब तो ऐसे यन्त्र निर्मित हो गये हैं कि जिनमें इच्छानुसार जहां चाहें पराध्वनि तरंगों को एकत्र कर मीलों दूर के एक निश्चित स्थान पर उनका प्रहार किया जा सकता है। सबसे पहले इन पराध्वनि तरंगों का प्रहार छोटी-छोटी मछलियों व कीड़ों मकोड़ों पर किया गया। इन पराध्वनि तरंगों की कम्पन गति इतनी तीव्र थी कि जब यह उन कीड़ों मकोड़ों और मछलियों पर पड़ी तो वे मिनटों में ही दम तोड़ बैठे। देखा गया कि इन पराध्वनि तरंगों की कम्पन गति इतनी तीव्र थी कि उससे इन प्राणियों के अंग व अवयव सब चूर्ण विचूर्ण हो गये। उन मृत प्राणियों के अंगों को देखा गया कि इन पराध्वनि तरंगों का इन प्राणियों के शरीर पर किस रूप में प्रभाव पड़ा है उनका छेदन भेदन किया गया तो ज्ञात हुआ कि इन पर पराध्वनि तरंगों की तीव्रता का यह प्रभाव हुआ है, कि उनके भीतर के पदार्थ रक्त, मांस आदि की कक्षाओं में पराध्वनि तरंगों ने अपनी कम्पन गति की तीव्रता से ऐसा संघर्ष उत्पन्न किया है जिससे उनके आन्तरिक चिद्रस रगड़ खा कर इतने उत्तप्त हो उठे कि वह झुलस कर निर्जीव हो गये।

इन पराध्वनि तरंगों के गुणों का महत्व

देखा गया है कि इन पराध्वनि तरंगों को जिस माध्यम पर बहाया जाय इनके दो गुण सदा स्थिर रहते हैं (१) जिस माध्यम में यह चल रही हों उनकी जो कम्पन गति है। उसकी तीव्रता सदा स्थिर रहती है। (२) इसको दूर दूर तक भेजने पर अपनी पूर्ण शक्ति से यह वहां तक पहुँचकर प्रहार करती हैं। मान लीजिए हम जल के माध्यम पर पराध्वनि तरंगों को भेजते हैं तो यह जितनी वेग से जल में छोड़ी जाती हैं, उतनी तीव्र कम्पन की गति से जल में अणुओं को अपनी तीव्र चाल के साथ आगे बढ़ाती हैं किन्तु उस जल के अणुओं में स्थिति स्थापकत्व का गुण होता है वह उतनी शीघ्रता से पुनः अपने स्थान पर वापस आ जाते हैं अर्थात वे अणु पराध्वनि कम्पन के अनुसार लाखों बार आगे पीछे होते रहते हैं। यही बात उन छोटे छोटे प्राणियों के शरीर के भीतर जो इन तीव्र तरंगों के प्रहार से प्रताड़ित होते हैं होती है उनका रक्त, मांस का निर्माता चिद्रस टूट कर निर्जीव हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या यह जीवाणुओं कीटाणुओं को मार सकती हैं ?

दूध जिसमें सन्धानकारी कीटाणु पहुँच गये हों उस दूध में इन पराध्वनि तरंगों को छोड़ा जाय तो दो मिनट के पहले ही उसमें विद्यमान सारे कीटाणु मर जाते हैं। सड़ते हुए फलों पर आपस में इन पराध्वनि तरंगों का प्रहार किया गया तो दो मिनट में ही सड़ाने वाले कीटाणु समाप्त हो गये। इस अनुभव के आधार पर यह जानने का प्रयत्न हुआ कि जैवी कृषि के पात्र में जिसमें एक निश्चित जाति के कीटाणु रोपे गये थे और उनकी कृषि खूब बढ़ रही थी उस कृषि के पात्र में जब इन पराध्वनि तरंगों का प्रहार किया गया तो क्षणों में ही सारे के सारे कीटाणु मर गये। इस जैव सहित द्रव का उपयोग अन्य प्राणियों पर करके देखा गया इसके उपयोग से उसी तरह उस प्राणियों में क्षमता शक्ति जाग्रत हुई जिस तरह पर प्राणियों में उन जीवाणुओं के सूचीवेध देकर उनकी लसिका में क्षमता उत्पन्न होती है।

मनुष्यों पर पराध्वनि का उपयोग

आमवात के ऐसे रोगियों पर जिनके जोड़ों में शोथ हो रहा था और दर्द के मारे तड़प रहे थे उनके उन सन्धि स्थलों पर इन पराध्वनि तरंगों का उपयोग किया गया तो इसमें उन रोगियों को चमत्कृत लाभ हुआ। देखा गया कि जो अपद्रव्य उन सन्धि स्थानों में संचित हो रहे थे पराध्वनि तरंगों के प्रभाव से वे अपद्रव्य जल गये और रक्त में मिलकर स्थानान्तरित हो गये इसी से उन रोगियों की सूजन और दर्द बिल्कुल ही जाता रहा। कई बार धमनियों सिराओं में जहाँ तहाँ रक्त जम कर उनका मार्ग रोक देता है, इससे रक्त संचार में बाधा आ जाती है। पराध्वनि तरंगों का उस जमे हुए रक्त पर प्रहार करने से उसके दृढ कण उन तरंगों की मार से टूट गए और वह रक्त प्रवाह में पड़कर स्थानान्तरित हो गये। इससे रोगियों को महान लाभ हुआ। दन्त चिकित्सकों ने खराब दांतों को उखाड़ने के लिए जब दन्तवेष्ट पर इन पराध्वनि तरंगों का प्रवाह किया तो उस खराब दांत के सारे बन्धन ढीले पड़ गये इससे दाँत उखाड़ने में इतनी अधिक सुविधा हुई कि रोगी को दाँत निकलवाने में जरा भी कष्ट का अनुभव नहीं हुआ। जिन व्यक्तियों के दाँतों में गढ़े पड़ गये थे और उन्हें भीतर से साफ करना कठिन था इन पराध्वनि तरंगों का प्रहार जब उस दन्त के खोखले भाग पर किया गया तो उसमें जितनी भी मैल जमी हुई थी इन तरंगों के प्रहार से सब छुट गई। किसी व्यक्ति के यकृत में कर्कट व्रण (कैंसर) था प्रयोग कर्ता ने उक्त निश्चित स्थान पर इन पराध्वनि तरंगों का प्रहार किया इससे वह कर्कट व्रण जल गया और रोगी ठीक हो गया। इसी तरह एक व्यक्ति के मस्तिष्क में विद्रधि (रसोली) थी प्रयोग कर्ता ने ऐसी विधि से उस विद्रधि तक पराध्वनि तरंगों को पहुँचाकर उसका जो प्रहार किया तो वह विद्रधि बिना शल्य क्रिया के ही समूल नष्ट हो गई। जैवों द्वारा जो जैवी औषधियाँ पेंसिलीन आदि तैयार की जाती हैं इन सूचीवेध औषधियों के निर्माण में भी इन पराध्वनि तरङ्गों का उपयोग होने लग पड़ा है। इससे निरुपद्रव वह औषधियाँ बनने लग रही हैं।

अन्य व्यवसायों में पराध्वनि तरंगों का उपयोग

पराध्वनि तरंगें जिस माध्यम पर चलती हैं उसके अणुओं में अपने तीव्र कम्पन से इतनी हल चल मचा देती हैं कि उसमें किसी और वस्तु के कण हों तो वह भी टूट कर बहुत छोटे हो जाते हैं। बहुत से ठोस द्रव्य होते हैं जो द्रव में सरलता से नहीं मिलते, क्योंकि ठोस द्रव्य के कण इतने स्थूल होते हैं जो द्रव में विलय नहीं हो पाते। ऐसे अविलेय द्रव्यों पर जब पराध्वनि तरंगों का उपयोग किया गया तो उस ठोस द्रव्य के कण पराध्वनि तरङ्गों के कम्पन प्रभाव से टूट कर इतने सूक्ष्म रूप में आ गये कि उस द्रव्य में विलयी हो गये। फोटोग्राफी के कुछ विलयन जो फिल्मों में व्यवहृत होते हैं वे द्रव्य इतने विलयी होने चाहियें कि विलायक में तद्रूप हो जाने चाहिये। पराध्वनि तरंगें इन विलयनों को तैयार करने में महाव उपयोगी पाई गई हैं। इन तरंगों की इस विशेषता को देखकर द्रवीय रङ्ग रोगन बनाने वालों ने पेंट तैयार करने में ध्वनि तरंगों का जब उपयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया तो उससे इतने बढ़िया पेंट के रोगन तैयार हुए कि आज तक इतने बढ़िया अत्यन्त घोटाई से भी कभी तैयार नहीं हो सके थे। इस सफलता को देखकर रसायन शास्त्रियों ने भी अनेकों रासायनिक यौगिक निर्माणार्थ जब इन पराध्वनि तरंगों का उपयोग किया तो इसके प्रभाव से जितने उत्तम यौगिक आसानी से निर्मित हो सके इतने किसी और विधि से बनने सम्भव नहीं थे। तब तो विलायत की बड़ी बड़ी औषध निर्माता कंपनियों ने औषध निर्माणार्थ इनका उपयोग किया इनके प्रभाव से वे औषधियां उत्तम निर्मित हुईं।

क्या ध्वनि तरंगें कपड़ों पर से भी मैल उतार सकती हैं

इसकी परीक्षा एक विलायत की वाशिंग फेक्टरी ने जब की तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, कि बिना कपड़ों को मशीन में घुमाये फिराये ही इन पराध्वनि तरंगों ने उन कपड़ों पर से सारा मैल उतार दिया। उस फेक्टरी वाले ने क्या किया था कि एक बाल्टी में पानी का घोल डालकर उसमें मैले कपड़े डाल दिये और यन्त्र द्वारा उस घोल में पराध्वनि तरंगों का प्रहार किया, उन तरंगों ने कपड़ों पर लगे मैल को प्रतिसैकेन्ड करोड़ों बार झकझोरना आरम्भ किया मैल के कण टूट कर पानी में घुलते चले गये और कुछ ही क्षणों में सारी मैल कपड़ों से छूट कर साबुन के घोल में आगई। कुल दो मिनट में ही इन पराध्वनि तरंगों ने सारे कपड़े साफकर दिये केवल उन्हें स्वच्छ पानी में ही निकालने का काम रह गया।

घड़ियाँ भी इससे साफ होने लगी—बड़े बड़े क्लाक और सूक्ष्म से सूक्ष्म घड़ियाँ पैट्रोल में डाल दी गईं और उस पर पराध्वनि तरंगों का प्रहार किया गया। उसने क्षणों में ही घड़ी के पुर्जों पर से सारी मैल दूर कर दी।

दूध, फल, सब्जी आदि को भी जैव रहित किया जा सका—दूध का प्रायः सुरक्षित रखने के लिए प्रायः पाश्च्युराइजेशन किया जाता था जिसमें बड़े साधनों की जरूरत होती थी, पराध्वनि तरंगों के प्रभाव से मिनटों में ही जब दूध कीटाणुओं से रहित हो गया तो इधर इसका उपयोग भी होने लगा। देखा गया कि पराध्वनि तरंगों के प्रभाव से दूध के अपने निजी अवयव भी सूक्ष्म कणों में विभक्त हो जाते हैं इससे दूध शीघ्र पच जाता है। जिन व्यक्तियों या बालकों को दूध हजम नहीं होता था उन्हें पराध्वनि तरंगों से प्रहारित दूध जब दिया गया वह हजम होने लगा। पराध्वनि तरंगों से प्रभावित दूध को काफी अर्से तक सुरक्षित रखा गया वह जैसा का तैसा ही बना रहा। उसमें किसी प्रकार की कोई विकृति नहीं आई। फलों, सब्जियों को इससे सुरक्षित करने पर महीनों तक फल खराब नहीं हुए। यदि उन्हें रेफ्रीजिरेटरों में रख दिया जाय तो उनका स्वाद भी ताजा जैसा ही बना रहता है। कृषकों ने रोपणार्थ बीजों को इन पराध्वनि तरंगों द्वारा प्रभावित कर उस बीज को जब बीजा उससे कृषि में वृद्धि हो गई। पराध्वनि तरंगों से प्रभावित अनेक खाद्य द्रव्यों का निरीक्षण करने पर ज्ञात हुआ है उनके कण भी छोटे होवे हैं। हमारे उदर में जाकर पचन के नाम से क्रम युक्त व्यवस्था चलती है उसमें भी यही होता है कि खाद्य द्रव्यों के कण टूटकर छोटे होते चले जाते हैं तभी वे विलयशील बन जाते हैं जब तक खाद्य द्रव्यों के कण विभक्त होकर छोटे न हों वह अपचय रूप में ही बने रहते हैं। पचने का अर्थ है खाद्य द्रव्यों के कण टूट कर छोटे हो जांय और वह इस रूप में आ जाय कि द्रव में मिलकर विलयशील हो शोषित होने योग्य हो जाय। बस इसी का नाम पचन है। यह क्रिया हमारे उदर के भीतर विकरों के द्वारा सम्पन्न होती है किन्तु जो काम उदर के अन्दर होने वाला हो यदि वह बाहर ही पूर्ण कर दिया जाय तो वह खाद्य द्रव्य उदर में जाते ही शीघ्र ही विलय हो जायगा और उसका शोषण शीघ्र होगा। अर्थात ऐसे खाद्य को पचा हुआ खाद्य माना जायगा। पराध्वनि तरंगें जब किसी खाद्य द्रव्य पर डाली जाती हैं तो उसका प्रभाव यही होता है कि वह तरंगें अपने तीव्र कम्पन से उसके कणों पर ऐसा जबर्दस्त प्रहार करती हैं कि उसके कण टूटकर छोटे से छोटे होते चले जाते हैं और उनका शोषण भी खूब होता हैं। और शरीर के कोषाणुओं की क्षयपूर्ति में बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इसी से वे खाद्य द्रव्य सुपाच्य हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह इतना प्रभावशाली कार्य है जिसका अन्दाजा लगाना कठिन है। यह कितना भारी उपयोगी आविष्कार है जिससे चिकित्सा के क्षेत्र में क्रान्ति आने की सम्भावना है।

हमारे आहार में विकृति कोई उत्पन्न करते हैं तो वह एक मात्र कीटाणु ही करते हैं। हम अपने खाद्य को खुला रखदें तो कुछ क्षणों में हवा के मार्ग से या धूल के मार्ग से वे सर्वव्यापि कीटाणु उस खाद्य में चट प्रवेश कर जाते हैं और थोड़ी ही देर में वे उस खाद्य को दूषित कर देते हैं। वह हमें आंख से तो दिखाई नहीं देते। जब उस खाद्य को हम खा लेते हैं उसी के खाने से हैजा पेचिस आदि बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं। किन्तु यह पराध्वनि तरंगें उस खाद्य द्रव्य पर जब छोड़ी जाती हैं तो पहले उनका प्रहार उन कीटाणुओं पर होता है, वह मर जाते हैं और फिर साथ ही उस खाद्य के कण उन तरंगों के प्रहार से टूट कर छोटे से छोटे होते चले जाते हैं जिससे वह बिना पाचक रसों की सहायता के ही पच्यमान होते हैं और उदर में पहुँचते ही शरीर के उपयोग में आ जाते हैं। यह कितनी भारी क्रान्तिकारी बात है। मनुष्य के शरीर में आहार द्वारा रोगकारी कीटाणु जब शरीर के भीतर नहीं पहुँचेंगे तो मनुष्य स्वतः अनेक रोगों के आक्रमण से बचा रहेगा।

यह तरंगें धातुओं को भी काट सकती हैं

जिस तरह से आरी द्वारा हम लोहे से लोहा काटते हैं या बर्मे से लोहे में छेद करते हैं यह कटने वाला लोहा कठोर हो तो वह आरी से नहीं कटेगा, बर्मे से उसमें छेद नहीं पड़ेगा। ऐसी कठोर धातु को काटने या उसमें छेद करने के लिए इस पराध्वनि उत्पादक यन्त्र में घर्षणशील छड़ ऐसी लगा दी जाती है जो इंच का दससहस्रवां भाग तक घटती बढ़ती रहती है। यन्त्र के चालू करने पर इसकी रगड़ से कठोर से कठोर लोहा भी कटता चला जाता है और छेद करना हो तो उसमें छेद भी करता चला जाता है।

यह तरंगें टांका भी लगाती हैं

इन पराध्वनि तरंगों से एक ऐसी मशीन का संचालन किया जा सका है कि जिसके द्वारा स्टेनलेसस्टील के बर्तन और अल्यूमीनियम के बर्तन को जिनमें टांका लगाना कठिन था यह तरंगें उसमें आसानी से टाँका लगा देती हैं। अल्यूमीनियम जैसी धातुओं पर जो ऊष्मजन की परत चढ़ी होती है उसे अभी तक किसी तरह से हटाना संभव नहीं था, जब तक यह परत न हटे टांका लग नहीं सकता। यह पराध्वनि तरंगें एक सेकेन्ड में ४०-५० हजार बार जब उस धातु सतह पर कम्पन द्वारा घर्षण करती है तो ऊष्मजन की परत आसानी से फट जाती है और उसमें फिर जोड़ भी लग जाता है। यह कितनी भारी करामात है। एक पतली और एक मोटी धातुओं की चादरें हों उन्हें भी वैल्डिंग करना कठिन था अब पराध्वनि समन्वित एक ऐसी मशीन बन गई है जिसके द्वारा असम जोड़ों पर धातु के पतले वर्क रख कर इस पराध्वनि तरंगों वाली मशीन को जब चालू करते हैं तो असम परत वाली परत भी जुड़ कर एक बन जाती हैं।

यह तरंगें चित्रकारी भी करती हैं

शीशों की प्लेट पर या तंगस्तन, तन्तुलम, टीटेनम जैसी कठोर धातुओं की प्लेट पर चित्रकारी करना बहुत कठिन था। पराध्वनि तरंगों द्वारा यन्त्र संचालित करने पर इन धातुओं पर बड़ी आसानी से खरोंचन विधि से चित्र प्रस्तुत किये जाने लगे हैं।

आज से कुल २० वर्ष पूर्व इन पराध्वनि तरङ्गों का आविष्कार हुआ था इस थोड़े से अर्से में इन तरंगों द्वारा अनेकों काम लिये जाने लगे हैं सूचीवेध की सुईयां इससे साफ की जाने लगी हैं।

यन्त्रों की चिकनाई इसकी सहायता से दूर की जाती है। कोई यन्त्र या पुर्जा यदि कहीं से टूट गया है उसमें दरार आ गई है तो इन्हीं पराध्वनि तरंगों से आसानी से पता लग जाता है। इस तरह से हर क्षेत्र में इनकी उपयोगिता बढ़ रही है।

संसार किस तेजी से चिकित्सा के क्षेत्र में उन्नति कर रहा है, जो "भूतो न भविष्यति" किन्तु आयुर्वेद के नेता शुद्ध आयुर्वेद का अभी तक नारा लगा कर वैद्य समाज को उल्लू बनाये रखने का प्रयत्न करते चले आ रहे हैं यह कितने दुःख की बात है। वैद्य समाज जब तक संसार की उन्नति के साथ अपने आयुर्वेद को इस उठे स्तर तक नहीं ले आता तब तक वैद्य समाज का कल्याण नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण

मनुष्य शरीर की रचना ऐसी सूक्ष्म कोषाओं के समूह से हुई है जिन्हें शरीर रूपी गृह की इकाई माना जाता है। इन कोषाओं के साथ अन्य कोषाएं संयोजक द्रव्यों से जुड़कर तन्तुओं का निर्माण करती हैं। उन तन्तुओं के समूह से शरीर के अवयवों का रूप बनता है उन अवयवों के मेल से अंग प्रत्यंगों का निर्माण होता है। उसी तरह जैसे ईंटों और गारे के मेल से मकान।

जिन कोषाओं के समूह से मानव शरीर का आकार प्रकार बनता है वैज्ञानिकों ने ढूंढ खोज कर ज्ञात किया है कि इन्हीं कोषाओं से विश्व के समस्त प्राणी निर्मित हुए हैं। अर्थात् विश्व के प्राणी जगत् का विकास इन्हीं कोषाओं के द्वारा हुआ है। आदि में यह कोषाएं जब प्रादुर्भूत हुई थीं तो सब स्वतन्त्र इकाई के रूप में हा थीं। उस समय यह अमर थीं क्योंकि इनकी उत्पत्ति रज वीर्य के सम्मेल से नहीं होती थी। प्रत्युत जब एक कोषा खा पी कर बढ़ती थी तो स्वतः एक से दो भागों में विभक्त हो जाती थी। वह कोषा एक ही बार एक से दो बन कर नहीं रह जाती थी प्रत्युत परिस्थिति अनुकूल बनी रहे तो २४ घंटे में २८-३० वार तक जब २ खा पीकर बढ़ती दो भागों में विभक्त हो जाती थी। यह विभाजन उसमें अनगणित बार होता रहता था, इसी से न वह कभी वृद्ध होती थी, न मरती थीं। इस प्रकार के आज एक कोषा प्राणी एक दो प्रकार के नहीं सैंकड़ों प्रकार के पाये जाते हैं जो अमर हैं यही एक कोषी जिनसे जीवों का विकास हुआ जंगम जगत् के आदि जैव कहलाते हैं जिन्हें जीवाणु कहते हैं। और एक कोषी जैव जिनसे स्थावर वर्ग का विकास हुआ उन्हें कीटाणु कहते हैं। यह प्राणी न वृद्धावस्था में जाते हैं, न मरते हैं। जब मरते हैं अकाल मृत्यु से इनकी जीवन लीला समाप्त होती है। मनुष्य का तथा समस्त चराचर प्राणियों का शरीर इन्हीं इकाइयों के समूह से बना है। इन बड़े प्राणियों के शरीर का विकास भी उसी विभाजन पद्धति से होता है जैसे एक कोषा का। प्राणियों में गर्भाधान के बाद जो गर्भ में भ्रूण बढ़ता है वह भी, एक से दो, दो से चार, चार से आठ इसी क्रम से द्विगुणोत्तरक्रम से बढ़ता चला जाता है। वृद्धि का क्रम वही है जो स्वतन्त्र कोषा में पाया जाता है। तब एक कोषा प्राणी अजर अमर क्यों है? जब एक कोषा से निर्मित्त हुआ प्रत्येक प्राणी है तो वह जरा मृत्यु का ग्रास क्यों बन जाता है? यह प्रश्न उन विचारवानों के सामने आया। मनुष्य या अन्य प्राणी क्यों जरा जीर्ण होकर मर जाते हैं? इसमें कौन से कारण हैं? इसकी ढूंढ खोज होने लगी। देखा गया कि एक कोषी प्राणी का आहार लेने का क्रम और पचाने तथा सात्म्य रूप देने का क्रम बहुत सादा है। उनके भीतर गई हुई आहार वस्तुएं यदि उपयोग में न आयें तो चट बाहर कर दी जाती हैं उनमें विकारी द्रव्य या प्रादुर्भूत हुए मल रुकने नहीं पाते। इसी से उनकी काया में कोई विकृति उत्पन्न नहीं होती। इसी से उनमें जरावस्था आती ही नहीं। और विभाजित होने के समय उनके अंग का आधा भाग अंग से सदा भिन्न होता है और नया बनता रहता है इसीलिये उनके शरीर के प्रत्येक तात्विक पदार्थ प्रति क्षण बदलते रहते हैं इससे वे अमर बने रहते हैं।

जीवन संघर्ष और एकत्र होकर रहने की प्रवृत्ति

आहार प्राप्ति के लिये उन जैवों में भी जीवन संघर्ष होता है। भिन्न २ प्रकार के जीव एक दूसरे को आहार समझ कर खाने का प्रयत्न करते हैं तो उनमें फिर जीवन के लिये संघर्ष आरम्भ हो जाता है। जो बलवान होता हैं वह निर्बल को मार डालता है और उसे मार कर खा जाता है। इसी संघर्ष में निर्बलों ने प्रयत्न किया कि हमें संगठित होकर शत्रु का सामुख्य लेना चाहिये। जब वे एक कोषी प्राणी मिल कर सामुख्य लेने लगे उनका बल बढ़ गया। इस अनुभव के आधार पर उन प्राणियों ने विभाजित हुए अपने अंग भाग को साथ में रखने का प्रयत्न किया। इसी के परिणाम स्वरूप वे अपने भीतर से ऐसा संयोजक द्रव्य उत्पन्न कर सके जिसने विभाजित कोषाओं को मिला कर रहने का आयोजन किया। इसी से द्विकोषी, त्रिकोषी और चतुष्कोषी जीवों का विकास हुआ। यह विकास का क्रम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितने भी निर्बल जीवाणु कीटाणु थे सबों में चल पड़ा। इसी से सजीव सृष्टि का विकास होने लगा इसी विकास में जीवाणुओं से समस्त प्राणी जगत् की उत्पत्ति हुई। दूसरी ओर कीटाणुओं या उद्भिदाणुओं से वनस्पति जगत् का विकास हुआ।

शरीर विकास के साथ जीवन की व्यवस्था बदली जब कोषाओं ने एकत्र होकर बहु कोषी शरीर का विकास किया तो उस सामूहिक शरीर के लिये आहार ग्रहण और आहार वितरण तथा मल त्याग की व्यवस्था बदलनी पड़ी। एक कोषी प्राणी जो अपने शरीर के जिस भाग में चाहे कूट बाहु, कूट मुख बना लेते थे और उधर से ही आहार का ग्रहण कर लेते थे, और एकत्र मल को जिधर से चाहें शरीर के उसी भाग से निकाल देते थे किन्तु जब कुछ कोषाएं संयोजक द्रव्यों से जुड़ कर रहने लगीं तो जिधर संयोजक द्रव्य से वे परस्पर जुड़ी थीं उधर से किसी आहार द्रव्य का ग्रहण, मल निष्कासन कठिन ही नहीं असम्भव हो गया। इसीलिये उनमें एक ओर आहार ग्रहण के लिये मुख का विकास हुआ तो दूसरी ओर मल त्यागने के लिये मलद्वार का विकास हुआ। जीव में आहार को समस्त कोषाओं तक वितरण करने के लिये रक्त संचार एक पृथक् अंग का विकास हुआ। जैसे जैसे कोषा समूह ने एकत्र होकर एक देही बनकर रहने का विकास किया वैसे वैसे उनकी आवश्यकता बढ़ती गई। खाद्य द्रव्यों को ग्रहण करने के लिये हाथों की आवश्यकता हुई। वस्तुओं को देखने के लिये नेत्र की आवश्यकता सामने आई। शत्रु के आहट को पाने के लिये कान की आवश्यकता दिखाई दी अच्छे बुरे ग्राह्य अग्राह्य द्रव्यों को समझने चखने के लिये स्वादेन्द्रिय और मस्तिष्क की आवश्यकता सामने आई। इन्हीं कारणों से उन कोषाओं ने मिल कर कार्यों का विभाग बनाकर परस्पर बांट लिया। इस प्रकार अनेक कोषाओं का समूह एकरूप हो जाने के कारण उन सबों की आवश्यकता बढ़ गई।

जिस तरह मनुष्य जब एकांगी रहता था उस समय जीवन निर्वाह और सुरक्षा के समस्त काम उसे स्वयं करने पड़ते थे। वह स्वयं घर बनाता, कपड़ा बुनता, खेती बाड़ी करता। समस्त घर गृहस्थी के काम उसे ही करने पड़ते थे। किन्तु जब वह समाज में मिल कर रहने लगा तो उन्होंने मिल कर काम बांट लिये। राज मकान बनाने का काम करने लगा, लोहार औजार बनाने लगा, बढ़ई लकड़ी का काम करने लगा, जुलाहा कपड़े बुनने लगा इस तरह समाज में समस्त काम वे मनुष्य मिल कर करने लगे। इसी तरह शरीर की कोषाओं ने भी आपस में परस्पर मिलकर काम बांट लिये। कुछ कोषाओं ने सोचने विचारने का काम अपने हाथ में लिया तो कुछ कोषाओं ने आहार पचाने, आहार निकालने का काम अपने हाथ में ले लिया। कुछ कोषाएं त्वचा की शक्ल में बदली तो कुछ हाथ पर के रूप में परिणत हुईं। कुछ ने पंच ज्ञानेन्द्रियों का काम संभाल लिया तो कुछ ने पंचकर्मेन्द्रियों का। इस तरह जैसे २ शरीर रूपी साम्राज्य का विस्तार होता गया अनेक नयी से नयी आवश्यकता उत्पन्न होती चली गई और वैसे २ नये २ अंगों का भी विकास होता चला गया।

आवश्यकता ही आविष्कार की जननी का सिद्धान्त मानव विकास पर भी लागू चला आ रहा है। जैसे २ वृहदाकार प्राणियों का विकास होता चला गया उनके शरीर क्रिया व्यापार में भी जटिलता उत्पन्न होती चली गई। इस समय मानव शरीर की पचन व्यवस्था, शोषण, आत्मीकरण, मल निष्कासन आदि की व्यवस्था इतनी पेंचीदा हो गई है कि जिसके कारण अपद्रव्यों की शरीर में उत्पत्ति और उनके रुकने के स्थल बढ़ गये हैं। अन्त्राशय, मलाशय का विस्तार इतना अधिक हो गया है जिसमें अपद्रव्य पड़े पड़े जैवों द्वारा सन्धानित होते रहते हैं। इस सन्धान में ऐसे विषाक्त द्रव्य उत्पन्न होते रहते हैं जो शरीर में व्यापमान हो कर कोषाओं पर बुरा प्रभाव डालते रहते हैं। यह विषाक्त द्रव्य एक ही प्रकार के नहीं बीसों प्रकार के होते हैं। इनमें कई द्रव, कई वायु रूप होते हैं।

हमारी अन्न प्रणाली इतनी लम्बी है कि जिसमें से आहार द्रव्य लगभग मुंह से चल कर मल द्वार तक पहुंचने के लिये २४ घंटा का समय ले लेते हैं। इसमें का वृहदन्त्र एक भाग है जहां अनेक प्रकार के जीवाणुओं कीटाणुओं का सदा निवास बना रहता है। यह स्थल इन जैवों से कभी खाली नहीं होता। इन जीवाणुओं कीटाणुओं द्वारा हमारे शरीर के पोषणार्थ जो आहार का भाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहां शोषण के लिये संचित रहता है यह जीवाणु और कीटाणु उसे अपना आहार बना कर उसमें सदा सन्धान उठाते रहते हैं उन्हीं के द्वारा उठाये सन्धानों से वृहदन्त्र में जो वायुएं उत्पन्न होती रहती हैं अपान नाम की वह वायु मल द्वार से सदा निकलती रहती है। यदि वृहदन्त्र में यह जैव न हों तो कभी सन्धाव नहीं उठता। जब उसमें सन्धान नहीं उठता तो अपान वायु भी नहीं बनता। आप देखते हैं कि जब अपान वायु सरता है तो उस वायु में से जो गन्ध उठती है वह इतनी असह्य होती है कि हम नाक बन्द कर लेते हैं। मल में भी जो गन्ध होती है वह इन्हीं जैवी सन्धान के कारण उठा करती है। आप इससे अन्दाजा लगाइये कि जिस गन्ध को हमारी नाक सहन करने में असमर्थ होती है उस गन्ध का कुछ न कुछ अंश रक्त में मिल कर देह व्यापि हो जाता है वह शरीर की कोषाओं को कितनी हानि पहुँचा सकता है।

युवावस्था तक हमारे शरीर की कोषाएं सबल रहती हैं उनमें विपरीत विषाक्त द्रव्यों से सामुख्य लेने की सामर्थ्य विद्यमान रहती है किन्तु अवस्था वृद्धि के साथ अपद्रव्यों की उत्पत्ति की मात्रा बढ़ती चली जाती है और शरीर की कोषाएं उनका मुकावला करते २ शिथिल हो जाती हैं। उनमें वृद्धि तो होती नहीं, जो भी होती हैं इन विषाक्त द्रव्यों के प्रभाव से क्षीण होती चली जाती हैं। वहुत सी मरती रहती हैं इनकी संख्या जब घटने लग जाती है वही अवस्था जरा की होती है। इसी कारण से जिन बालों की ग्रन्थियां मृत हो जाती हैं उन बालों में फिर रस नहीं पहुँचता इसी से वे बाल श्वेत हो जाते हैं। त्वचा की कोषाएं जब मरने लगती हैं तब त्वचा पर झुर्रियां पड़ने लगती हैं। नेत्र, कान, नाक आदि के ज्ञानवाही तन्तुओं की कोषाएं जब क्षीण होकर मरने लगती हैं जब आंखों से कम दिखाई देने लगता है, कानों से कम सुनता है, नाक गन्ध लेने में असमर्थ हो जाती है। धीरे २ असमर्थता बढ़ती चली जाती है। और इस असमर्थ दशा में या तो वह व्यक्ति किसी जैवी व्याधि का शिकार बन कर इस संसार से जल्दी कूच कर जाता है। या इन संचारी व्याधियों से बचा रहे तो धीरे २ जर्जरित हो कुछ काल और काट जाता है।

उदरं व्याधि मन्दिरम्

हमारे आचार्यों ने हजारों वर्ष तक प्रायोगिक अनुभव लेकर यह तथ्य ज्ञात किया था कि उदर व्याधियों का घर है। अर्थात सारी बीमारियां पेट के भीतर से उठती हैं। वह कैसे? हमारे शरीर के भीतर बाहर की वस्तुओं के जाने का मार्ग कोई है तो वह एक मात्र आहार पथ ही है। अच्छी और बुरी जो कुछ भी हमारे भीतर वस्तुएं पहुँचती हैं इसी प्रधान मार्ग से पहुँचती है श्वास मार्ग से भी कुछ वायु रूप और उस वायु में मिले गर्द गुबार जीवाणु कीटाणु भी शरीर के भीतर पहुँचते हैं। किन्तु यह मार्ग गौण है। इसी मार्ग से पहुँचे जीवाणु कीटाणु भी यदि शरीर सक्षम हो तो इन जीवाणुओं कीटाणुओं का शरीर के भीतर पहुँच कर भी उनके पैर नहीं जमने पाते। हमारे शरीर के रक्षक उनका भक्षण कर छोड़ते हैं। यदि शरीर अक्षम हो तो उस स्थिति में ही यह जैव शरीर में प्रवेश करके संचारी व्याधियां उत्पन्न करने में समर्थ हो जाते हैं। शरीर सक्षम कैसे रहता है और अक्षम कैसे हो जाता है, इसकी खूब खोज बीन हुई है। जब पेट में कोई न कोई त्रुटि बनी रहती है पचन व्यवस्था ठीक नहीं रहती। मलाशय में जैवों की वृद्धि बनी रहती है और अनेक प्रकार के अनुपयोगी द्रव्य मलाशय में बन कर रक्त में मिलते रहते हैं। इनकी रक्त में विद्यमानता शरीर की कोषाओं को अक्षम बनाये रखती है। यदि यह अपद्रव्य उदर में न बनें और रक्त में न पहुँचें तो शरीर सक्षम बना रहता है। इससे ज्ञात हुआ कि उदर में ही ऐसे विकार संचित होते, प्रादुर्भूत होते रहते हैं जो शरीर को जर्जर कर डालते हैं तभी मनुष्य असमर्थ होकर इस संसार को छोड़ने के लिये विवश हो जाता है। यदि हमारी अन्न प्रणाली स्वच्छ रहे तो मनुष्य दीर्घ जीवन व्यतीत करता है। इसीलिये वह बुद्धिमान व्यक्ति जो आहार पर संयम रख कर खान पान की व्यवस्था नियमित रखते हैं वह बहुत कम बीमार होते हैं। जो बीमार नहीं होते वह अधिक काल तक जीवित रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नकली चांदी के वर्क भी बाजार में आ गये

चांदी और सोना ऐसी धातुएं हैं जिनमें जरा भी अन्य धातु की खोट मिली हो तो उसके पत्र या वर्क बनाना चाहें तो किसी तरह भी नहीं बन सकते। इसीलिये चांदी सोने के वर्क में मिलावट की सम्भावना नहीं थी। किन्तु विलायत से कली या वंग के और यशद के पत्र काफी बन कर आते थे जो चाय, सिगरेट आदि अनेकों चीजों के पैकट में प्रयोग होते थे। उनसे चांदी के नकली वर्क बनाने का लोगों ने प्रयत्न किया था किन्तु उनकी चमक दमक जल्दी खराब हो जाती थी। इसलिये वे वर्कों के रूप में उपयोजित नहीं हो सके थे। किन्तु कुछ थोड़े दिन से एक और धातु का संकर विलायत से आने लगा है। जो मैंग-नेशियम और वंग के योग से बनाया गया है, इस संकर के वर्क बहुत उत्तमता से तैयार हो जाते हैं। इस समय अनेकों व्यक्ति इस नकली धातु संकर के वर्क तैयार करके बाजार में बेचते जाते हैं किन्तु हमारी सरकार देसी औषध नियन्त्रण की ओर कोई ध्यान नहीं देती। यह मैगनेशि-यम और वंग ऐसी धातुएं नहीं हैं जो कच्ची खाई जाने पर कोई हानि नहीं करेंगी यह तो बहुत ही हानि कर धातुएं हैं जिनके उपयोग से अनेकों भयंकर व्याधियां उत्पन्न हो सकती हैं। किन्तु भारत सरकार अलोपैथी की औषध पर कड़ा नियन्त्रण तो करना चाहती है और अलो-पैथी औषधियों में मिलावट को रोकना चाहती है इसके लिये लोक सभा में इसी ५ सितम्बर को औषध संशोधन विधेयक पर विचार हुआ है और अलोपैथी में नकली औषध के रोक थाम को कड़ाई से नियन्त्रण करने के लिये सरकार कदम उठाने वाली है किन्तु उसका ध्यान देसी औषध नियन्त्रण की ओर जरा भी नहीं है। इस समय भी अलोपैथी औषध की अपेक्षा देसी औषध का देश में उपयोग अधिक है जब जनसमाज को असली औषध के स्थान पर नकली औषध मिलती रहेगी तो देश का स्वा-स्थ्य कभी नहीं सुधरेगा। क्या स्वास्थ्य मन्त्रालय को इसकी उपेक्षा करना उचित है। यदि भारत सरकार देसी औषध पर नियन्त्रण नहीं करती और देसी चिकित्सा पद्धति की उपेक्षा करती रहेगी तो समाज का स्वास्थ्य कभी भी ठीक होने का नहीं। और न जन समाज का स्तर उठ सकता है। भारत सरकार को इस तथ्य की ओर गम्भीरता से ध्यान देना चाहिये। और इसके महत्व को समझना चाहिये।

नकली वर्कों की परीक्षा

नकली वर्क को दियासलाई दिखाई जाय तो वह श्वेत प्रकाश देकर जल उठते हैं चांदी के वर्क नहीं जलते।

समालोचना

जीवतिक्ती विमर्श (विटामिन तत्व) :—लेखक डा० पद्मदेव नारायण सिंह एम० बी० बी० एस०। प्रकाशक :—श्री मति कृष्णा सिंह जी आर० के० १,२२० पो० सिन्दरी, जि० धनबाद (बिहार) मूल्य ५) रुपये।

जीवतिक्ती अर्थात् खाद्य पदार्थों में ओज स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में एक ऐसा विशेष महत्व का अंश होता है जिसे हम खाद्यान्नों में विद्यमान उनका प्रभावांश भाव मान सकते हैं। यदि किसी खाद्य द्रव्य में यह अंश न हो तो वह निर्गुण हो जाता है। इन्हीं विशेषताओं को देख कर हमने इसका नाम खाद्योजांश रक्खा है। आपने जीव-तिक्ती नाम दिया है। यह खाद्योजांश आधुनिक वैज्ञानिकों के द्वारा समस्त खाद्य पेय द्रव्यों में से भिन्न करके उनके गुण, स्वभाव, प्रभाव को अनेकों परीक्ष प्राणियों को खिला कर देखा व जांचा गया हैं। और खाद्योजांश रहित आहार देकर भी अनुभव लिया गया है। इस विषय पर डाक्टर साहब जी ने इसके आविष्कार के इतिहास से लेकर आजतक जो भी इस विषय की जानकारी प्राप्त हो सकी। अपने इस ग्रन्थ में संकलित कर दी है।

विटामिन सम्बन्धी विषय पर स्वतन्त्रतया इस समय तक कोई भी पुस्तक किसी विद्वान् ने हिन्दी में लिखी हो इसके सिवाय अन्य देखने में नहीं आई। पुस्तक इसी दृष्टि से उपयोगी नहीं, प्रत्युत आपने पुस्तक के अन्त में विटामिन सम्बन्धी विषय की एक ऐसी सारणी दी है कि इस समय तक कौन कौन से विटामिन को विलायत की किस २ कम्पनी ने किस २ नाम से बाजार में प्रस्तुत किया है और वह मुख मार्ग से लेने की है कि सूचीभरण से लेने की है उसका उन्होंने उक्त सारणी में पूरा व्योरा दिया है और उस कम्पनी के प्रस्तुत किये विटामिन किन किन रोगों में किस तरह उपयोजित किये जाते हैं इसका उक्त सारणी में पूरा वर्णन है। इस एक पुस्तक को प्रत्येक चिकित्सक अपने पास रख कर किस किस विटामिन का उपयोग किस रोग पर किस तरह करना चाहिये। इसको अच्छी तरह से जाना जा सकता है। आशा है चिकित्सक समाज में इस पुस्तक का समुचित आदर होगा। और नये चिकित्सक इससे पूरा ज्ञान प्राप्त करेंगे। —हरिशरणानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाशमिक (मीट्रिक) मान क्या है ?

दाशमिक नियम (मीट्रिक सिस्टम) का आधार लम्बन (मीटर) की वह इकाई है जो पृथ्वी के दोनों ध्रुवों के व्यास की परिधि के चार करोड़ का एक अंश $\frac{१}{४००००००००}$ होता है। अर्थात् विषुवत् रेखा से ध्रुव तक की लम्बाई अथवा भूगोल के चतुर्दिक दोनों ध्रुवों के चतुर्दिक दोनों ध्रुवों से चलती हुई एक रस्सी लिपटी हो उस रस्सी को चार करोड़ हिस्सों में बांटने पर उसका एक अंश लम्बन बनता है जिसे अंग्रेजी में मीटर कहते है। इस एक लम्बन को इंचों में नापा जाय तो यह ३९·३७०१ इंच के बराबर होता है अर्थात् एक गज ३$\frac{१}{३}$ इंच के लगभग। इसी लम्बन नाप से द्रवीय द्रव्यों की धारक इकाई को लिटर मान लिया गया, जिसे (Measure of Capacity) अर्थात आयतन का नाप कहा गया। लम्बन (मीटर) के दसवें $\frac{१}{१०}$ भाग का अर्थात् ३९.३७०१ इंच को दसवें भाग में विभक्त कर ऐसा घनाकार पात्र बनाया गया जिसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई $\frac{१}{१०}$ लम्बन हो, उस पात्र की धारकता या समाई एक लिटर मानी गई। इस पात्र में पूर्णतया परिमित जल भर दिया जाय और उसे ४·० शतांश के उत्ताप पर रख कर तोला जाय तो उस जल की मात्रा एक सहस्र ग्राम अर्थात् १ किलोग्राम होगी। इसी मान से यह विश्वव्यापी दाशमिक मान निकाला गया है। इसे ही धीरे-धीरे ठीक करके वैज्ञानिक रूप दिया गया है। इसी के सहस्रांश को एक ग्राम माना गया है। जो हमारी ८$\frac{१}{४}$ रत्ती अर्थात १५$\frac{१}{२}$ ग्रेन अलोपैथी मान के बराबर है। इस ग्राम के बट्टे बड़े छोटे १,२, ५, १०, २०, ५०,१००, २००,५०० ग्राम के बनाये गए हैं। और इस ग्राम से छोटे अर्ध, पंचमांश ,दशांश, विशांश, पंचाशतांश, शतांश,सहस्रांश के होंगे। यही अब १ अक्टूबर १९६० से प्रचलित हो रहे हैं।

दाशमिक (मीट्रिक) बाट परिवर्तन तालिका

तोले	ग्राम	सेर	किलोग्राम–ग्राम	सेर	किलोग्राम–ग्राम	मन	किलोग्राम–ग्राम
१	११.६६४	१ ,,	... ९३३	२१ ,,	१९--५९५	१ ,,	३७--३२४
२	२३.३२८	२ ,,	१—८६६	२२ ,,	२०—५२८	२ ,,	७४--६४८
३	३४.९९१	३ ,,	२—७९९	२३ ,,	२१--४६१	३ ,,	१११--९७२
४	४६.६५५	४ ,,	३—७३२	२४ ,,	२२—३९५	४ ,,	१४९--२९६
छटांक	ग्राम	५ ,,	४—६६६	२५ ,,	२३--३२८	५ ,,	१८६—६२१
१	५८.३१	६ ,,	५—५९९	२६ ,,	२४—१६१	६ ,,	२२३--९४५
२	११६.६३	७ ,,	६—५३२	२७ ,,	२५—१९४	७ ,,	२६१—२६९
३	१७४.९५	८ ,,	७—४६५	२८ ,,	२६--१२७	८ ,,	२९८--५९३
४	२३३.२७	९ ,,	८—३९८	२९ ,,	२७-- ६०	९ ,,	३३५--९१७
५	२९१.५९	१० ,,	९—३३१	३० ,,	२७—९९३	१० ,,	३७३--२४२
६	३४९.९१	११ ,,	१०—२६४	३१ ,,	२८—९२६		
७	४०८.२३	१२ ,,	११—१९७	३२ ,,	२९—८५९		
८	४६६.५५	१३ ,,	१२--१३०	३३ ,,	३०—७९२		
९	५२४.८७	१४ ,,	१३—०६३	३४ ,,	३१—७२६		
१०	५८३.१९	१५ ,,	१३—९९७	३५ ,,	३२—६५९		
११	६४१.५०	१६ ,,	१४—९३०	३६ ,,	३३—५९२		
१२	६९९.८२	१७ ,,	१५—८६३	३७ ,,	३४—५२५		
१३	७५८.१४	१८ ,,	१६—७९६	३८ ,,	३५--४५८		
१४	८१६.४६	१९ ,,	१७—७२९	३९ ,,	३६--३९१		
१५	८७४.७८	२० ,,	१८—६६२				

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेदीय प्रकाशन

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य की अनुपम कृति

भस्म-विज्ञान

भाषा-टीका सहित दो भागों में मूल्य १०)

धातु भस्मों व रस-चिकित्सा के आविष्कारक कौन थे वह कब हुए ? और आयुर्वेद में रस-चिकित्सा का प्रवेश कैसे हुआ ? साधु सन्तों, महात्माओं की भभूती, सिद्धों की रस सिद्धियों का ज्ञान वैद्यों तक कैसे पहुँचा ? इसके इतिहास का ज्ञान आयुर्वेदज्ञों को बिलकुल नहीं, वास्तव में रस चिकित्सा सिद्धों महात्माओं की देन है। इसका सही इतिहास जानना चाहते हो तो भस्म-विज्ञान का उपोद्घात पढ़िये।

इसमें ८४ सिद्धों का सचित्र विवरण सहित इतिहास दिया है, जिसको खोजने में स्वामीजी ने भारतवर्ष के बड़े-बड़े पुस्तकालयों में जा-जाकर १४० से ऊपर हस्तलिखित ग्रन्थों में से खोजकर सारा विवरण ढूंढ़ निकाला है। वह ऐसा अकाट्य प्रामाणिक ग्रन्थ है कि वैद्य समाज पढ़कर स्तम्भित व चकित रह गया है। ग्रन्थ की यही एक विशेषता नहीं।

सब से बड़ी विशेषता तो इस ग्रन्थ की यह है कि जितने भी सिद्धों महात्माओं द्वारा भस्में बनाने की विधियां आविष्कृत हो चुकी हैं तथा जो रस ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुए उनमें जो भस्म बनाने की विधियां आई हैं वह सब अप्रकाशित होने के कारण वैद्य समाज उनके निर्माण को नहीं जानता, उनको ढूंढ कर सप्रमाण इस ग्रंथ में संग्रह किया गया है! यही नहीं, इससे भी अधिक विशेषता यह है कि यूनानी, मिश्रानी चिकित्सा में जिन पत्थरों, रत्नों, धातुओं की भस्में बनती हैं उनका ज्ञान भी वैद्यों को बहुत कम है वह समस्त विधियां भी इस ग्रन्थ में सप्रमाण संकलित कर दी गई हैं। इससे भिन्न अनेक धातु भस्मों की विधियां जो अब तक महात्माओं के गुरु परम्परा में चली आ रही थी, उनमें से अनेकों विधियों को बड़े प्रयत्न से प्राप्त कर सब को स्वामी जी ने प्रकट कर दिया है। पुस्तक कैसी है ? इस पर विद्वान् वैद्यों की सम्मतियों से इसका अन्दाजा लगाइयेगा।

भस्म विज्ञान पर कुछ सम्मतियां

'स्वास्थ्य' कृष्ण गोपाल धर्मार्थ औषधालय

कालेड़ा बोगला

रस, भस्म विज्ञान भारतीय चिकित्सा विज्ञान का महत्वपूर्ण विषय है, इस विषय के सभी ग्रन्थों में प्राय: रस-भस्मों का परिचय सूक्ष्म रूप से मिलता है। किन्तु विशद विवेचन सह स्वतन्त्र पुस्तक अभी तक प्रकाशित नहीं हुई थी जो रस एवं भस्मों के विषय में ठोस शिक्षा दे सके। इस कमी को लक्ष्य में रख कर आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान् स्वामी हरिशरणानन्द जी ने अनेक रस ग्रन्थों के आधार स्वरूप बहुत परिश्रम करके संकलित कर सुन्दर हिन्दी टीका सह इस पुस्तक की रचना की है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये लेखक को में वधाई देता हूं।

इस ग्रन्थ में भस्म बनाने की प्राचीन शास्त्रोक्त विधियां विभिन्न प्रमाण भूत ग्रन्थों से ही हैं उसे नव्य विज्ञान संमत उल्लेख किया है और महत्वपूर्ण सूचनायें भी देदी हैं। इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध में उपोद्घात के भीतर लेखक ने धातु, उपधातु, रस, रत्न आदि के सम्बन्ध में विज्ञान सम्मत विस्तृत विवेचन किया है, यह अनुभव लेखक को भारतीय रसशास्त्र एवं नव्य विज्ञान सम्पन्न रसायन शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् डा० प्रफुल्लचंद्रराय द्वारा परम्परागत मिला। फिर काफी धन खर्च द्वारा दीर्घ काल पर्यन्त परिश्रम करके तथा विश्लेषण करवा कर अनुभव प्राप्त किया है इस तरह जो अनुभव मिला वह लेखक ने हृदय खोलकर पुस्तक में दे दिया है।

पुस्तक के प्रारम्भ में रस शास्त्र का इतिहास दिया है, एवं रसाचार्यों के नाम, परिचय तथा समय का उल्लेख भी साथ-साथ दिया है, संपूर्ण भस्मों का विस्तृत विवेचन किया है एवं साथ में हिन्दी टीका देकर और अपना अनुभव दर्शाकर पुस्तक को अत्यन्त उपयोगी बना दिया है यह पुस्तक फार्मेसी वालों के लिये मार्गदर्शक है, एवं आयुर्वेद के विद्वान्. सामान्य चिकित्सक, छात्रगण तथा सर्व साधारण आयुर्वेद प्रेमी सज्जनों के लिये अत्यन्त उपयोगी होगी मैं हृदय से इसका प्रचार चाहता हूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जय आयुर्वेद, जोधपुर अगस्ताङ्क १६५४—

भस्म-विज्ञान के दो भाग हमारे पास आये हैं। प्रथम में तो आयुर्वेद में धातुओं का उपयोग कब कैसे हुआ और उसके बाद रस विद्या तथा शिव, नागार्जुन. ८४ सिद्ध आदि के सम्बन्ध में विभिन्न मत मतान्तरों का वर्णन है। पारद क्या वस्तु है? इस विषय पर लेखक ने प्रगतिशीलता से काम लिया है और लेखक ने जगत् को एक नवीन देन दी है। आगे द्रुति विधानों के बाद महारसों, वायु और वायव्य तत्वों, धातुओं की रचना और उसके कार्यों पर गम्भीरता पूर्वक प्रकाश डाला गया है। तृतीय साधनपाद द्वारा इस विद्या और चिकित्सा के उपयोग में आने वाले विभिन्न उपकरणों पर भी प्रकाश डाला गया है ताकि नवीन रस वैद्य वं चिकित्सक कहीं अटकें नहीं।

द्वितीय भाग में भस्मों के प्रकार और भस्मों की निर्माण विधि पर अनुभव पूर्ण विवेचन दिया गया है। लेखक ने व्यवहार में लाकर विभिन्न गुणों अवगुणों एवम् तकलीफों व सुविधाओं का स्पष्ट वर्णन किया है जो ग्रन्थकी खास विशेषता का निर्देशक है।

अब तक इस विषय पर अधिक ग्रन्थ नहीं लिख गये हैं और जो लिखे भी गये हैं वे केवल शाब्दिक परिवर्तन मात्र एवम् टीका मात्र ही सिद्ध हुए हैं। किन्तु प्रस्तुत पुस्तक में लेखक का अक्षय ज्ञान भण्डार हमारे सम्मुख आता है? इस बातका प्रत्यक्ष अनुभव प्रस्तुत पुस्तक द्वारा आसानी से हो सकता है

विद्वान लेखक की विद्वत्ता पूर्ण पुस्तक का अध्ययन प्रत्येक वैद्यको अवश्य करना चाहिए। विशेषतः रस चिकित्सक इस पुस्तक को पढ़कर नवीन पथ प्राप्त करेंगे। वास्तव में परीक्षा संस्थाओं को केवल टीका मात्र ग्रन्थको पाठ्यक्रम में न रख ऐसे मौलिक एवम् ठोस साहित्य पूर्ण ग्रन्थों को निर्धारित करना चाहिए ताकि विद्यार्थी जीवन से ही उनके संस्कार सुदृढ़ बनें और आयुर्वेद को लेकर वे कुछ कहने में समर्थ सिद्ध हो सकें। वैद्योंकी स्थितिको देखते हुए ग्रन्थका मूल्य कुछ विशेष है किन्तु उपयोगिता को देखते यह मूल्य नहीं के बराबर है।

अनुभूत योगमाला—बरालोकपुर, इटावा (यू. पी.)

यों तो भस्मों का विधान यत्र तत्र ग्रन्थों में वर्णित ही था परन्तु वैज्ञानिक विधिसे उनका वर्णन कहीं भी उपलब्ध न था, किस धातुमें कौन २ से अवयव कितने २ परिमाण में है? क्यों यह लाभकारी हैं? कैसे तत् प्रतिनिधि रूप में किस भस्म का उपयोग हो सकता है आदि २ विषयों की पूर्ण जानकारी को बड़ी विशिष्ट शैली से प्रतिपादन कर भस्म-विज्ञान में चार चांद लगा कर एक नवीनता ला दी गई है। पुस्तक प्रत्येक वैद्य के देखने योग्य बन गई है।

आपका लिखा उपोद्घात जो २२३ पृष्ठों में समाप्त हुआ है, बड़ा ही महत्व का है और ८४ सिद्धोंके सचित्र पूर्ण पते एवं विवरणात्मक विवेचन बड़ा सुन्दर है। १४६ ग्रन्थों के आधार से उपोद्घात लिखा गया है वस्तुतः इन अमूल्य अप्राप्य ग्रन्थों की खोज एवं उनके अध्ययन के बाद ग्रन्थ प्रणयन कर स्वामी जी ने अपने अदम्य साहस का परिचय दिया है। लेखक अपने विषयके ज्ञान प्रसार में सफल हुए हैं, एतदर्थ बधाई के पात्र हैं।

पूज्य श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य बम्बई

२४—५—५४ के पत्र में लिखते हैं 'भस्म विज्ञान को अक्षरशः सम्पूर्ण तो नहीं परन्तु ऊपर ऊपरसे बहुत कुछ देखा है इसमें वैद्यों के काम की और उपादेय बातें बहुत हैं।

वैद्य घनानन्द जी पन्त,

३१०१ बाजार सीताराम, देहली।

११-४-५४ भस्म विज्ञान दोनों भाग मिले। आप के पूर्व प्रकाशित क्षार विज्ञान, आसव विज्ञान लघु निबन्ध पहिले देख चुका था तदनु कूपी पक्व रस निर्माण विज्ञान बड़ा ग्रन्थ जो कि पारद विषयक उत्कृष्ट ग्रन्थ है— समस्त पढ़ा आज भस्म विज्ञान देखा जिसका २२३ पृष्ट का उपोद्घात अनेक ज्ञातव्य विषयों से परिपूर्ण है। प्रत्येक भस्म विधि पर प्राचीन विचारों का नवीन विचारों से विवेचन किया गया है। आप अपनी लगन के बड़े पक्के हैं। भस्मों के विषय वर्तमान शताब्दी में यूनानी चिकित्सकोंने आयुर्वेद से लेकर जो इसमें ऊहापोह की है उसका भी उसमें दिग्दर्शन है। अकीकादि द्रव्य जो कि यूनानी चिकित्सा में विशेषोपयोगी समझे जाते हैं उनका भी आपने समावेश कर आयुर्वेदज्ञों को यूनानी द्रव्य ज्ञानमें सहायता दी है। रत्न उपरत्नों का अनेक प्रकार से शोधन मारण गुणादि का विशद वर्णन, सरल भाषामें है। आपने इस ग्रन्थ को लिखकर भस्मोंके विषय में आयुर्वेद को ऊपर उठा दिया है। पाठ्य पुस्तकों में आलोचनोपयोगी पुस्तक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याधि-मूल विज्ञान (पूर्वार्ध)

श्री स्वामी हरिशरणानन्द की नव्य कृति

जो अभी ही छप कर तैयार हुई है।

यह वैज्ञानिक युग है, शरीर के भीतर जब कोई व्याधि हो जाती है तो उसे अबतक अनुमान से ही जानते थे। किन्तु वैज्ञानिकों ने ऐसे साधन मालूम कर लिए हैं कि शरीर के भीतर जब व्याधियों का प्रादुर्भाव हो रहा हो तो वह कैसे हुआ करता है, और उसमें कौन कौन से व्याधियों के उत्पादक कारण है। इसको उन्होंने नव्य प्रायोगिक विधियों से खूब अच्छी तरह से देखा व जांचा एक ही प्रयोगशाला ने नहीं, अनेकों प्रयोगशालाओं ने मिलकर जांच की और जो तथ्य उन्हें मिले और वे प्रकाश में आये उनको संकलित कर व्यवस्थित रूप दिया गया है। इन प्रायोगिक विधियों ने चिकित्सा के अनेकों मान्य सिद्धान्तों पर पानी फेर दिया है।

आयुर्वेद का सिद्धान्त है—'मिथ्याहार विहाराभ्यां दोषाः ह्यायामाशयाश्रयाः'। आहार विहार की अनियमितताओं से आमाशय में दोषों का उत्थान होता है। आहार सम्बन्धी और पचन सम्बन्धी विषय का प्रायोगिक ज्ञान इतना अधिक बढ़ चुका है जिनके सन्तुलित स्थिति से मनुष्य स्वस्थ रहता है उसमें असन्तुलित स्थिति उत्पन्न होते ही रोगों का प्रादुर्भाव होता है। यह 'द्रव्य साम्यमरोग्यता' का सिद्धान्त किस तरह देखा समझा गया यह आयुर्वेद विद्वानों के समझने की चीज है। इसी का वैज्ञानिक विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है। यह ग्रन्थ का पूर्वार्ध मात्र है जो लगभग ४०० पृष्ठों में पूर्ण हुआ। १० वर्ष के परिश्रम के बाद इसका पूर्वार्ध ही पाठकों के हाथ में पहुँचा रहे हैं। सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य १२) है।

स्वास्थ्य मासिक सितम्बर १९६० अंक

आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थमाला कार्यालय दिल्ली द्वारा प्रकाशित उपरोक्त ग्रन्थ व्हाईट प्रिंटिंग २०×३० कागज के साईज में ४३४ पृष्ठों पर छपा है। मूल्य रु० १२) है। लेखक स्वामी श्री हरिशरणानन्द महाराज हैं।

आपने अनेक ग्रन्थों का अवलोकन करके संसार की अनेकों प्रयोग शालाओं में प्रायोगिक विधियों द्वारा वैज्ञानिकों ने जो सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन किया है और इन अध्ययनों के परिणाम स्वरूप जो नवीन तथ्य प्रकाश में आये हैं उनको प्रस्तुत ग्रन्थ में संकलित करके व्यवस्थित रूप से दिया है। आपने कई नये शब्दों को रचकर बैठाने का प्रयत्न किया है। हमारा शरीर एक रसायन शाला है। शरीर की रसायन शाला में समस्त द्रव्य साम्य स्थिति में रहते हैं। आयुर्वेद कथित धातु साम्य या दोष साम्यमरोग्यता आपने सिद्ध की है। पारिभाषिक शब्दावलि, कज्जलोदेतों का दहन, स्नेह क्षय पूर्ति, खनिज क्षय पूर्ति, खाद्योजांश आदि विवेचन मननीय है।

लेखक ग्रन्थ लेखन के महा महारथी हैं। आपने अति परिश्रम करके पाश्चात्य शैली से संक्षिप्त निचोड़ दिया है, वह मननीय है। यह ग्रन्थ अपने ढंग का पाश्चिमात्य शैली पर नूतन है। आयुर्वेद चिकित्सक और विद्यार्थियों को उसे जानने का प्रयत्न करने से ज्ञान में वृद्धि होगी और निदान चिकित्सा में सुविधा मिल सकेगी।

वैद्य विद्याधर शर्मा प्रिंसिपल

श्री सनातन धर्म आयुर्वेद महाविद्यालय बीकानेर

'व्याधि मूल विज्ञान' पुस्तक का आद्योपान्त अध्ययन किया। आधुनिक क्रिया शरीर विज्ञान की दृष्टि से पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। इस प्रकार के अन्य ग्रन्थों तथा इस में नवीन शब्द रचना यद्यपि पृथक २ है तथापि विद्वान लेखक ने अपने प्रौढ आधुनिक विज्ञान के आधार पर शब्द विन्यास युक्ति युक्त किया है। स्थान २ पर हिन्दी शब्दों के साथ २ अंग्रेजी शब्द देकर तथा आरंभ और अन्त में दोनों प्रकार की पारिभाषिक शब्दावली जोड़ कर पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ा दी गई है। पुस्तक भली भांति समझने के लिये आधुनिक विज्ञान का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। क्या ही अच्छा होता कि इस प्रकार की और भी पुस्तकों के निर्माण में शब्द संगठन सादृश्य हो।

इस पुस्तक का सर्वत्र समादर हो तथा शीघ्र ही इस का उत्तरार्ध प्रकाशित कर माननीय स्वामीजी नवीन २ विषयों से हिन्दी साहित्य के कलेवर को अभिवृद्ध करते रहें—यही कामना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभूत योग माला अगस्त १९६०

आयुर्वेद में आहार-विहार से ही कुपित हुये दोषों को रोग का कारण माना है। परन्तु रोग होने पर कहां क्या विकृति होती है इसके प्रत्यक्षी करण का कोई निश्चित साधन वैद्यों के पास न था, क्योंकि यह विषय प्राचीनकाल में न था और बाह्य विकृतियों से ही रोग सम्बन्ध का अनुमान किया जाता है। परन्तु वैज्ञानिकों ने इस विषय के जानने में अथक परिश्रम किया है, उन्हें जो भी कुछ यन्त्रादिकों द्वारा प्राप्त हुआ उसका सार भाग ही लेकर वैद्यों के हितार्थ उक्त लेखक ने महान् श्रम एवं व्यय को स्वीकृत कर इस ग्रन्थ की रचना कर एक नवीन विषय वैद्यों के सामने लाकर उपस्थित किया है। हम इस ग्रंथ को पाकर एवं पठन कर बहुत प्रसन्न हुये हैं और हम सिफारिश करते हैं कि विज्ञ वैद्यजन इस नवीन कृति को अपना कर अवश्य अपने ज्ञान की वृद्धि करेंगे, स्वामीजी के ग्रंथ किसी न किसी नवीन तथ्य को लेकर ही सामने आते हैं यह ग्रन्थ भी अपनी पूर्व परम्परानुरूप बहुत ही श्रेष्ठ निकला है हम लेखक को सफलतार्थ बधाई देते हैं।

घुमक्कड़ स्वामी

श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी महाराज का जीवन चरित्र

[ले०महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी]

साधु बन कर योगाभ्यास की लगन में किसी पहुँचे योगी की खोज में किस तरह हिमालय की कंदराओं में कैलाश मानसरोवर तक उन्हें ढूंढते फिरे? किस तरह योगाभ्यास में रमे और विघ्न पड़े? किस तरह फिर वैद्य बन कर हिमालय में जड़ी बूटियां ढूंढते फिरे? फिर बिना पूंजी के लक्षाधीश बनने की अभिलाषा लेकर फार्मेसी की स्थापना की। इन सब बातों का अत्यन्त रोचक वर्णन विश्व विख्यात लेखक श्री राहुलजी की ओजस्विनी लेखनी द्वारा अंकित इस पुस्तक में पढ़िये। १५ वर्ष वैद्य बनकर घुमक्कड़ जीवन में जो अनेक देशाटन के समय उन्हें अनेक चमत्कारिक योग साधु सन्तों एवं रसायनियों से प्राप्त हुए थे, वे योग भी इस ग्रन्थ के अन्त में स्वामी जी ने प्रकट कर दिये हैं। मूल्य केवल ३।

इस पुस्तक पर समालोचना

–डा. सत्य प्रकाश डी.एस.सी.म्योर सेण्ट्रल कालेज प्रयाग

इस पुस्तक में हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ महापंडित श्री राहुल संकृत्यायन ने श्री वैद्य हरिशरणानन्द जी के उस प्रारम्भिक जीवन का मनोरंजक विवरण दिया है जो वैद्य जी ने सन्यासी के रूप में बिताया था। राहुल जी ने अपनी शुद्ध भाषा में बहुत ही सरल और सरस शैली में श्री हरिशरणानन्द जी के कर्मठ जीवन का इसमें उल्लेख किया है। हम राहुल जी के कृतज्ञ हैं कि उन्होंने एक ऐसे व्यक्ति के जीवन की झांकी हमारे सामने प्रस्तुत की है जिसने उच्च आदर्शवाद को व्यवहारिक स्तर पर सत्य सिद्ध करके हमारे समक्ष रक्खा। पुस्तक रोचक और पठनीय है।

कूपीपक्व-रस-निर्माण-विज्ञान

यह ग्रन्थ स्वामी हरिशरणानन्दजी की मौलिक कृतियों में से एक है। इस ग्रन्थ की ऐतिहासिक पदार्थ सामग्री संचित करने में आपने १५-१६ वर्ष व्यतीत किये और जिन कूपीपक्व रसों को आप अनेक प्रकार से बनाकर इस विषय को आज ३० वर्ष से समझते व अनुभव लेते आ रहे हैं उन्हीं रहस्यों का उद्घाटन आपने अपने इस ग्रन्थ में किया है। इस ग्रन्थ की आयुर्वेदमार्तण्ड यादवजी त्रिकम जी आचार्य ने आयुर्वेद विद्यापीठ के रसतन्त्र की पाठ्यविधि के आलोच्य ग्रन्थों में रखने की सिफारश की है।

२०×३० सोलह पेजी ऐण्टिक पेपर पर पृष्ठ संख्या ५००आर्ट पेपर पर मनोहर १४चित्रों से सुसज्जित, सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ५) रुपया, पोस्ट और पैकिंग खर्च भिन्न

इस ग्रन्थ पर सम्मतियां

(१)श्रीयुत बालचन्द्र जी नाहटा सरदार शहर,बीकानेरसे १९-२-४२ के पत्र में लिखते हैं—बहुत अर्से के बाद आप को यह पत्र लिख रहा हूँ। दो कारणों से-एक तो आप को बधाई देने के लिये और दूसरे कुछ जानने के लिये।

बधाई! आपके अनुपम ग्रन्थ'कूपीपक्व-रसनिर्माण-विज्ञान के प्रकाशनार्थ है जिसको पढ़कर मैंने बहुत अधिक व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कियामें आपके उक्त ग्रंथ में दिये विधानकी विद्युत भट्टी बनाने की बहुत इच्छा रहने पर भी समयाभाव से कलकत्ते में न बना सका। किन्तु सामान लाकर एक विद्युत शास्त्री की सहायता से यहां उसे तैयार किया और उसमें १०तोला पारद,१०तोला गन्धक,१ तोला सुवर्ण डालकर उस विद्युत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भट्ठीमें मकरध्वज चढ़ाया। १००० हजार वाट प्रति घण्टे के हिसाबसे विद्युत् शक्ति खर्च करके ६ घण्टेमें मकरध्वज बना ही लिया।

जिस परीक्षणकी इच्छा वर्षोंसे थी और जिसकेलिये कलकत्ता की एक फर्मने विद्युत् भट्ठीकी कीमतका इस्टीमेट २५०) का दिया था यह विद्युत भट्ठी आपकी कृपासे १५) या २०) रुपये में ही बना कर देखली, देखही नहीं ली उसपर कूपीपक्व रस तय्यार भी कर लिया।

इसके लिये आपको बधाई नहीं अनेकानेक धन्यवाद देना चाहिये। किन्तु यदि इतना ही होता तो धन्यवाद देकर ही रह जाता. आपने तो उसमें और इतनी अधिक प्रायोगिक बातें दी हैं जिसके लिये धन्यवाद पर्याप्त नहीं। बधाई इस लिये कि आप अपने प्रयत्न में सफल हुए।

(२) वैद्य-रत्न कविराज डा. प्रतापसिंह जी
(भू० पू० डायरेक्टर आफ आयुर्वेद राजस्थान)

मैंने श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी द्वारा लिखित 'कूपीपक्व रस निर्माण विज्ञान, का आपात अवलोकन किया। श्री स्वामी जी सिद्ध-हस्त लेखक हैं।

इसके पूर्व स्वामी जीने 'कूपीपक्व रसायन' और 'त्रिदोष-मीमांसा'नामक पुस्तकें प्रकाशित की हैं और उससे वैद्यसमाज में नवीन चिन्तन का प्रादुर्भाव किया है।

स्वामीजी क्रान्तिवादी हैं। आयुर्वेद समाज के मृत-जीवन में पुनः क्रान्ति करके नवीन जीवन संचार करने के अभिलाषी हैं,इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये कठिन परिश्रम करते रहते हैं।

कूपीपक्व-रस-निर्माण-विज्ञान इसी मनोवृत्ति का परिणाम है। पुस्तक का प्रकाशन बड़ा ही सुन्दर हुआ है। इसका उपोद्घात् प्रत्येक वैद्यके लिये मनन करने योग्य है। इस उपोद्घात् में पौर्वात्य एवं पाश्चात्य रसायन शास्त्र का क्रमबद्ध अच्छा इतिहास है। यदि पाश्चात्य मौलिक तत्वोंके सामने उनके प्रचलित वैज्ञानिक नाम अंग्रेजी भाषा में भी दे दिये जाते तो पाठकों के लिये अधिक सरलता होती।

मैं स्वामी जी को इस वृद्धावस्था में भी कठिन परिश्रम के लिये हार्दिक बधाई देता हूँ।

आशा है स्वामी जी 'धातुवाद' पर भी विशेष प्रयोग कर आज के आणविक रसायनवाद का विवेचन कर वैद्यों के ज्ञान में परिवर्धन करने का यत्न करेंगे।

भगवान् जगन्नियन्ता से प्रार्थना है कि स्वामी जी को दीर्घायु करे और स्वास्थ्य प्रदान करे ताकि अपने अनुभव और प्रयोगोंसे चिरकाल तक आयुर्वेदका उपकार करते रहें।

क. प्रतापसिंह. १६-६-५२.

विश्व विज्ञान

(स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य की नई रचना)

वैद्यों के देखने समझने की इस पुस्तक में क्या चीज है? आयुर्वेद पढ़ते ही सबसे पूर्व यह जानने की जरूरत होती है कि शरीर की रचना किन तत्त्वों से हुई ? जब तक शरीर की रचना करने वाले तत्त्वों को नहीं जाना जा सकता तब तक दोषों को नहीं समझा जा सकता। तत्त्व पांच हैं या इससे अधिक ? इसका प्रत्यक्षीकरण दर्शन ग्रन्थों की रचना के समय नहीं हुआ था। न इस बात को सही तौर पर देखा समझा जा सका था कि विश्व की रचना के पंच तत्त्व ही कारण है या कोई अन्य तत्त्व। इसी बात का प्रत्यक्ष विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है कि शरीर रचना किन तत्त्वों से हुई। शरीर को रचना का और विश्व की रचना का ठीक ज्ञान होने पर ही हम आयुर्वेद में प्रवेश करने के अधिकारी बनते हैं। जो विषय दर्शन ग्रन्थ में अत्यन्त संक्षेप में था उसका प्रत्यक्ष प्रायोगिक ज्ञान इस विश्व विज्ञान में है। वास्तव में विश्व विज्ञान आयुर्वेद प्रवेश से पूर्व पढ़ने पर वैद्य निर्भय होकर शरीर के मर्म को समझने के योग्य हो सकता है। यह पुस्तक कितनी ज्ञानवर्धक है। इस पर जो समालोचनाएं अब तक प्राप्त हुई हैं पाठक उससे इसकी उपयोगिता का अन्दाजा लगा सकते हैं। २५० पृष्ठ के ठोस मैटर का मूल्य केवल ३)।

आसव विज्ञान

(तृतीय परिवर्द्धित संस्करण)

यह किसी से छिपा नहीं कि आयुर्वेद का एक चमत्कार-पूर्ण अंग आसवारिष्ट का निर्माण क्रम हमारे पास कितने अपूर्ण रूप में रह गया है। सौ बार आसव बनाइये कठिनता से दो-चार बार खराब होने से बचता है। इसका मुख्य कारण है हमारी प्राचीन रीति का लुप्त हो जाना। इसी लुप्त प्राय: विधि को स्वामी जी ने बड़े परिश्रम से पुनः प्राप्त किया है और उसी को आधुनिक विज्ञान से परिमार्जित कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त पुस्तक में सरल सुस्पष्ट रूप में अंकित किया है। जिसका विस्तार निम्न रूप में है—

[१] आसव की प्राचीनता और उसका ज्ञान, [२] आसव का व्यवहार और उसकी मादकता का अनुभव, [३] माड़ी यन्त्र का आविष्कार और उसके भिन्न-भिन्न सचित्र रूप, [४] आसव व सुराकी ऐक्यता और उसके प्रभाव, [५] आयुर्वेद में आसव का स्थान [६] आसव बनाने का प्राचीन क्रम व भेद, [७] बने बिगड़े आसव की परीक्षा, [८] आसव बिगड़ने का कारण और उसका विकृत रूप, [९] आसव और चुक्र अम्लादि में भेद, [१०] आसव बनने का कारण, [११] आसव में परिवर्तन और किण्व कीटाणु [१२] आसवोत्पादक वस्तुएं और उनका परिमाण, [१३] उत्ताप ऋतु परिवर्तनादि से आसव का बनना, बिगड़ना, [१४] भिन्न-भिन्न ऋतुओं में आसव का बनाना, [१५] आसव को सुरक्षित रखने का अनुभूत उपाय, [१६] आसव बनाने का अधिकार व राज्य नियम, [१७] आसव का शुद्ध रूप और उसका वैज्ञानिक विश्लेषण [१८] आसव के मौलिक पदार्थ व उनका गुण इत्यादि बातों का खूब अनुभवजन्य वर्णन है। स्वामी जी ने इस पुस्तक को दस वर्ष के परिश्रम के पश्चात् लिखा है।

दूसरे संस्करण की विशेषता

इस पुस्तक का जब पहिला संस्करण निकला तो अनेक रूढ़िवादी वैद्यों ने उस पर पेट भर कर आलोचनायें की। दूसरे संस्करण के प्रकाशन समय में स्वामी जी ने उनकी आलोचनात्मक बातों का जब प्रामाणिक व तर्कसिद्ध उत्तर दिया और उन वैद्यों का आह्वान किया गया कि वे पुनः इव पर अपने पक्ष को पुष्ट करने के साधन ढूंढें, इस पर उन वैद्यों से कुछ न बन पड़ा। तीसरे संस्करण तक उन वैद्यों में से एकने भी उत्तर देने का साहस नहीं किया, न स्वामीजी के दिये तर्कों का किसी ने खण्डन किया। इससे स्पष्ट हो गया कि स्वामी जी के तर्क प्रायोगिक आधार पर स्थित हैं। आसव बनाते समय उन प्रायोगिक बातों की सचाई जब स्पष्ट दिखाई देती है तो वे अपनासा मुंह लेकर चुप हो जाते हैं।

तीसरा संस्करण

इस तीसरे संस्करण में स्वामी जी ने कई संदिग्ध तथा अन्य कई ऐसी बातों की भी व्याख्या दे दी है जिसे वैद्यों द्वारा प्रश्न रूप में उपस्थित किया गया था। पुस्तक अपने विषय की इतनी जानकारी से पुष्ट हो गई है कि वैद्यों को अन्य पुस्तक की आवश्यकता नहीं रहती। ऐसी अत्युपयोगी पुस्तक का मूल्य डेढ़ रुपया पोस्ट खर्च भिन्न।

त्रिदोष-मीमांसा

"गवेषणापूर्ण-नव्यउपोद्घातयुक्त विवर्द्धित"
द्वितीय संस्करण
लेखक—स्वामी हरिशरणानंद वैद्य

प्रथम बार जब यह पुस्तक प्रकाशित हुई थी, वैद्य संसार में खलबली मच गई थी। बहुतसे वैद्योंने उसे पढ़कर अपनी राय दी—कि "स्वामीजीने यह आयुर्वेद जगत् पर एक बड़ा ही जबरदस्त बम मारा है।" यदि उस समय त्रिदोष मीमांसा वैद्य संसारके लिये बमवत् थी तो निश्चय ही इसबार उसका उपोद्घात परमाणु बमका रूप ही समझिये।

उस समय वैद्य संसार त्रिदोष-मीमांसामें दिये स्वामीजी के प्रत्यक्ष अकाट्य वैज्ञानिक तर्कों को एलोपैथीके बताकर अपने मनको सान्त्वना देताथा, पर इस बारके दिये उपोद्घातको पढ़कर अब काल्पनिक मृग मरीचिकासे उनकी प्यास नहीं बुझ सकती।

त्रिदोष-मीमांसाका यह उपोद्घात ऐसे वैसे तर्कों व प्रमाणोंसे युक्त नहीं प्रत्युत, यह निबन्ध शुद्ध वेद भगवान् की सर्वोपरि अकाट्य प्रामाणिकताके आधार पर संकलनकर सिद्ध किया गया है कि हमारी प्राचीन चतुर्विध चिकित्सामें आयुर्वैदिक चिकित्साका उद्गम स्थान कहांसे है और वैद्यक वृत्ति का वास्तविक आदि स्रोत कहांसे चलता है।

यदि वैद्य संसार त्रिदोष-मीमांसाके इस दूसरे संस्करणको पढ़ कर भी उस अन्ध प्रगाढ़ निद्रासे न उठा और समयको न पहिचाना तो मानना पड़ेगा कि वैद्य जगत्का अस्तित्व नाम मात्र को है वास्तवमें वह समाप्त हो चुका है। वैद्य संसारको प्रबल उद्बोधन कराने वाली ३०० पृष्ठ की सर्वोत्तम पुस्तक का मूल्य २रु०–५० न. पै., पोस्ट खर्च भिन्न।

सम्मतियां

श्रीयुत डाक्टर सत्यप्रकाश जी एम. डी-लिट्.
वेलीएवन्यू, इलाहाबाद ता० १८-२-४८

"त्रिदोष मीमांसा" के द्वितीय परिवर्धित संस्करण की प्रति के लिये अनेक धन्यवाद।

आपका उपोद्घात मैंने आद्योपान्त देखा। मैं नहीं समझता था कि "त्रिदोष-मिमांसा" जैसे ग्रन्थ के उपोद्घात में प्राच्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयों का इतना सुन्दर समीचीन विवेचन होगा। वैदिक युग पर आपने बहुत अच्छा प्रकाश डाला है इसकेलिये बधाई है। वैद्यवर्ग में त्रिदोषवादके प्रति जो विप्लव आपने आरम्भ किया है, उसका समस्त श्रेय आपको ही रहेगा। न जाने कब हमारा आधुनिक वैद्य समाज रूढ़ियों को त्याग कर सत्यके अन्वेषण के लिये उसी प्रकार अग्रसर होगा, जैसा कि अपने पुरातन ऐतिहासिक काल में था। सत्यप्रकाश

आयुर्वेदाचार्य श्री हरदयालु जी

भूतपूर्व प्रिंसिपल श्रीमद्दयानन्दायुर्वैदिक कालिज, अमृतसर प्रधान—आयुर्वैदिक एण्ड यूनानी रजिस्ट्रेशन बोर्ड, पंजाब

त्रिदोष मीमांसा—जनवरी १९४८ में प्रकाशित द्वितीय संस्करण मेरे सामने है।

इस संस्करण में लेखक ने विद्वत्तापूर्ण उपोद्घात के ९६ पृ. और बढ़ा दिये हैं। इस उपोद्घात से अनेक भ्रम दूर होजाते हैं, वास्तव में यह उपोद्घात सर्वप्रथम पठनीय है। इसमें संशयात्मक स्थलों पर प्रकाश डाला गया है तथा नये और प्राचीन प्रमाणों से सन्देह स्थलों को बोध गम्य बनाने का सफल प्रयास हुआ है।

त्रिदोष मीमांसा के प्रथम संस्करण को पढ़कर वैद्य समुदाय में एक विशेष प्रकार का वायुमण्डल उत्पन्न हुआ था, उन सब प्रश्नों तथा आक्षेपों का उत्तर पूर्ण प्रयत्न से दिया गया है। यदि इससे वैद्य समुदाय का सन्तोष हो जाय तो निःसन्देह लेखक का प्रयत्न सफल समझना चाहिये।

इस विचार से लेखक महोदय अवश्य धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने आयुर्वेदोन्नति के सम्बन्ध में निर्भीकता से अपने विचारों को लेखबद्ध करके आयुर्वेद के महारथियों को सचेत कर दिया है। मत भिन्नता के आधार पर किसी का विरोध करना आर्यत्व का चिन्ह नहीं है। विचारास्पद गहन विषय सर्वदा गूढ़ मनन और तद्विषयक सम्भाषा परिषदों द्वारा निर्णय-स्थान तक पहुँच पाते हैं, लेखक के हृदय में आयुर्वेद के प्रति अश्रद्धा व घृणा नहीं है, प्रत्युत वह उसे विज्ञानानुमोदित शिलोतल पर देखना चाहते हैं।

हरदयालुवैद्य १३-४-४८

ज्वर-मीमांसा

आयुर्वेद-ग्रन्थों में जिन ज्वरों व सन्निपातों का उल्लेख आता है, इस समय उनमें से कौन-कौन से ज्वर तथा सन्निपात मिलते हैं उनके इस समय नाम रूप और लक्षण क्या हैं? तथा कौन-कौन से ज्वर व सन्निपात इस समय नहीं मिलते, लुप्त हो चुके हैं। इसका ठीक-ठीक ज्ञान बहुत कम वैद्योंको है।

चिकित्सा के लिये रोगका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना बहुत जरूरी बात है। लक्ष्य को जिसने लक्षित नहीं किया वह ठीक निशाना नहीं लगा सकता। जो वैद्य रोग को (ज्वर) नहीं पहचान पाते निश्चयही वह चिकित्सामें कभी सफल नहीं होते।

इस प्रकार के कठिन कामों को करनेका काम तो निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के संचालकों का था, वह वैद्य समुदायको प्राचीन और अर्वाचीन ज्वरों (रोगों) का विवेचन करके आधुनिक समय के अनुकूल उन्हें मार्ग प्रदर्शित कर चिकित्सामें उनकी सहायता करते। किन्तु उन्हें अपने ही कामों से अवसर कहां; अकर्मण्यताको देखकर स्वामीजी ने समयानुसार इस कमी को पूर्ण करने का दृढ़ संकल्प किया। उसी के परिणाम-स्वरूप यह ज्वर-मीमांसा है।

स्वामीजी ने ज्वर-सम्बन्धी विषय को लेकर निदानार्थ जो सुझाव पेश किए है तथा रोग-परिज्ञान-सम्बन्धी उनका अपना २५ वर्ष का जो अनुभव था, विस्तृत रूप से दिया है। पुस्तक कितनी उपादेय है वैद्य स्वयं पढ़कर इसकी गम्भीरता का अनुभव ले सकते हैं। मूल्य १रु–५० न० पै०

मन्थर-ज्वर-विज्ञान
(दूसरा संस्करण)
लेखक—स्वामी हरिशरणानन्द जी वैद्य

पाठकों को ज्ञात होगा इस पुस्तक का प्रथम संस्करण 'मन्थर-ज्वरकी अनुभूत चिकित्सा' के नाम से प्रकाशित हुआ था। आज से २५ वर्ष के मध्य मन्थर-ज्वर पर बहुत ही खोजें व छान-बीन हुई, न जाने कितनी नई नई सैद्धान्तिक बातें सामने आई, हजारों रोगियों की चिकित्सा करने पर इतने समय के बाद जो अधिक अनुभव व ज्ञान लेखक को प्राप्त हुआ, उन सबका इस बार के संस्करण में संकलन कर दिया है। चिकित्सा क्षेत्र में पुस्तक की क्रियात्मक उपयोगिता बढ़ाने के लिए आधुनिक प्रत्यक्ष विज्ञान के अनुसार मन्थर ज्वर जीवाणु की उत्पत्ति, वृद्धि एवं संचार का विस्तृत वर्णन उसमें दिया है जिसे पूर्ण तरह से समझ लेने पर इस रोग के प्रसार को रोकने सम्बन्धी समस्त ज्ञान पाठकों को प्रत्यक्ष हो जाता है। मन्थर ज्वर जीवाणु का शरीर के अन्य अंगों पर क्या २ प्रभाव पड़ता है और क्या २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपद्रव होते हैं। तथा उनकी चिकित्सा का भी पूरा वर्णन है।

लेखक के चिरकालिक अनुभव के आधार पर कुछ ऐसे सांकेतिक लक्षणों का वर्णन दिया है जिन्हें देख कर सन्दिग्धावस्था में न रह कर निश्चयात्मक निदान करने में सहायता मिलती है।

चिकित्सा में भी स्वामी जी के चिरकाल से अनुभूत सिद्ध प्रयोगों के साथ २ नवीन आविष्कृत प्रभाव शाली औषधियों का वर्णन भी है जिससे बिगड़े से बिगड़े रोगी के उपचार में चिकित्सक को सहायता मिल सकती है।

शरीर की रोग रोधक शक्ति (क्षमता) क्या है वह कैसे बढ़ाई जा सकती हैं? रक्त के श्वेताणु किस प्रकार रोगों के आक्रमण का मुकाबला करते हैं इत्यादि सब बातों का विस्तृत वैज्ञानिक वर्णन भी पुस्तक में किया गया है जो ज्ञान के पिपासु पाठकों के लिये अवश्य ही सन्तोषप्रद सिद्ध होगा। अकेले मन्थर ज्वर पर इतना विस्तार पूर्वक तथा ज्ञानवर्द्धक ग्रन्थ आपको अन्यत्र न मिलेगा। नव्य ज्ञान विज्ञान से पूर्ण होने के कारण ही पुस्तक का नये सिरे से नाम करण करना उचित समझा गया।

पुस्तक को जो भी वैद्य एक बार पढ़ कर इसमें लिखी विधि अनुसार मन्थर-ज्वर या टायफाइड का निदान करेगा तथा उसकी चिकित्सा में प्रवृत्त होगा वह कभी भी असफल नहीं होगा। मूल्य २) डाक खर्च भिन्न।

वैद्य समाज तथा जनसाधारण का परमसहायक

औषध-गुण-धर्म-विज्ञान

(अर्थात् औषधि गुण परिचय तथा सेवन-विधि)

संशोधित एवं परिवर्धित—तृतीय संस्करण

छप कर तैयार हो गया है जिसकी सहायता से वैद्य समाज के अतिरिक्त साधारण मनुष्य भी आयुर्वेदोक्त प्रत्येक औषधि प्रयोग कर लाभ उठा सकता है क्योंकि इस पुस्तक में रोग-व्यवस्था तथा समस्त विख्यात आयुर्वेदिक औषधियों का परिचय, गुण, सेवन-विधि तथा मात्रादि का निरूपण बहुत ही उत्तम शैली और सरल भाषा में किया गया है। इस बार स्वामी जी ने औषधियों के सम्बन्ध में अपने आज तक के अनुभवों को इस पुस्तक में संकलित कर दिया है।

तृतीय संस्करण की विशेषता यह है कि इसमें आयुर्वेदिक औषधियों के अतिरिक्त स्वामी जी की अपनी जितनी भी अनुभूत पेटेंट औषधियां हैं उन सबका विशद विवेचन तथा लाभ सेवन-विधि मात्रादिक का वर्णन भी अच्छी तरह किया गया है। मूल्य १) डाक खर्च भिन्न।

क्षार-निर्माण-विज्ञान

यह किसी से छिपा नहीं कि आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति में भिन्न-भिन्न वानस्पत्योद्भूतक्षारों का काफी प्रयोग होता है। किन्तु हम देखते हैं कि वैद्यों द्वारा बनाये हुए क्षार प्रायः मैले धूसर वर्ण और देखने में चित्ताकर्षक नहीं होते।

स्वामी जी ने बड़े परिश्रम से क्षार-निर्माण विज्ञान का अनुभव किया और उसको वैद्यों के लाभार्थ क्रमबद्ध कर दिया है। उसमें निम्नलिखित विषयों का समावेश है :— १. आयुर्वेदिक-चिकित्सा-पद्धति में क्षारों की उपयोगिता। २. वनस्पतियों के मौलिक तत्व व क्षारोद्भव धातुएं। ३. भिन्न-भिन्न क्षारों का रासायनिक रूप। ४. भिन्न-भिन्न वनस्पतियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के क्षारजन्य धातुओं का मात्रा। ५. भिन्न भिन्न वनस्पति भस्म से क्षार निकालने की विधि। ६. क्षारों का विशुद्ध स्वच्छ बना कर उसको कण रूप में लाना। ७. भिन्न भिन्न क्षारों के गुण और वज्र क्षार आदि के बनाने का क्रम तथा क्षारों का उपयोग इत्यादि विषय का खूब खुलासा वर्णन है।

मूल्य प्रति पुस्तक ५० नये पैसे

रुद्रयामल तन्त्र

भैरवानन्द योगी कृत

भैरवानन्द योगी ने तान्त्रिक काल के अन्तिम दिनों में एक तन्त्रविषयक रुद्रयामल तन्त्र लिखा था। उस ग्रन्थ के भीतर धातु निरूपणम् नाम से एक अध्याय भिन्न दिया गया था। उस अध्याय के रसायन विषयक-प्रमाणिक अंश के कुछ उद्धरण डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय ने हिन्दू रसायन शास्त्र का इतिहास लिखकर उसके परिशिष्ट में उद्धृत किये थे। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ अप्राप्य था। श्रीयुत यादव जी त्रिकम जी आचार्य की कृपा से इस की हस्तलिखित प्रति प्रकाशनार्थ प्राप्त हुई, दूसरी प्रति कृष्ण गोपाल जी काशी निवासी से प्राप्त हुई दोनों ही प्रतियां लेखन प्रमाद से काफी अशुद्ध थी। उन्हें पं श्रीधर मायाधारी जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य से यथाशक्य शुद्ध कराकर प्रकाशित किया है।

मूल्य ३) रु, पोस्ट खर्च भिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सूचीपत्र से पूर्व के सूचीपत्र रद्द किए गये। १-१०-६०

जगत प्रसिद्ध व अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन द्वारा सम्मानित तथा

म्युनिसिपल कमेटियों, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों, धर्मार्थ औषधालयों के लिये

पञ्जाब सरकार द्वारा स्वीकृत

पञ्जाब आयुर्वेदिक फार्मेसी

का

षाण्मासिक-सूचीपत्र

[केवल रजिस्टर्ड चिकित्सकों, अस्पतालों, अथवा प्रयोग शालाओं के लिये]

नव्य मान निर्देश

भारत सरकार ने अक्टूबर१९६० से प्रचलित नाप तोल के गज बाट आदि हटाकर उसके स्थान पर दाशमिक (मीट्रिक) पद्धति के नये बांट बटखरे चालू कर दिये हैं। अब पूर्व प्रचलित माशा, तोला, छटांक आदि के स्थान पर ग्राम आ गया है। यह ग्राम लगभग हमारे ८ १/४ रत्ती के बराबर है। १००० ग्राम का १ किलोग्राम (कि. ग्रा.) होता है जो पुराने तोल के १ सेर ६ तोले के बराबर होता है। प्रस्तुत सूची पत्र में भाव दाशमिक पद्धति से दिये गये हैं। हमारे प्रत्येक नये पैकिट में तोले, माशा आदि के पुराने बाटों के अनुसार कितना माल है, ग्राहकों की सुविधा के लिये यह नीचे दे रहे हैं।

१ ग्राम (ग्रा.) = ८ १/४ रत्ती	१० ग्राम(ग्रा.) = १० माशा २ १/२ रत्तीके लगभग
२५ ,, = २ तो. १ ३/४ माशे के लगभग	५० ,, = ४ १/४ तो. के लगभग
१०० ,, = ८ तोले ७ माशे ,, ,,	२०० ,, = १७ तोला २ माशा के लगभग

तैल, घृत, आसवारिष्ट आदि तरल दवाओं के भाव लिटर के हिसाब से दिये हैं। १ लिटर में ३३.८ द्रवीय औंस होते हैं। लिटर के सहस्रांश भाग को मिलीलिटर (मि. लि.) की संज्ञा दी गई है। द्रव औषधियों के हमारे नये पैकिंग इस प्रकार हैं :-

१ लिटर (लि.) = ३४ औंस के लगभग	१/२ लिटर अर्थात् ५०० मि. लि. = १७ औंस के लगभग
१/१० लि. अर्थात् १०० मिली लिटर	१/२० लि. अर्थात् ५० मि. लि. = १ ३/४ औंस ,,
(मि. लि.) = ३ १/२ औंस के लगभग	१/१०० लि. अर्थात् १० मि. लि. = १/३ औंस ,,

कृपया भाव देखते व आर्डर देते समय नये नाप तोल ध्यान में रखें। नये पुराने नाप तोल की विस्तृत परिवंतन तालिका आयुर्वेद विज्ञान के इसी अंक में अन्यत्र देखें।

— मैनेजर

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

अध्यक्ष-पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी,

६०-६१, अकाली मार्केट, अमृतसर

दूसरा पता-

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, खारी बावली, देहली-६

१०६वीं आवृत्ति } संस्थापित १९१९ [१ अक्टूबर १९६०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एजेन्सी के नियम

(१) आयुर्वेदिक रस, भस्म, आसव, अरिष्ट, घृत, तैल, पाक, अवलेह, चूर्ण, गुटिका आदि औषधियों की एजेन्सी में दी जायेंगी। (वनस्पतियां, खनिज तथा प्राणिज द्रव्य, क्षार और शुद्ध वस्तुयें इसमें शामिल नहीं)

(२) कोई भी विक्रेता या वैद्य जो एक बार १००) रु० की उक्त बनी औषधियों का आर्डर देगा वह एजेण्ट स्वीकृत होगा।

(३) कम्पनी की आविष्कृत औषधियां जो व्यक्ति १००) रु० की एक बार खरीदेगा वह भी एजेण्ट स्वीकृत होगा।

(४) जो व्यक्ति प्रस्तुत और आविष्कृत दोनों का मिश्रित आर्डर १००) रु० का देगा वह भी एजेण्ट स्वीकृत होगा।

(५) मंगाई हुई औषध ६ मास तक एजेण्ट से न विक सके तो ऐसी औषध—यदि ठीक पैकिंग में बन्द हो—एजण्ट अपने खर्च पर उसे वापस कर उसके स्थान पर अन्य औषध मंगा सकता है।

(६) सूची पत्र में अङ्कित जिस वजन के मूल्यका पैकेट नियत होगा उतनेही वजन के पैकेट उस मूल्य पर भेजे जायेंगे। छोटे वजनके पैकेट—जिनकामूल्य अधिक है यथा २५ ग्राम, १०० ग्राम के पैकेट, २०० ग्राम के पैकेट के भाव पर नहीं भेजे जाएंगे। १० ग्राम का मूल्य ५० ग्राम का ⅕ होगा। **१० ग्राम से कम माल मंगाने पर १० ग्राम के हिसाब से मूल्य लगाकर प्रति पैकट उससे ६ नये पैसे अधिक लिया जावेगा।**

(७) औषधियां वी० पी० पार्सल से या बैंक द्वारा भेजी जायंगी। उधार या जामन पर नहीं भेजी जाएंगी।

(८) १०००) रु० नकद जमानत जमा कराने पर माल उधार पर भेजा जा सकता है।

एजेंसी कमीशन दर और सुविधा

(१०) धारा नं० २ के अनुसार बनने वाले एजेण्टों को कम्पनी की प्रस्तुत आयुर्वेदिक औषध पर १५ प्रतिशत।

(११) धारा नं० ३ के अनुसार बनने वाले एजेण्टों को कम्पनी की आविष्कृत औषध पर २५ प्रतिशत।

(१२) धारा नं० ४ के अनुसार बनने वाले एजेण्टों को कम्पनी की मिश्रित औषध पर १५ प्रतिशत।

(१३) जो व्यक्ति सौ रुपये का बना माल जब २ मंगावेगा पैकिङ्ग खर्च और गुडस ट्रेन का किराया फ्री होगा अर्थात **F. O. R.** जहां ग्राहक मंगावेगा। यदि ग्राहक पार्सल ट्रेन से माल मंगावेगा तो आधा किराया उसे देना होगा।

नोट—नं० १३ का यह नियम मद्रास तथा आन्ध्र राज्यों के ग्राहकों, ऐजण्टों पर लागू न होगा।

(१४) ५०रु० अथवा अधिक के माल पर पैकिङ्ग खर्च माफ होगा। इससे कम माल मंगाने वालेको यह सुविधा नहीं दीजाएगी।

(१५) एजेण्ट बन जाने पर बने माल के थोड़े से थोड़े आर्डर पर भी उक्त हिसाब से बराबर कमीशन मिलता रहेगा।

(१६) विज्ञापन के लिए हमारी फार्मेसी इस समय सिवाय सूचीपत्र के और साधन नहीं जुटाती। प्रचार का प्रबन्ध स्वयम् एजेण्ट अपने खर्च से कर सकते हैं।

विशेष बातें नोट करें

१. प्रत्येक आर्डर के साथ पेशगी आनी आवश्यक है। अथवा एकबार १०) रुपये स्थायी ग्राहक के रूप में जमा करा छोड़ें। उन्हें ग्राहक नम्बर मिल जायगा, ऐसे ग्राहक को फिर पेशगी भेजने की जरूरत न होगी

२. यहां से पैकिंग अच्छी तरह देखकर किया जाता है। पोस्ट या रेल कर्मचारियों की असावधानी से माल की जो हानि हो जाएगी उसकी जिम्मेवारी फार्मेसी की नहीं होगी। हां प्रामाणिक व्यक्ति के सामने बन्द माल का पैकिंग खोलने पर कोई माल कम होगा तो उसकी पूर्ति की जा सकती है।

३. जिन ग्राहकों के पास केन्द्रीय विक्री कर का लाईसेंस हो वह कृपया आर्डर के साथ "सी" फार्म अवश्य भेज दिया करें।

मैनेजर

ग्रन्थ संकेत

र० प्र० सु०	रस प्रकाशसुधाकर	फा० वि०	फार्मेसी विधि	रसे० सं०	रसेन्द्रसार संग्रह	र० यो० सा०	रसयोग-सागर
यू० वि०	यूनानी विधि	बृ० यो०	बृहद्योग-तरंगिणी	भै० र०	भैषज्य रत्नावली	रसा० सं०	रसायन संग्रह
आ० प्र०	आयुर्वेद प्रकाश	र० र० स०	रसरत्न-समुच्चय	वै० सा० सं०	वैद्यकसार संग्रह	च०	चरक
भा० प्र०	भावप्रकाश	शा० ध०	शार्ङ्गधर	र० चं०	रसचण्डांशु	वै० जी०	वैद्यजीवन
र० रा० सु०	रसराज सुन्दर	यो० र०	योगरत्नाकर	च० द०	चक्रदत्त	र० हृ०	रसहृदय
वै० मृ०	वैद्यामृत	यो० त०	योगतरंगिणी	यो० चि०	योगचिन्तामणि	भा० र०	भारतीय रसायनशास्त्र
र० का०	रसकामधेनु	सि० भै०म०	सिद्धभैषज्यमणिमाला	नि०र०	निघण्टु-रत्नाकर		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्जाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अमृतसर

का

सूचीपत्र

साधारण मूल्य की भस्में

नाम	२००ग्रा.	१०० ग्रा.	५० ग्रा.
अकीक (यू० वि०)	१४-००	७-५०	४-००
अभ्रक वज्र (भा.प्र) २१पु.	२०-००	१०-५०	६-००
अभ्रक श्वेत (र.रा.सु.)	५-००	३-००	१-६०
कान्तलोह भस्म (र.रा.सु.)	१२-००	६-७५	३-८०
कांस्य भस्म (आ.प्र.)	१२-००	६-७५	३-८०
कपर्दिका भस्म (आ.प्र.)	५-००	३-००	१-६०
कसीस भस्म (रसे. सं)	३-००	१-७५	१-००
कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म (वै.मृ.)	१४-००	७-५०	४-००
केकड़ा भस्म (यू.वि) रक्तष्ठीवने	१८-००	१०-५०	६-२५
जहर-मोहरा भस्म (यू.वि.)	५-००	३-००	१-६०
ताम्र सोमनाथी भस्म (र.रा. .)	२०-००	१०-५०	६-००
ताम्रकूपीपक्व भस्म (र.रा.सु.)	२०-००	१०-५०	६-००
तुत्थ भस्म (र०रा०सु०)	१०-००	५-५०	३-००
त्रिवंग भस्म (आ०प्र०) २१ पुटी	२८-००	१५-००	८-००
नागभस्म पीत (वृ ० यो०)	८-००	४-५०	२-६०
नागभस्म श्याम (र०का०)	१०-००	५-५०	३-००
नीलांजन भस्म (सुरमा) (भा०र०	८-००	४-५०	२-६०
प्रवालभस्म अग्निपुटी (आ० प्र०)	१८-००	१०-५०	६-२५
प्रवालभस्म चन्द्रपुटी (यू०वि०)	१८-००	१०-५०	६-२५
पीतलभस्म (आ. प्र.)	७-००	३-७५	२-००
वंगभस्म हरितालेन (आ. प्र.)	१८-००	१०-५०	६-२५
वंग भस्म श्वेत (र. रा. सु.)	१५-००	९-००	५-००
बेरपत्थर भस्म (यू० वि०)	१५-००	९-००	५-००
मण्डूरभस्म (र० रा० सु०)	७-००	३-७५	२-००
मृगश्रृङ्ग भस्म (शा. ध.)	७-००	३-७५	२-००
यशद भस्म (यो० र०)	१०-००	५-५०	३-००
रौप्यमाक्षिकभस्म (र० का०)	८-००	४-५०	२-६०
लोहभस्म हिंगुलाग्नियोगेन (आ०प्र०)	१८-००	१०-५०	६-२५
लोहभस्म स्वयमग्नि (र. रा. सु.)	१४-००	७-५०	४-००
लोहभस्मव नस्पति (फा. वि.)	१०-००	५-५०	३-००
शंखनाभी भस्म (र. का.)	४-००	२-५०	१-६०
संगजराहतभस्म (आ. प्र.)	४-००	२-५०	१-६०

नाम	२००ग्रा.	१०० ग्रा.	५० ग्रा.
स्वर्णमाक्षिकभस्म (र. रा. सु)	१०-००	५-५०	३-००
सीपभस्म (मोती) (र. रा. सु.)	१०-००	५-५०	३-००
सीपभस्म (र. रा. सु.)	४-००	२-५०	१-६०
सुरमा श्वेत भस्म (फा. वि.)	४-००	२-५०	१-६०
हरताल गोदन्ती भस्म (आ. प्र.)	३-००	१-७५	१-००

मूल्यवान् भस्में

मूल्यवान् भस्में	२५ ग्रा.	१० ग्रा.
अभ्रक वज्र भ. (आ.प्र.) ६०,,	५—५०	२—५०
कहरवा भस्म (यू० वि०)	१२—००	५—००
गोमेद भस्म (र.का.) मस्तिष्करोगे	२४—००	१०—००
तीक्ष्णलोह भस्म (फा० वि०) शक्तिवर्द्धक	१२—००	५—००
दुरमली भस्म (फा० वि०) ,,		४८—००
दानायेफिरंगभस्म (यू० वि०)		८—००
नागभस्म (आ०प्र०) ५० पुटी	५—५०	२—५०
नीलमभस्म (र०का०) उन्मादे		१५—००
पन्नाभस्म (यु०वि०) मस्तिष्करोगे		१५—००
पुखराज भस्म (र०का०) हृद्रोगे		२०—००
फिरोजाभस्म (यु०वि०) हृद्रोगे		१२—००
फौलादभस्म अपूर्व (फा०वि०) शक्तिवर्धने		१२—००
मयूर पुच्छभस्म (र० रा० सु०) छर्दिरोगे	७—५०	३—५०
माणिक्यभस्म (यु० वि०) हृद्रोगे		९—००
रजतभस्म (चांदीभस्म) हरितालेन	१४—००	६—००
रजतभस्म (चांदी भ०) पारदयोगेन	१४—००	६—००
राजावर्तभस्म (यु०वि०) उन्मादरोगे		६—००
वैडूर्य (लहसुनिया) (फा. वि.)		१०—००
वैक्रांतभस्म (रसा. सं.) मेस्तिष्करोगे	४—५०	२—००
सर्पास्थि भस्म (फा. वि,) कण्ठमालाव्रणे	७—००	३—००
संगयशव भस्म (यु. वि.)	४—५०	२—००
संखियाभस्म (फा. वि.) शक्तिवर्द्धने	१२—००	५—००
हरताल पत्राख्य भस्म		५—००
हिंगुलभस्म (फा. वि.) क्लीवत्वरोगे	१२—००	५—००

मुक्ताभस्म (र०का०) शक्तिवर्द्धने ९०—०० १०ग्रा. ९—५० १ ग्रा..

मुक्ता भस्म चन्द्रपुटी (यू०वि०) ,, ,, ,, ,, ,, ,,

स्वर्णभस्म (शा. ध.) रसायने १९—०० ग्राम

हीरा (वज्र) भस्म ४०-०० १/१० ग्राम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस, रसायन,गुटिका, गुग्गुल आदि

रस	२०० ग्रा.	१०० ग्रा.	५० ग्रा.
अग्निकुमार वृ. (रसे. सं.) अजीर्णे	१८—००	६—५०	५—००
अग्निसून (रसा. सं.) ग्रहणयाम्	१४—००	७—५०	४—००
अग्निमुख (नि. र.) अग्निमांद्ये	१०—००	५—५०	३—००
अग्निरस (र. र. स.)कासे, उरःक्षते	१०—००	५—५०	३—००
अग्नितुण्डीरस (भै. र.) उदर रोगे	१४—००	७—५०	४—००
अजीर्णकण्टक (भै. र. अजीर्णे	१८—००	६—५०	५—००
अजीर्णारि (र. रा. सु) अजीर्णे	१४—००	७—५०	४—००
अतिविषादिगुटिका(र. चं) बालरोगे	७—००	३—७५	२—००
अपचिविनाशी(फा.वि.)अपचिरोगे	१४—००	७—५०	४—००
अश्वकंचुकी (वै.सा.सं.) सर्वरोगे	२०—००	१०-५०	६—००
अर्शोघ्नी वटी (फा. वि.) रक्तार्शे	१०—००	५—५०	३—००
अश्विनीकुमार (अनु. तं.) सर्वरोगे	२०—००	१०-५०	६—००
अहिफेन मुक्तिदाता (फा.वि.)	२८—००	१५-००	८—००
आनन्दभैरव (रसेन्द्र) ज्वरातिसारे	१४—००	७—५०	४—००
आमवातारिरस (भै. र.) आमवाते	१८—००	६—५०	५—००
आमवातेश्वर (भै. र.) "	१८—००	६—५०	५—००
आरोग्यवर्द्धनी(र.र.स)कुष्ठाधिकारे	१८—००	६—५०	५—००
इच्छाभेदी (रसे. सं.) उदररोगे	१४—००	७—५०	४—००
उपदंशकुठार (र. चं.) उपदंशरोगे	१८—००	६—५०	५—००
एलादिवटी (च. द.) कासाधिकारे	४—५०	२—७५	१—६०
एकांगवीर (र.रा.सु) वातरोगे	१८—००	६—५०	५—००
कनकसुन्दर (रसे.सं.) अतिसारे	१४—००	७—५०	४—००
कफकेतु (रसे.सं) कफाधिकारे	१४—००	७—५०	४—००
कफचिन्तामणि (रसे.सं)कफाधिकारे	१८—००	६—५०	५—००
कफकुठार (र.प्र.सु) श्लेष्मरोगे	१८—००	६—५०	५—००
कर्पूरादिरस (र.रा.सु) प्रमेहाधि.	१४—००	७—५०	४—००
क्रव्यादरस वृ. (र.रा.सु)उदररोगे	२८—००	१५-००	८—००
कांचनारगुग्गुल(शा.ध) कण्ठमाला	७—००	३—७५	२—००
कांकायनी गुटिका(यो.र.)अर्शरोगे	७—००	३—७५	२—००
कामदुघा(रसा.सं.)अम्लपित्ते	२०—००	१०-५०	६—००
कासहर (फा.वि.) कासरोगे	७—००	३—७५	२—००
कालारिरस (यो.र.) वातव्याधौ	१८—००	६—५०	५—००
किशोर गुग्गुल (भै.र) वातरक्ते	७—००	३—७५	२—००
कृमिधूलिजलप्लव (रसे.सं.)कृमिरोगे. १	१८—००	६—५०	५—००

रस	२०० ग्रा.	१०० ग्रा.	५० ग्रा.
खदिरादिवटी (भै.र.) मुखरोगे	१०—००	५—५०	३—००
गगनादिलोह(रसे.सं)सोमरोगे	१८—००	६—५०	५—००
गर्भपालरस (र.चं) गर्भिणीरोगे	१४—००	७—५०	४—००
गर्भविनोदरस (रसे.सं)गर्भिणीरोगे	१४—००	७—५०	४—००
गर्भचिन्तामणि(भै.र.)सूतिकारोगे	२४—००	१४-००	७—४०
गन्धकवटी (र.रा.सु.) जठररोगे	१०—००	५—५०	३—००
गन्धकरसायन (रसे.सं)रक्तविकारे	२०—००	१०-५०	६—००
गन्धर्व रस (र.र.स)कम्पवाते	१८—००	६—५०	५—००
गुल्मकालानल(भै.र.) गुल्मे	१४—००	७—५०	४—००
गुल्मनाशनरस (र.र.स.) गुल्मे	१४—००	७—५०	४—००
गुल्मारिरस (र.का.)गुल्माधिकारे	२०—००	१०-५०	६—००
ग्रहणीकपाट (र.रा.सु) ग्रहणयाम	२०—००	१०-५०	६—००
गोक्षुरादिगुग्गुल (यो.र.) प्रमेह	७—००	३—७५	२—००
चतुर्मुख रस (फा. वि.)सन्निपाते	२५—००	१४-००	७—४०
चन्दनादिलोह (भै.र.) जीर्णज्वरे	२०—००	१०-५०	६—००
चन्द्रप्रभावटी (शा.ध)प्रमेहाधिकारे	१२—००	६—५०	३—६०
चन्द्रकला (भै.र.) प्रमेहाधिकारे	१८—००	६—५०	५—००
चन्द्रामृत लोह(भै.र.) जीर्णकासे	१५—००	८—००	४—४०
चित्रकादि वटी(चक्र)अजीर्णे	८—००	४—५०	२—६०
ज्वरघ्नी वटी (र.र.स.) ज्वरे	१३—००	७—००	३—६०
ज्वरमुरारि (भै.र.) सन्निपाते	१५—००	८—००	४—४०
ज्वरार्यभ्रम् (भै.र.) जीर्णज्वरे	१४—००	७—५०	४—००
ज्वरांकुशचोक्युक्त(शा.ध.)विषमज्वरे	१४—००	७—५०	४—००
ज्वरांकुश वृ. (भै.र.) ज्वराधिकारे	१४—००	७—५०	४—००
ताम्र पर्पटी(रसे.सं.) ग्रहणयाम्	२०—००	१०-५०	६—००
त्वक्रोगान्तकवटी(फा.वि.) चर्मरोगे	१०—००	५—५०	३—००
त्रयोदशांगगुग्गुल (भै.र.)वातव्याधौ	१०—००	५—५०	३—००
त्रिभुवनकीर्ति (यो.र.) ज्वरे	१५—००	८—००	४—४०
त्रिपुर भैरव (र.रा.सु.) नवज्वरे	१४—००	७—५०	४—००
दुर्जरजलजेता(र.च.)अजीर्णाधिकारे	१४—००	७—५०	४—००
दुग्धवटी नं.२ (भै.र.) ग्रहणयाम्	१४—००	७—५०	४—००
धात्रीलोह (रसे.सं.) कामलायाम्	१८—००	६—५०	५—००
नवायसलोह (र.रा.सु.) पाण्डुरोगे	१८—००	६—५०	५—००
नारायणज्वरांकुश(यो.र.) ज्वरे	१४—००	७—५०	४—००
नाराचरस (रसे.स.) उदररोगे	१४—००	७—५०	४—००
नित्यानन्द (भै.र.) श्लीपदे	१८—००	६—५०	५—००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस	२०० ग्रा.	१०० ग्रा.	५० ग्रा.
नित्योदित रस (रसे. सं.) अर्शरोगे	१४-००	७-५०	४-००
नृपतिवल्लभरस(र.रा.सु.)ग्रहण्याम्	१८-००	९-५०	५-००
पंचामृत पर्पटी(रसे.सं.)ग्रहण्याम्	२५-००	१४-००	७-४०
पंचवक्त्र रस (रसे.सं.) सन्निपाते	१४-००	७-५०	४-००
प्रतापलंकेश्वर(वृ.यो.)सूतिकारोगे	१९-००	१०-००	५-४०
प्रदरान्तकलोह(फा.वि.)प्रदरानुभूत	२५-००	१४-००	७-४०
प्रदरारिवटी (फा. वि.) स्वेतप्रदरे	१५-००	८-००	४-४०
प्रदररिपु (रसे.सं.) प्रदरे	१५-००	८-००	४-४०
प्राणदागुटिका (भै. र.) अर्शरोगे	७-००	३-७५	२-००
प्रमदानन्दरस (रसे.सं.) रसायने	२०-००	१०-५०	६-००
पुनर्नवागुग्गुल (भै.र.)शोथाधिकारे	७-००	३-७५	२-००
पुनर्नवादिमण्डूर (भै.र.)पाण्डुरोगे	१०-००	५-५०	३-००
बालरस(र.रा.सु.) बालरोगे	१४-००	७-५०	४-००
बालशोषान्तकवटी(फा.वि.)बालशोषे	१४-००	७-५०	४-००
बोल पर्पटी (रसा.सं.) रक्तपित्ते	२०-००	१०-५०	६-००
बोलबद्धरस(वृ.यो.त.)अर्शाधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
मण्डूरवटी(भै.र.)पाण्डुरोगे	१०-००	५-५०	३-००
मरिचादि वटी(शा.ध.) कासरोगे	७-००	३-७५	२-००
मृत्युञ्जय रस(भै.र.) सन्निपाते	१२-००	६-५०	३-६०
मृत्युञ्जयलोह(रसे.सं.)उदराधिकारे	१८-००	९-५०	५-००
मृतप्राणदायी रस(नि.र.) ज्वरे	२०-००	१०-५०	६-००
योगराज गुग्गुल महान् १। लक्ष चोट— समस्त धातुयुक्त (शा. ध.) वातव्याधौ	२०-००	१०-५०	६-००
योगराज गुग्गुल साधारण(शा.ध.)	४-५०	२-७५	१-६०
यकृदरिलोह वृ.(भै.र.)यकृताधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
रजःप्रवर्तिनी (भै.र.) ऋतुकष्टे	१४-००	७-५०	४-००
रसचन्द्रिकावटी(रसे.सं.)शिरोरोगे	१८-००	९-५०	५-००
रक्तपित्तकुलकण्डन(र.रा.सु.)रक्तपित्ते	२५-००	१४-०	७-४०
रसमाणिक्य(तालवाला)रक्तविकारे	१८-००	९-५०	५-००
रामबाणरस(भै.र.) अजीर्णाधिकारे	१०-००	५-५०	३-००
राजचण्डेश्वर(र.चं.) सर्वरोगे	१८-००	९-५०	५-००
लवंगादि वटी(व.जी.) कासरोगे	१०-००	५-५०	३-००
लक्ष्मीनारायणरस(र.चं.)वातरोगे	२५-००	१४-०	७-४०
लक्ष्मीविलासवृ.(र.रा.सु.)शिरोरोगे	२०-००	१०-५०	६-००
लशुनादि वटी(शा.ध.)वातरोगे	७-००	३-७५	२-००
लीलावतीवटी(र.रा.सु.)उदररोगे	१५-००	८-००	४-४०
लोकनाथरस वृहत्(शा. ध.) क्षये	१४-००	७-५०	४-००
लोकनाथ रस लघु(शा. ध.)क्षये	१०-००	५-५०	३-००
लोहरसायन (वं.से.) रसायने	२८-००	१५-००	८-००
लोह पर्पटी (रसे.सं.) सर्वरोगे	२०-००	१०-५०	६-००
वातगजांकुश(रसे.सं.) वातरोगे	२५-००	१४-००	७-४०
वातविध्वंस(वृ.यो.त.) वातव्याधौ	२५-००	१४-००	७-४०
विश्वतापहरणरस(र.रा.सु.)सन्नि.	२०-००	१०-५०	६-००
विषमुष्टिवटी(फा.वि.) आमवाते	१४-००	७-५०	४-००
व्योषादि वटी(यो. चि.) कासे	७-००	३-७५	२-००
श्वासकुठार वृ.(र.रा.सु.)श्वासे	१५-००	८-००	४-४०
शम्बूकादिवटी(भै.र.)शूलाधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
श्वासारिलोह(भै.र.)श्वासे	१४-००	७-५०	४-००
श्वासान्तकरस (फा.वि.) श्वासे	१९-००	१०-००	५-४०
शिरःशूल वज्रारि(भै.र.)शिरःशूले	१४-००	७-५०	४-००
शीतगजकेसरी(भा.प्र.)शीतज्वरे	१४-००	७-५०	४-००
शीतारिरस(भै.र.)ज्वराधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
शूलवज्रणी(रसे.सं.)शूलाधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
शूलगजकेशरीताम्र(शा.ध.) शूलरोगे	२५-००	१४-००	७-४०
शूलगजकेशरीवटी(फा.वि.)पार्श्वशूले	१२-००	६-५०	३-६०
शृङ्गाराभ्ररस(रसे.सं)कासे जीर्णज्वरे	१८-००	९-५०	५-००
शोथ कालानल(भै.र.) शोथे	१०-००	५-५०	३-००
शंखवटी वृहत्(भै.र.)अग्निमान्द्य	८-००	४-५०	२-६०
सर्वज्वरहरलोह(र.सं.)ज्वराधिकारे	१९-००	१०-००	५-४०
सिद्धप्राणेश्वर(रसे.सं.)ज्वरातिसारे	१८-००	९-५०	५-००
सिंहनाद गुग्गुल(यो.चि.)वातरक्ते	७-००	३-७५	२-००
सुखविरेचनी(फा.वि.)सुखविरेचने	१४-००	७-५०	४-००
सूतिकाविनोद(भै.र.)सूतिकारोगे	१४-००	७-५०	४-००
सौभाग्य वटी (भै.र.) कासज्वरे	१४-००	७-५०	४-००
संजीवनी वटी(शा. ध.) अजीर्णे	८-००	४-६०	२-६०
स्मृतिसागर(यो.र.)अपस्मारे	२८-००	१५-००	८-००
स्वच्छन्द भैरव(भै.र.)ज्वराधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
हुताशनरस(यो.र.)श्लेष्मरोगे	१४-००	७-५०	४-००
हृदयार्णव रस(यो.र.) हृद्रोगे	१४-००	७-५०	४-००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्यवान रस, रसायन, गुटिका आदि

नाम वस्तु	२५ ग्रा.	१० ग्रा.
अमीर रस(सि.भैं.म.)उपदंशरोगे	१३–००	६–२५
कस्तूरी भैरव बृ.(भै.र.) ज्वराधिकारे		२८–००
कस्तूरीभूषण (भै. र.) सर्वरोगे		२०–००
कामदुधामोतीयुक्त(रसा.सं.)अम्लपित्ते	१८–००	८–००
कालकूट रस (वै.चि.) सन्निपाते	७–००	३–००
कुमारकल्याण (भै. र.) बालरोगे		४८–००
केशरादिवटी(फा.वि.)जीर्णप्रतिश्याये	९–००	४–००
कृष्णमाणिक्यरस (र.रा.सुं) कुष्ठाधिकारे	९–००	४–००
चिन्तामणि चतुर्मुख(भै.र.)सर्वरोगे	२४–००	१०–००
जयमंगलरस (भै.र.) ज्वराधिकारे		२४–००
जीर्णज्वराररिस (फा.वि.)जीर्णज्वरे	४–५०	२–००
जौहररसकपूर(फा.वि.)उपदंशरोगे	१३–००	६–२५
जौहर त्रिविष(फा.वि.)उपदंशरोगे	१३–००	६–२५
जौहर दारचिकना (फा.वि.)उपदंशरोगे	१३–००	६–२५
जौहरसंखिया (फा.वि.) शक्तिवर्द्धने	९–००	४–००
जौहर संखिया पीलेका, वातरोगे	९–००	४–००
जौहर हरतालपत्राख्य, कुष्ठरोगे	१२–००	५–००
जौहर नौसादर (स्वर्णवगं का) उदरविकारे	१–१०	०–५०
ताप्यादिलोह(रसे.सं.)रसायने	९–००	४–००
तालसिन्दूर(रसा. सं.) रक्तविकारे	१२–००	५–००
त्रिवंगवटी (फा.वि.) स्वप्नदोषे	९–००	४–००
नागरस कस्तूरीयुक्त(र.च.)श्वासे	१८–००	८–००
प्रवालपंचामृत(यो.र.)गुल्माधिकारे	२७–५०	१२–००
पुष्पधन्वारस(भै.र.)रसायने	७–००	३–००
पुटपकविषमज्वारन्तकलोह(भै.र.)ज्वराधिकारे	२४–००	१०–००
पूर्णचन्द्ररस बृ. (रसे.सं.)रसायनाधिकारे	२७–५०	१३–००
बालार्क रस(रसा.सं.)बालरोगे	१८–००	८–००
मल्लसिन्दूर (रसा.सा.) सर्वरोगे	१२–००	५–००
मन्मथाभ्ररस (रसे.सं.) वाजीकरणे	९–००	४–००
मृगाङ्क स्वर्णसंयुक्त (शा.ध.) क्षये		६०–००
रसमाणिक्य(र.रा.सु.) कुष्ठाधिकारे	९–००	४–००
रससिन्दूर द्विगुण (र.का.)	७–००	३–००
रससिन्दूरचतुर्गुणगन्धकजीर्ण	९–५०	४–००
रससिन्दूर षड्गुणगन्धकजीर्ण	१४–००	६–२५
रसपर्पटीहिंगुलोत्थ(र.रा.सु.)ग्रहण्याम्	४–५०	२–००
रसपर्पटी विशुद्ध रसेन ,, ,,	९–००	४–००
राजमृगाङ्क (शा.ध.) क्षयरोगे		४८–००
लक्ष्मीनारायण बृ.(रस.योग.)रत्नोपरत्नयुक्त		८४–००
वसन्तकुसुमाकर (शा.ध.) सर्वरोगे		३६–००
विजयपर्पटी (भै.र.) ग्रहण्यधिकारे		२०–००
विषमज्वरान्तकलोह(भै.र.) ज्वराधि.	४–५०	२–००
वृ०वातचिन्तामणि (भै. र.) वातव्याधौ		३६–००
वंगेश्वर बृहत (भै.र.) प्रमेहाधिकारे		२४–००
शिलासिन्दूर (र.रा.सुं.) कुष्ठरोगे	१२–००	५–००
शीतवातेश्वर(फा.वि.)हृदयावसादे	४–५०	२–००
शीतांकुश रस (र.प्र.)चातुर्थिकज्वरे	४–५०	२–००
समीरपन्नग रस(र.चं.) वातरोगे	१४–००	६–२५
सर्वांगसुन्दर (र.सं.) शूलरोगे	९–००	४–००
सिद्धमकरध्वज (पिष्ट) स्वर्णभस्मयुक्त		७२–००
सूतशेखर(नि.र.) अम्लपित्ताधिकारे		१२–००
स्वर्णचन्द्रोदय षडगुणगन्धकजीर्ण		३०–००
स्वर्ण पर्पटी (र.रा.सु.) क्षयाधिकारे		२४–००
स्वर्णवसन्त मालती (भै.र.) क्षयरोगे		३०–००
स्वर्णवंग नं० १ (र.रा.सु.) प्रमेहे	७–००	३–००
पारे की गोली (वाजीकर)एक गोली का मूल्य		४–००

अंजन तथा नेत्रवर्ती

नाम वस्तु	५० ग्रा.	१० ग्रा.
चंद्रोदयावर्ती (शा.ध.) नेत्ररोगे	२–५०	०–६५
चन्द्रप्रभावर्ती(यो.र.) नेत्ररोगे	२–५०	०–६५
नागार्जुनीवर्ती (भै.र.) ,, धुन्धजालायां	५–००	१–२५
मुक्तादि महाञ्जन (यो.र.) नेत्ररोगे	१०–००	२–२५
नयनामृत सुरमा (शा.ध.) ,, ज्योतिवर्द्धने	११–००	२–५०
सुरमाज्योतिवर्द्धक(फा.वि.) ज्योतिवर्धने	१८–००	४–००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसव अरिष्ट

नाम आसव	५ लि.	२ लि.	१ लि.
अमृतारिष्ट (आयु. वे. सं) ज्वरे	२७–५०	११–५०	६–००
अर्जुनारिष्ट (भै.र.) हृद रोगे	२७–५०	११–५०	६–००
अशोकारिष्ट ,, ,, प्रदरे	२७–५०	११–५०	६–००
अश्वगन्धारिष्ट (वं. से.) प्रमेहे	२७–५०	११–५०	६–००
अभयारिष्ट (भै. र.) अर्शरोगे	२७–५०	११–५०	६–००
कुटजारिष्ट ,, अतिसारे	२७–५०	११–५०	६–००
खदिरारिष्ट(भै. र.) कुष्ठरोगे	२७–५०	११–५०	६–००
जीरकाद्यरिष्ट (भै. र.) प्रसूतरोगे	२७–५०	११–५०	६–००
दशमूलारिष्ट (शा.ध) प्रसूतरोगे	३२–५०	१३–५०	७–००
दशमूलारिष्ट (कस्तूरीयुक्त),,	४५–००	१६–००	१०–००
द्राक्षारिष्ट (शा. ध.) क्षये	२७–५०	११–५०	६–००
रोहितकारिष्ट (भै.र.) प्लीहारोगे	२७–५०	११–५०	६–००
लक्ष्मणारिष्ट (फा.वि)	३५–००	१४–५०	७–५०
सारस्वतारिष्ट (भै.र.)मानसिकरोगे	३२–५०	१३–५०	७–००
सारिवाद्यरिष्ट(भै.र.)कुष्ठे,रक्तविकारे	२७–५०	११–५०	६–००
उशीरासव (शा. ध.) रक्तपित्ते	२७–५०	११–५०	६–००
कनकासव (भै. र.) श्वासरोगे	२७–५०	११–५०	६–००
कुमार्यासव (शा. ध.) उदररोगे	३२–५०	१३–५०	७–००
चन्दनासव (भै. र.) प्रमेहे	२७–५०	११–५०	६–००
द्राक्षासव (शा. ध.) अर्शोदरे	२७–५०	११–५०	६–००
पुनर्णवासव (भै. र.) शोथे	२७–५०	११–५०	६–००
पिप्पल्यासव (शा.ध.) अर्शे, गुल्मे	३२–५०	१३–५०	७–००
लोहासव (शा. ध.) पाण्डुरोगे	२७–५०	११–५०	६–००
लोध्रासव (गदनिग्रह) पाण्डु,अर्शे	२७–५०	११–५०	६–००

शंखद्राव(र. का.)गुल्मे१००मि.लि.के ४–५०,५०मि.लि.के२–५०

आसवनिर्माणार्थ किण्व (सुराबीज) ५० ग्राम का २–००

प्रसिद्ध अवलेह पाक

नाम वस्तु	२½कि.ग्रा.	१कि.ग्रा.	२००ग्रा.
कुटजावलेह (शा. ध.) अतिसारे	१७–५०	८–००	२–००
कूष्माण्डावलेह (शा.ध.) रक्तपित्ते	१७–५०	८–००	२–००
कंटकार्यवलेह (वं. से.) कासे	१७–५०	८–००	२–००
च्यवनप्राशावलेह (च.) रसायने	१७–५०	८–००	२–००
भार्गी गुड़ (भै. र.) हिक्का,श्वासे	१७–५०	८–००	२–००
मदनानन्दमोदक (र. रा. सु.) वाजीकरणे		२४–००	६–००
मूसलीपाक (यो. चि.) क्लीवत्वे	३६–००	१६–००	४–००
वासावलेह (भै. र.) क्षय,कासे	१७–५०	८–००	२–००
श्लेष्मान्तक अवलेह (फा. वि.) शुष्कश्वासे कासे		१६–००	४–००
सौभाग्यशुंठी(यो.चि.)प्रसूतारोगे	१७–५०	८–००	२–००
सुपारीपाक (यो. चि.) प्रदररोगे	२२–५०	१०–००	२–५०
हरिद्रा खण्ड (भै.र.) शीतपित्ते	१७–५०	८–००	२–००
हरीतकी खण्ड ,, शूले	१७–५०	८–००	२–००

सिद्ध घृत

नाम वस्तु	१ लि.	$\frac{1}{10}$ लि.
फलघृत (चक्रदत्त) योनिरोगे	२८–००	३–५०
ब्राह्मीघृत (चक्रदत्त) रसायने	२४–००	३–००
महात्रिफलादि घृत (चक्रदत्त) नेत्र रोगे	२८–००	३–५०

सिद्ध तैल

नाम वस्तु	१ लि.	$\frac{1}{10}$ लि.
अर्क तेल (शा. ध.) कुष्ठे	१२–००	१–५०
आमला तेल (फा. वि.) शिरोरोगे	१४–००	१–७५
अपामार्गक्षार तेल (भै. र.) कर्णवधिरतायां	१२–००	१–५०
इरिमेदादि तेल (शा. ध.) मुखरोगे	१२–००	१–५०
कासीसादि तेल (शा. ध.) अर्शरोगे	१६–००	२–००
केशराज तेल (फा. वि.) केशवर्द्धने	१४–००	१–७५
चन्दनादि तेल (भै. र.) जीर्णज्वरे	१६–००	२–००
दशमूल तेल (भै. र.) वातरोगे	१२–००	१–५०
ब्राह्मी तेल (फा. वि.) बुद्धिवर्धनार्थे	१६–००	२–००
भृंगराज तेल (भै. र.) क्षुद्ररोगे	१४–००	१–७५
महानारायण तेल (शा. ध.) वातरोगे	३२–००	४–००
मरिचादि तेल (चक्रदत्त) कुष्ठे	१४–००	१–७५
महालाक्षादि तेल (शा. ध.) जीर्णज्वरे	१६–००	२–००
विषगर्भ तेल (यो. र.) वातरोगे	१४–००	१–७५
शुष्कमूलाद्य तेल (धन्वन्तरि) कर्णश्रावे	१४–००	१–७५
षटबिन्दु तेल (चक्रदत्त) शिरोरोगे	१६–००	२–००
क्षार तेल (शा. ध.) कर्णशूले	१४–००	१–७५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

शास्त्रीय प्रचलित चूर्ण

नाम वस्तु	१कि.ग्रा	२००ग्रा	५० ग्रा.
अजमोदादि चूर्ण (शा.ध.) वातरोगे	८-००	२-००	०-६५
अग्निमुख (वं. से.) अजीर्णाधिकारे	१४-००	३-५०	१-०५
अपचिविनाशी(फा.वि.)कण्ठमालारोगे	१२-००	३-००	०-९०
अविपत्तिकर (वं.से.)अम्लपित्ते	८-००	२-००	०-६५
अष्टांगलवण (च.) अग्निमांद्ये	१२-००	३-५०	१-०५
अश्वगन्धादि(शा.ध.)बाजीकरणे	८-००	२-००	०-६५
अर्कलवण (वं.से.) उदररोगे	१४-००	३-५०	१-०५
उलट कम्बल चूर्ण, ऋतुकष्टे	१२-००	३-००	०-९०
कामदेव चूर्ण(यो.र.) क्लीवत्वे	१२-००	३-००	०-९०
गंगाधर वृहत्(शा.ध.) अतिसारे	८-००	२-००	०-६५
गोक्षुरादि चूर्ण(वा.भ.)वाजिकरणे	१२-००	३-००	०-९०
चन्दनादि चूर्ण(यो.त.)प्रदरे,रक्तपित्ते	१२-००	३-००	०-९०
ज्वरनाग मयूर चूर्ण(भै.र.)सर्वज्वरे	३२-००	८-००	२-१५
तालीसादि चूर्ण(शा.ध.)ज्वरे, कासे	१४-००	३-५०	१-०५
दाड़िमाष्टक चूर्ण(शा.ध.)अरुचिरोगे	८-००	२-००	०-६५
न्यग्रोधादि चूर्ण (यो. र.)	८-००	२-००	०-६५
नारसिंह चूर्ण (च.द.)क्लीवत्वे	१०-००	२-५०	०-८०
नारिकेल लवण(वं.से.) शूले	१४-००	३-५०	१-०५
पंचसम चूर्ण (शा.ध.) उदररोगे	८-००	२-००	०-६५
नारायण चूर्ण(शा.ध.) उदरविकारे	८-००	२-००	०-६५
प्रदरान्तक चूर्ण(फा.वि.)प्रदररोगे	८-००	२-००	०-६५
पुष्यानुगचूर्ण केसरयुक्त(भै.र.)प्रदरे	२८-००	७-००	२-००
महाखाण्डव (शा.ध.) अजीर्ण रोगे	१४-००	३-५०	१-०५
लवणभास्कर (शा.ध.) अग्निमांद्ये	१२-००	३-००	०-९०
लाईचूर्ण'नायिका'(भै.र.)ग्रहण्याधिकारे	१२-००	३-००	०-९०
लवंगादि वृ. (शा.ध.) ज्वरे, कासे	१४-००	३-५०	१-०५
शिवाक्षार पाचन(फा.वि.)पाचने	१२-००	३-००	०-९०
सारस्वतचूर्ण(भै.र,)मस्तिष्क रोगे	१०-००	२-५०	०-८०
सर्पगन्धा चूर्ण (ब्लडप्रेशर पर)	१४-००	३-५०	१-०५
स्वादिष्ट विरेचन(फा.वि.)मृदुरेचने	१२-००	३-००	०-९०
सितोपलादि चूर्ण(शा.ध.)कासे, क्षये	२८-००	७-००	२-००
सुदर्शनचूर्ण वृ.(शा.ध.)ज्वराधिकारे	१२-००	३-००	०-९०
सुदर्शन चूर्ण (चक्रिका)	१५-००	४-००	१-१५
हिंग्वाष्टक चूर्ण(शा.ध.)उदररोगे	१२-००	३-००	०-९०
हिंग्वादि चूर्ण (शा.ध.) उदररोगे	१२-००	३-००	०-९०
त्रिफला चूर्ण	८-००	२-००	०-६५
द्राक्षादि चूर्ण (यो. र.)	१२-००	३-००	०-९०

लेप और मरहम

नाम वस्तु	५००ग्रा.	५०ग्रा
अर्शघ्न मरहम, अर्शे	८-००	१-००
कालीमरहम, व्रणशोधनार्थे	४-००	०-५०
दशांग लेप, विसर्प रोगे	६-००	०-७५
नीली मरहम, व्रण रोपक	२-५०	०-३०
पीली मरहम, व्रण रोपक	२-५०	०-३०
पारदादिमरहम,जन्तुघ्न या कीटाणुनाशक	१६-००	२-००
श्वेत कुष्ठहरलप, श्वित्र कुष्ठे	४-००	०-५०
सिध्महरलेप, सिध्मरोगे, खर्जु रोगे	८-००	१-००

क्वाथ

नाम वस्तु	१कि.ग्रा.	२००ग्रा.
दशमूल क्वाथ (शा.ध.)प्रसूतारोगे	२-००	०-५०
देवदार्व्यादि क्वाथ(शा.ध.)ज्वरे	३-००	०-७५
पुनर्णवादि क्वाथ (भै. र.) शोथ	३-००	०-७५
लघुमंजिष्ठादि क्वाथ ,, , रक्तविकारे	३-००	०-७५
महामंजिष्ठादि ,, ,, कुष्ठे	४-००	१-००
महारास्नादि क्वाथ ,, वातरोगे	४-००	१-००
सुदर्शन क्वाथ (शा.ध.) सर्वज्वरे	४-००	१-००
हवन सामग्री	२-००	०-५०

फार्मेसी द्वारा प्रस्तुत शुद्ध वस्तुयें

शुद्ध वस्तु	१कि.ग्रा.	५०ग्रा
कज्जली शुद्ध पारदसे		८.००
कान्तलोह	६.००	०.४०
कुचला	४.००	०.२५
कुचला चूर्ण	८.००	०.५०
गन्धकआमलासार	१२.००	०.७५
गुग्गुल	८.००	०.५०
जमालगोटा	२४.००	१.५०
तुत्थ	५.००	०.३०
दालचिकना		१०.००
धतूर बीज श्याम	९.५०	०.६५
पारदअष्ट-संस्कारपूर्ण		१६.००
पारदहिंगुलोत्थ		१०.००
भल्लातक	४.००	०.२५
मण्डूर	२.५०	०.१५
मैनसिल	२०.००	१.२५

शुद्ध वस्तु	१कि.ग्रा	५०ग्रा
रस कपूर		१०.००
रसौंत	८.००	०.५०
राजावर्त 'मशगूल'		२०.००
लोहचूर्ण रेतीका	५.००	०.३०
वंग	२४.००	१.५०
वज्राभ्रक (धान्याभ्रक)	७.००	०.५०
शंख टुकड़े	१.५०	०.२०
शंखनाभी	२.५०	०.१०
शिगरफ		१०.००
श्रृङ्गिक (काला)	११.००	०.७०
श्रृङ्गिकचूर्ण	१२.००	०.७५
सीप मोती	१२ ००	०.७५
संखिया		२.००
हरताल वर्की		५.००

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वानस्पतिक क्षार

नाम वस्तु	२००ग्रा.	५० ग्रा.	नाम वस्तु	२००ग्रा.	५० ग्रा.
पामार्ग क्षार	३—००	१—००	पलाश क्षार	४—००	१—२५
र्क ,,	३—००	१—००	पुनर्नवा ,,	४—००	१—२५
न्द्रायण ,,	४—००	१—२५	मूली ,,	३—००	१—००
ली ,,	४—००	१—२५	यव ,,	३—००	१—००
टकारी,,	३—००	१—००	वज्र ,,	५—००	१—५०
दली ,,	३—००	१—००	वांसा ,,	३—००	१—००
ोक्षुरू ,,	३—००	१—००	स्नुही ,,	४—००	१—२५
वना ,,	३—००	१—००	सत्यानाशी,,	४—००	१—२५
तिल ,,	३—००	१—००	सज्जी ,,	१—००	०—२५

वानस्पतिक तेल व प्राणिज स्नेह

नामवस्तु.	½ लि.	$\frac{1}{20}$ लि.	$\frac{1}{100}$ लि.	नामवस्तु	½ लि.	$\frac{1}{20}$ लि.	$\frac{1}{100}$ लि.
वायन तेल	८.००	१.१०	०.३०	धतूरा तेल			२.२५
ायचीजापानी	६.००	०.८०	०.२५	नीम तेल	४.००	०.५०	०.२०
,, विलायती	२४.००	३.००	०.७५	बादामरोगन	१६.००	२.००	०.४५
स्ट्रायल आगरा	२.००	०.३०		बावचीतेल	१२.००	१.५०	०.४०
कुष्ठ तेल		४.००	१.००	विरोजा तेल	१०.००	१.२५	०.३०
सखास रोगन	५.००	०.६२	०.५०	विरोजा तै.वि.	१६	२.००	०.५०
ुल रोगन	३.००	०.४०	०.१०	भिलावा तेल		२.००	०.५०
बावल मोंगरा	६.००	०.७५	०.२०	मालकंगनीतेल	८.००	१.००	०.३०
मालगोटा तेल	४८.००	६.००	१.५०	यूक्लिप्टसआइल	८.००	१.१०	०.३०
फल तेल	३५.००	४.५०	१.२५	रीछ की चर्बी	६.००	०.७५	
तून तेल	४.५०	०.६२	०.६५	लौंगतेल	२८.००	३.५०	१.००
ुमरक तेल	१०.००	१.२५	०.३५	वराहकी चर्बी	६.००	०.७५	
ारपीन तेल	१.५०	०.२०		सूस मछलीकातेल		४.५०	१.००
ालचीनीतेल	२०.०	२.५०	०.७५	सौंफतेल	३०.००	४.००	१.००
				सांडेकातेल			३.००
				चन्दनतेल		१२.००	३.००

विषोपविष

निम्नलिखित विष मंगाते समय लाइसेन्सदार अपने लाइसेन्स का नम्बर व पूरा २ पता, डिवीजन के साथ दें तथा डाक्टर व वैद्य महोदय पत्र में यह शब्द अवश्य लिखें कि "हम व्यवहार के लिये मंगाते हैं", तभी माल भेजा जायगा।

नाम विष	१ कि.ग्रा.	५०ग्रा.	नाम विष	१ कि.ग्रा.	५०ग्रा.
ुचला	१—२५	०—१२	धत्तूर बीज श्याम	८—००	०—६०
ंखिया सफेद	१२—००	१—००	धतूर बीज सफेद	८—००	०—६०
ंखिया खनिज	१५—००	१—२५	मीठातेलिया सफेद	८—००	०—६०
ंखिया पीला	१५—००	१—२५	मीठातेलिया काला	९—००	०—६५
ंखिया लाल	१५—००	१—२५	हरतालवर्की नं० १	१००-००	
सकपूर	९०—००	६—००	हरतालवर्कीनं० २,	६४—००	
पूर पपड़ी	९०—००	६—००	हरताल वर्कीचूरा	४०—००	३—००
ारचिकना	९०—००	६—००			

प्राणिज व खनिज द्रव्य

नाम वस्तु	१ कि.ग्रा.	१० ग्रा.	नाम वस्तु	१ कि.ग्रा.	१०ग्रा.
अम्बर अशहब नं० १		३०—००			
अम्बर अशहब नं० २		२०—००	नौसादर डपडा	२—००	
अभ्रकश्यामवढ़िया	२—५०		पन्ना नं० १		८—००
अभ्रकवज्र नं० २,	१—५०		पन्ना नं० २		५—००
अकीक दाना नं० १		१—००	पन्ना खरड		२—००
अकीक दाना नं० २		०—७५	प्रवालशाखा	४०—००	
अकीक दाना नं० ३		०—५०	प्रवालशाखामोटी	३०-०	
अकीक खरड़	४—००		प्रवाल मूल	२—५०	
कस्तूरी(खुतन)दानेदार		१८०—००	पारद	८०—००	
कस्तूरी नैपाली		१७०—००	पीतल चूर्ण	४—००	
कस्तूरी काश्मीरी		१५०—००	पत्थर का दिल		३—००
कछुआ खोपड़ी	२—००		पुखराज		८—००
कसीस हरा	०—५०		फिटकरी लाल	०—५०	
कासीस लाल	४—२५		फिटकरी श्वेत	०—६५	
कान्तलोह ग्वालियर	३—००		मधुश्वेत	४—००	
केंचुवे धुले नं. १,	५—५०		राजावर्त		२—००
कौड़ी पीली मोटी	४—००		फिरोजा		८—००
कौड़ी पीलीछोटी	३—००		वंग ईंट की	१३—००	
गोरोचन असली नं० १		२०—००	वीर बहूटी	६५—००	१—००
गोमेद		८—००	बारासिंगा	१—००	
जहरमोहरा ख.	४०—०	०—५०	बेरपत्थर	३५—००	
जहरमोहरावढ़िया	१०-००		मुर्दासिंग	३—००	
जहरमोहरानं. १;	५—०		मण्डूर पुराना	१—००	
जहरमोहरानं. २;	३—०		मैनसिल	४—५०	
जस्ता पटड़ी का	४—००		मैनसिल चूरा	३—००	
जस्ता फूला	३—७५		माणिक्य 'चूनी' नं० १		६—००
जंगार असली	१५—००		माणिक्य ,, नं० २		४—००
जुन्द बेदस्तर		२—५०	माणिक्य ,, नं० ३		२—५०
जोंक	४०—००		माणिक्य खरड		१.००
तुरमली बढ़िया		२०—००	मोतीबसरई नं० १		८०—००
ताम्रतार	६—००		मोतीबसरई नं० २		७२—००
नखू (नख)	५५—००	०—७५	मोती चावला बड़ादाना		४०—००
नमक काला	०—४०		मोती चावला छोटा दाना		४८—००
,, विड	०—५०		मोती बेडोल		४०—००
,, कांच	०—७५		मोती बिंधा हुआ		४५—००
,, सांभर	०—२५		मोती छिलका		१०—००
नाग (सीसा)	२—२५				
नीला थोथा	२—००				
नीलम नं० १		१०—००			
नीलम नं० २		८—००			
नीलम खरड		२—००			
नौसादर देशी	२—५०				

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम वस्तु	१कि. ग्रा.	१०ग्रा.
मोम देशी असली	६–००	
रूपामक्खी चतुष्कोण	३–५०	
रूपामक्खी(गोलदाना)	३–००	
रेगमाही	२५–००	०.३७
लोहचूर्ण रेतीका	२–५०	
वैक्रान्त नं० १,	६–००	
वैक्रान्त नं० २,	३–००	
शिलाजीत पत्थर पा.	४–००	
शिलाजीतपत्थर अ.	३–००	
शिलाजीत सूर्यतापी	३०–००	०.७५
शिलाजीतअग्नितापी	२४–००	०.६०
शोरा कलमी	१–५०	
शंख कीट		३.००
शंख टुकड़े	१–००	
शंखनाभी	१–००	
संग सरमाही	३२–००	
सर्प की केंचुली		४.००

नाम वस्तु	१ कि.ग्रा.
संग्रासक	८–००
सफेदा काशगरी	२–००
समुद्रफेन	४–५०
सरतान	६–००
सिंगरफ रूमी	८०–००
सिंदूर	३–००
सीप मोती बाजारी	२६–००
सीप मोती असली	६–००
सुरमा काला	४–२५
सुहागा	२–००
सुहागा चौकिया	४–५०
सोना गेरू	०–७५
सोनामक्खी	५–००
हरताल गोदन्ती बढ़िया	१–५०
हरतालगोदन्तीनं०२;	१–००
हरताल पीली	६–९–००
हाथी दांत बुरादा	४–००

आयुर्वैदिक तथा यूनानी वनस्पतियां

नाम वस्तु	१कि. ग्रा.
अकरकरा असली	२२५–००
अकरकरा मोटा	१६०–००
अकाकिया	४–५०
अगर काष्ठ	२–००
अतीस श्वेत कड़ु नं०१	३४–००
अतीस मीठी	६–००
अतिबला पंचांग (कङ्घी)	१–००
अनन्तमूल (बंगाल)	२–५०
अनन्तमूल (देशी)	१–००
अपराजिता (विष्णुक्रांता)	२–५०
अपामार्ग बीज	२–२५
अमलतास गूदा	०–५०
अम्बा हल्दी	१–५०
अम्लवेद गुच्छी	३–००
अर्जुन त्वक्	०–७५
अरणी छाल	०–७५
अशोक छाल असली	२–००
असगन्ध नागौरी	२–५०
अफतीमून	२८–००
अबरेशम	२४–००
अजवायन खुरासानी	२–००
अफसनतीन	६–००
अजवायन देशी साफ	१–५०
अजवायन दाना	१–००
अनारदाना	३–००

नाम वस्तु	१कि.ग्रा.
अजमोद	०–७५
अष्टवर्ग	८–००
अंकोल छाल	२–००
अंकोल बीज	१–००
अंजीर मूल	२–००
अंजबार	०–७५
आंवला	०–५०
इक्षुमूल	०–७५
इन्द्रयव मीठे	१–५०
इन्द्रयव कड़वे	१–७५
इन्द्रायण मूल	१–२५
इन्द्रायण फल	१–००
इमली बीज	२–००
इलायची छोटी नं०१,	३२–००
,, ,, नं०२,	२५–००
इलायची बड़ी(डोडा)	४–५०
इलायची दाना	७–००
इरिमेद छाल	०–७५
ईसबगोल भूसी असली	५–५०
ईसबगोल दाना	१–५०
ईश्वर मूल	२–००
उटंगन बीज	५–००
उन्नाब	५–००
उशबा मगरबी असली	११–००
उलट कम्बल	७–००

नाम वस्तु	१कि.ग्रा.	१०ग्रा.
उशक	४–००	
उस्तेखदूस	५–००	
ऊंटकटारा	०–७५	
ऊद सलीब	७–५०	
एरण्डमूल	०–६५	
एरण्ड बीज	१–००	
एलवालुक फल	४–००	
एलुवा(मुसब्बर)असली	१०–०	
ऋषभक(बहमनश्वेत)	५–००	
कचूर	१–५०	
कतृण (रोसाघास)	०–७५	
कदम्बछाल	०–७५	
कपित्थ फल	१–७५	
कपूर कचरी	१–००	
कमरकस नं.१	५–००	
कमरकस नं. २	३–००	
कमल केसर	५–००	
कनेर मूल	२–५०	
कत्था	११–००	
कंकोल छाल	२–५०	
कंकोल बीज	३–५०	
कंचन फल बीज	८–००	
कचनार छाल	१–००	
कबीला छना हुआ	४–००	
कश्मीरी पत्ता	१–५०	
कपूर देशी डली का	५३–००	
कपूरभीमसेनी असली	४–५०	
,, ,, बाजारी	३–५०	
कमल गट्टे	२–००	
कमल फूल	३–००	
करंज पत्र	१–२५	
करंज बीज	२–००	
कलिहारी(लांगुली)मूल	५–००	
कहरवाशमईनं. १;	४–००	
कहरवा शमई नं.२	३–००	
कहरवा चूरा	२–५०	
काकनासा(काकनज)	२–५०	
काकनासा(वाघनखी)	१–००	
काकोली श्याममूसली	१–२५	
काकोली (बंगाल)	१०–००	
काकोली (देहरादून)	४–००	
कालमेघ	१–००	
काकजंघा पंचांग	०–७५	
[illegible]	[illegible]	
कालादाना	१–००	

नाम वस्तु	१कि.ग्रा.	१०ग्रा.
कासनी बीज	२–००	
कायफल	१–००	
कालीजीरी	२–००	
काहू	२–००	
कुकरौंधा	०–६५	
कुलंजन	२–००	
कुन्दरगोंद	२–७५	
कुटकी	४–५०	
कुठ मीठी	१–००	
कुष्ठ उत्तम नं०१;	७–००	
कुष्ठ ,, ,, २;	४–५०	
कुटज (कूड़ा) छाल	०–६५	
केसरमोंगरा काश्मीरी		१९.००
केसर तुरला		१८.००
कौंचबीज(कालेछोटे)	१–५०	
कंटकारी लघु पचांग	०–६५	
कंटकारी फल	१–५०	
कंटकारी वृहती पंचांग	०–६५	
कंकुष्ठ(उशारारेवन्द)	५०–००	
खतमी	२–५०	
खब्बाजी	१–७५	
खस (बम्बई)	२–००	
खदिर छाल	०–६५	
खसखास	२–००	
खुरफा	२–२५	
खूबकलां	३–००	
गजपीपल	०–७५	
गम्भारी छाल	०–७५	
गन्ध प्रसारणी	०–७५	
गारीकून	३०–००	
गावजवां	२–००	
गिलोय	०–५०	
गुञ्जा श्वेत	५–५०	
गुञ्जा लाल	२–००	
गुग्गुल महिषाक्ष साफ	३–५०	
गुड़ ५०साल पुराना	८–००	
गुड़मार बूटी	१–००	
गुड़हल	६–००	
गुल गावजबां	२८–००	
गुलबनफशानं०१;	११–००	
गुलबनफशा नं०२,	९–००	
गुल सुर्ख पेशौरी	६–००	
गुल सुर्खदेशी(पखुड़ी)	६–००	
गोखरू पञ्चाङ्ग	१–००	
गोखरू फल लघु	१–२५	
गोखरू फल वृहत	२–५०	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम वस्तु	१कि.ग्रा.	नाम वस्तु	१कि.ग्रा.	नाम वस्तु	१कि.ग्रा.	नाम वस्तु	१कि.ग्रा
गोंदबबूल	४-००	तुख्म खिरनी	५-००	परस्योशां (हंसराज)	१-५०	बादरंजबूया	०-७५
गोंदकतीरा	४-५०	तुख्म धनन्तर	१०-००	पलास पापड़ा	०-७५	बादावरद	४-००
गोंद छुहारा	४-७५	तुख्म बालंगा	२-५०	प्रसारणी	०-७५	वायविडंग	२-००
गोरखमुण्डी	०-६५	तुलसीपत्रअसली	४-००	पाटला त्वक्	०-५०	बासा मूल त्वक्	३-००
गोरखपान	१-२५	तेजपत्र	०-७५	पाठा पंचांग	१-००	बांसा पत्र (पञ्चाङ्ग)	०-५०
गौरीसर (सिलारा)	२-००	तेजबल बीज (कबाबा)	२-००	पाठा मूल (पाढ़ मूल)	१-००	बांसा मूल	०-७५
गिगरन छाल	१-२५	तेजबल त्वक्	२-००	पाषाण भेद	०-६५	वट जटा	०-७५
चन्दन काष्ठ श्वेत	९-००	तोदरी लाल	१८-५०	पिप्पली लघु	१२-००	विजया बीज मोटे	१-२५
चन्दन बूरा श्वेत	९-५०	तोदरी श्वेत	२०-००	पिप्पली बृहत	५-५०	बिहीदाना	९-००
चन्दन बूरा लाल	१-५०	तोदरी पीली	१५-००	पिप्पली मूल नं० १	७-००	विदारी कन्द	१-२५
चव्य (कृष्ण मिर्च मूल)	१-५०	दन्तीमूल	१-२५	पिप्पली मूल नं. २;	५-००	विधारा बीज	१६-००
चक्रमर्दबीज	०-६५	दरूनज अकरबी	९-००	पीपल जटा	३-००	विधारा मूल	१-०
चन्द्रसूर (हालौं)	१-५०	दरियाई नारियल	१८-००	प्रियंगू फल (बङ्गाल)	८-००	बिरोजा सूखा	१-७५
चावल मोंगरा बीज	४-००	दशमूल चूर्ण (क्वाथ)	२-००	प्रियंगू (पञ्जाब) असली	१-५०	बिरोजा गीला	१-५०
चित्रक मूल	२-००	दशमूल विना कुटा	१-००	पित्तपापड़ा (शाहतरा)	०-७५	बिस्फायज	२-००
चित्रक मूल छाल	३-५०	दालचीनी	२५-५०	पियाबांसा	०-७५	विजयसार छाल	१-००
चिढ़िया कन्द	६-००	दारूहल्दी (लकड़ी)	०-५०	पृश्निपर्णी लम्बा पत्र	२-००	विजयसार लकड़ी	०-७०
चिरायता	२-००	देवदारु	०-७५	पृश्निपर्णी	२-००	विजयसार गोंद (दमुलखैवन)	१२०-०
चिरौंजी	५-५०	देवदारु बुरादा	१-७५	पुनर्णवा मूल	१-५०	बिल्वछाल	०-७५
चोकमूल पञ्जाब	२-००	देवदालीफल (बन्दालडोडा)	६-००	पुष्कर मूल	४-७५	बीजाबोल (मुरमकी)	१३-००
चोपचीनी असली	९-००	द्रोणपुष्पी	०-७५	पुदीना पंचांग	१-००	बीजबन्द (काले)	१-५०
चोरक (ग्रन्थिपर्ण)	२-५०	धवलबरुआ (चांदमरुआ)	१२-००	पुदीना जंगली	१-७५	बीजबन्द लाल	०-७५
जलपीपल	०-७५	धतूरा पंचांग	०-७५	फरफीऊन विलायती	५-००	बेलगिरी	०-५०
जलनिम्ब	२-००	धातकी (धावेके) फूल	०-७५	फालसा छाल	१-००	बोजीदान	१०-००
जटामांसी (भूतकेसी)	३-५०	धनियां	२-२५	फिन्दक	३-५०	वंशलोचन नं. १;	८०-००
जलापा	२०-००	धमासा	१-००	फिरंजमुश्क	२२-००	वंसलोचन नं. २	७०-००
जरिश्क मीठा	९-००	धूपलकड़ी	३-००	फूलसुपारी	२-५०	वंशलोचन नं. ३	६०-००
जरिश्क खट्टा	६-००	नकछिकनी	१-५०	बच मधुर	३-५०	भारंगी	०-७५
जवासा	१-००	नगन्ध बावरी	१-५०	बच मधुर बारीक	३-००	भाँगरा	१-५०
जायफल वारीक	५६-००	नागरमोथा	०-६०	बला पञ्चांग (खेरटी)	०-७५	भिलावां	०-५०
जावित्री	६६-००	नासपाल	०-७५	बहमन सफेद	५-००	भूआंवला	१-५०
जामुन गुठली	०-५०	नागकेसर असली	३५-००	बहमन लाल	९-००	भोजपत्र	१-२५
जीवक (हरा)	४-००	नागकेसर बाजारी दाना	३-००	बहुफली	१-००	मकोय दाना	२-५०
जीवपुत्रक (जियापोता)	१-५०	नागबला	०-७५	बच तीक्ष्ण	०-७५	मगज कद्दू	४-५०
जीरा श्वेत	३-००	निर्गुण्डी पंचांग	१-००	बकायन छाल	०-५०	मगज खरबूजा	४-५०
जीराकाला असली नं. १,	१२-००	निर्मली	१-२५	बकायन फल	०-७५	मगज खीरा	५-५०
जीवन्ती (बंगाल)	३-५०	निम्बत्वक	०-५०	बबूल छाल	०-५०	मगज तरबूज	१-७५
जूफा	४-५०	निंबोली नीम की	०-५०	बरना छाल	२-००	मगज बादाम	१०-००
जैपाल बीज (जमालगोटा)	४-५०	निम्बफूल	१-५०	बहेड़ा	०-५०	मस्तगी रूमी असली	१८-००
जंगली प्याज सूखा	२-००	निर्बिसी (जदवार)	१०-००	वृद्धि (सालव कसेरू)	४-००	मत्स्याक्षी	१-५०
तज नं. १	३-५०	निसोत (त्रिवृता)	१०-००	ब्रह्म दण्डी	०-७५	मयूर शिखा	१-५०
तगर (सुगन्ध बाला मूल)	३-००	नीलकण्ठी	२-००	ब्रह्मीबूटी धुली हुई	२-००	ममीरी मूल	५-००
तालमखाना	२-००	नीलोफर फूल	१-५०	ब्राह्मीबूटी	१-५०	महाबला (सहदेवी)	०-७५
तालीस पत्र असली	२-५०	पतङ्ग काष्ठ	२-००	बराहीकन्द	१-००	महामेदा	८-००
तिंतडीक (समाक दानां)	२-००	पतङ्ग बूरादा	३-००	बावची	०-६५	मूषाकर्णी असली	२०-००
तुख्मबीन असली	५-५०	पटोलपत्र	२-००	[illegible]	२२-००	मरोड़फली	०-६५
तुख्म रेहां	१-००	पद्मकाष्ठ (पद्माख)	१-००	बालछड़ (त्रिछीलोटन)	३-५०	मैनफल	१-००
तुख्म कसूस असली	३-५०					महुआ फूल	१-५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम वस्तु	१ कि. ग्रा.
माजूफल	५—००
माल कंगनी	३—००
माषपर्णी	१—००
माईं	१—५०
मिर्च श्वेत	१२—००
मिर्च काली नं० १	६—५०
मुनक्का काला (असली)	३—५०
मुश्कतरामसी	३—००
मुश्क वाला गांठ	३—००
मुद्गपर्णी	०—७५
मुलहठी	२—००
मूर्वा	२—००
मूसली श्वेत	२०—००
मूसली श्याम	१—००
मेदा (शकाकल)	५—००
मेढ़ासिंगी	२—००
मैदा लकड़ी	०—५०
मोचरस असली	३—००
मौलश्री छाल	२—५०
मजीठ	३—५०
रतन जोत	३—००
रसौंत	४—००
रास्नापत्र असली	२—००
रास्ना मूल बंगाल	१—७५
राल	४—५०
रुद्रवन्ती	२—००
रेणुका बीज	२—५०
रेशा खत्मी	४—५०
रेवन्द खताई	४६—००
रेवंद चीनी	२—००
रोहितक छाल	१—००
लता कस्तूरी	७—००
लवंग (लौंग)	२५—००
लाख पीपल	२—५०
लाजवन्ती बीज (छोटे)	४—००
लोघ पठानी	१—००
लोबान कौड़िया	८—००
शङ्खपुष्पी	१—००
शरपुंखा	०—६५
श्योनाक छाल	१—००
शालपर्णी	०—७५
शिला रस	५—५०
शिवलिंगी बीज	७—५०

नाम वस्तु	१ कि. ग्रा.
शीरखिश्त विलायती	१६—००
समुद्रशोष	१—२५
सत्यानासी बीज	१—००
सप्तपर्णछाल	१—५०
सपिस्तान(लसूड़ियां)	१—००
सकमूनिया ऊंटनी	८०—००
सतावर	२—७५
सनाय	२—००
समुद्र फल	०—७५
स्थौणेयक (जम्बू)	४—००
सातला (शिकाकाई)	१—५०
सालब प्याजी	९—५०
सालब लहसुनिया	४—५०
सालब मिश्री	६४—००
सालब पंजा नं०१;	५६—००
सालब पंजा ,, २;	३०—००
सिरसबीज सफेद	२—००
सिरस बीज काले	३—५०
सिम्बलमूसली	१—००
सीतलचीनी(सर्दचीनी)	१०—००
सुपारी काठा	७—५०
सुपारी दक्षिणी	८—००
सुगन्धवाला पंचांग	१—००
सत्व गिलोय	१०—००
सत्व अजवायन	४४—००
सत्व पुदीना	१४०—००
सत्व लोबान	१२—००
सत्व निम्बू	६—५०
सत्व मुलेठी	१२—००
सुरञ्जां शीरीं (मीठी)	१८—००
सुरञ्जांतलख (कड़वी)	१५—००
सुहांजना छाल	०—६५
सौंठ पूर्वी (बम्बई)	२—५०
सोमवल्ली	१—५०
सोया	१—५०
सौंफ	२—००
सौभाञ्जन बीज	३—५०

नाम वस्तु	१ कि. ग्रा.
हरमल बीज	१—५०
हल्दी बढ़िया	२—००
हाथी सुण्डी	०—७५
हाऊबेर	१—७५
हिरनखुरी	०—६५
हिंगु पत्री	२—००
हींग तालाव	४०—००
हींग अंगूरी	३६—००
हींग हीरा	३२—००
हींग बाजारी	२०—००
क्षीर काकोली(बंगाल)	६—००
क्षीर विदारी	१—५०
त्रायमाण	४—००

वर्क (पत्र) सोना चांदी

स्वर्णदफ्तर १२० पत्र ४ रत्ती	८.५०
स्वर्ण दफ्तरी १२० पत्र ५ रत्ती	९.००
स्वर्ण ,, ,, १ मा.	१४.००
स्वर्ण ,, ;, २ ,,	२६.५०
स्वर्ण ,, ,, ३ ,,	४०.००
स्वर्ण का चूरा १ ,,	१३.००
चांदी १ दफ्तरी ३ ,,	१.५०
चांदी दफ्तरी ४।। ,,	२.००
चांदी ,, ६ ,,	२.५०
चांदी ,, ८ ,,	३.००
चांदी ,, १० ,,	४.००
चांदी चूरा १ तो.	३.५०

हरीतकी भेद

नाम वस्तु	१कि. ग्रा.
हरड़ जीवन्ती नं० १	२६—००
हरड़ जीवन्ती नं० २	२०—००
हरड़ जीवन्ती– नं०३,४,५	१५—००,१०—००,५—००
हरड़जीवन्ती साधारण	३—००
हरड़अभया(लघुबीजा)न०१,	२०.०
हरड़ अभया—नं० २, ३, ४	१०—००, ८—०० ६—००
हरड़ विजया गोल	२५—००
हरड़ अमृता (काबली)– नं० १, २, ३;	१२—००,६—००,४—००

हरीतकी प्रति नग

हरीतकी १ नग ३ तो. ८ मा.	६०—००
हरीतकी नग एक ३।) तो.	४०—००
हरीतकी ,, ,. ३) ,,	३०—००
हरीतकी ,, ,, २।।।) ,,	१५—००
हरीतकी ,, ,, २।।) ,,	१०—००
हरीतकी ,,,, २।=) ,,	८—००
हरीतकी ,, ,, २।-) ,,	६—००
हरीतकी ,, ,, २।) ,,	४—००
हरीतकी ,, ,, २≡) ,,	३—५०
हरीतकी ,, ,, २=) ,,	३—००
हरीतकी ,, ,, २-) ,,	२—५०
हरीतकी ,, ,, २) ,,	२—००
हरीतकी १ तो. ११ माशा की	१—५०

आयुर्वेदीय सिद्धांतों की विज्ञान सम्मत विवेचना के लिये एवं नव्य ज्ञान विज्ञान की नित्यप्रति हो रही प्रगति से अपने आपको परिचित रखने के लिये प्रसिद्ध मासिक पत्र 'आयुर्वेद विज्ञान' का स्वाध्याय करें। वार्षिक मूल्य केवल ३)

आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय

खारी बावली, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी द्वारा आविष्कृत

गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया से रजिस्टर्ड

हज़ारों बार की परीक्षित औषधियां

अनेमीन

(पाण्डु, कामला, की औषध)

लाभ—विषम ज्वर के पश्चात् यकृत, प्लीहा बढ़ जाने पर यह दवा लाभ करती है। शरीर में रक्त की कमी को दूर करती है। एक सप्ताह के सेवन से कुछ न कुछ लाभ दिखाईदेता है। रक्त की कमी, शोथ, जलोदर आदि रोगों में लाभ करती है। मात्रा १ गोली सुबह, १ गोली शाम को।

सेवन विधि—दही, तक्र व दूधसे दोनों समय सेवन करावें

१४ गोली के पैकट का मूल्य २—००

अमीरी जुलाब

योग—**गुलाब की गुलकन्द में कुछ सरल रेचक द्रव्य मिलाये गये हैं।**

गुण—नाजुक और अमीर मिजाज के आदमी या निर्बल स्त्रियों के लिये जुलाबी गुलकन्द बड़ी स्वादिष्ट है और बच्चे से लेकर बड़ों तक जिनका मृदुकोष्ठ हो बड़ी मुफीद है। इसके खाने से न तो जी मचलाता है, न पेट में दर्द, जलन व मरोड़ ही होता है; रात्रि को सोते समय ३-४ माशा पानी से या दूध से खा लो सुबह को १-२ दस्त खुलकर आ जाते हैं। जुलाब लेना हो तो सुबह को गर्म दूध या गर्म जल से ३-४ माशे के लगभग दवा खा लें २-३ दस्त खुलकर आ जाएंगे।

२५ ग्राम दवा के पैकट का मूल्य २—००

अनिद्रांतक वटी

(उन्माद और रक्तचाप की उत्तम दवा)

गुण—जिन रोगियों को खून का दबाव बढ़ जाने के कारण नींद नहीं आती या किसी मानसिक रोग जैसे उन्माद, मालीखोलिया, चिन्ता या अन्य ऐसे विकार जिनका प्रभाव दिमाग पर बना रहता है और नींद नहीं आती-ऐसी हालत में इस दवा को दो चार दिन खिलाने से ही रोगी को आराम की नींद आने लगती है। उक्त कारण के उन्माद रोगियों में से ८० प्रतिशत को यह पूरा लाभ पहुँचाती है। बढ़े हुये रक्त चाप में भी बहुत लाभ करती है। २५ ग्राम के पैकट का मूल्य २—००, ५० ग्राम का ४—०० है

मात्रा—१ से २ टिकिया पानी या दूध से दें।

अलसोरीन

(मुँह के छालों की दवा)

लाभ—किसी भी रोग के कारण मुँह में छाले पड़े रहते हों और जख्म बने रहते हों, यह दवा उक्त छालों को ठीक करने के लिये उत्तम है। मुँह में छिड़कते ही दर्द का आराम मिलता है।

१५ ग्राम का पैकट मूल्य २—००

ऑपथलमीन

लाभ—आंख आना या आंख दुखना, आंख की पुरानी लाली, आंख के गोलकों का दर्द, धुन्ध, जाला, आंख से पानी जाना और खारश और आंख में हुये क्षति में फौरन लाभ दिखाती है। बहुत थोड़ी दवा सलाई द्वारा आंख में लगावें। ५ मिली लिटर की शीशी का मूल्य २—००।

आस्थमीन

(बलगमी दमा की उत्तम दवा)

लाभ—यह दवा बलगमी दमा पर अच्छा काम देती है, जिसका दौरा प्रभातको अधिक होता हो और बलगम गाढ़ी, पीली अधिक मात्रामें निकलती हो, कुछ दिन सेवन करने पर दमा जड़ से जाता रहता है।

सेवन—१ गोली पानी या दूध से दें।

१४ गोली के पैकट का मूल्य २—००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एट्रोफील

(सूखिया मसान रोग की उत्तम दवा)

गुण—यह दवा बच्चों के सूखा रोग (मसान) में अत्यन्त गुण करती है। जिसे लोग सूखिया मसान या परछाई पड़ना भी कहते हैं, उसमें यह दवा अत्यन्त लाभ करती है। कुछ दिन सेवन करने से बच्चा खूब मोटा ताजा हो जाता है। १ गोली सुबह १ शाम पानी से दें। १४ गोली के पैकट का मूल्य २—००

एलोप्सीन

(बालचर की उत्तम दवा)

गुण—कभी-कभी एकाएक सिर के या दाढ़ी मूँछ के बाल गिरने लग जाते हैं और दुवन्नी चुवन्नी के बराबर जगह बिल्कुल साफ हो जाती है। इस रोग को बालचर या बालखोर भी कहते हैं। इसके लिये हमारी यह औषध लाभदायक है। सेवन-थोड़ी सी मरहमको अँगुलीसे उस जगह पर लगाकर मालिश करें जहां गंज हो। १५ ग्राम के पैकट का मूल्य २—००।

एस. टुथ पौडर

(सर्वश्रेष्ठ सुगन्धित मंजन)

लाभ—दांतों का दर्द, दांतों में पानी लगना, दांतों का कमजोर होना, हिलना, मुँहसे दुर्गन्ध आना इत्यादि दांतों व मसूढ़ों की बीमारियों में लाभ करता है।

२५ ग्राम का पैकट मूल्य १—००

एस. डिस्पेप्सोल

शाही हाजमा

(बड़ा स्वादिष्ट, पाचक चूर्ण)

लाभ—बदहजमी, खट्टे डकार, वमन, मितली, अतिसार, उदरपीड़ा आदि को दूर करता है। २०० ग्राम के पैकट का मूल्य २—५०।

एस. पायोरीन

(पायोरिया की उत्तम औषध)

लाभ—एस. पायोरीन के प्रयोग से एक तो गला हुआ मांस ठीक होकर पुनःभरने लगता है, दूसरे हिलते हुए दांत मजबूत हो जाते हैं।

प्रयोग—ब्रश या दातुन पर दवा को लगा कर मसूढ़ों की जड़ों में मंजन की तरह लगाओ, और कुल्ला कर डालो। २५ ग्राम के पैकट का मूल्य २—५०

एस. बाल घूंटी

प्रायः देखा जाता है कि जहां पेट में नुक्स हुआ कि बच्चों के पेट में दर्द, अतिसार, ज्वर आदिके उपद्रव दिखाई देने लगते हैं। ऐसे समय यह बाल घूँटी बड़ी ही लाभदायी है। इसकी १-२ माशे तक की मात्रा जलमें घोलकर पिला देने से एक दो दस्त खुलकर आ जाते हैं। यदि १ माशेसे कम दिया जाय तो मल का पाचन होजाता है जिससे आते हुए दस्त बन्द होजाते हैं और ज्वर आदि उपद्रव सब जाते रहते हैं। इस घूँटी को सप्ताह में एक दोबार बच्चों को देते रहें तो किसी प्रकार की बीमारी होने का भय नहीं रहता।

मूल्य २५ ग्राम का २—००

एस. बाल शर्बत

(बच्चों की ताकत के लिए आयुर्वेदिक शर्बत)

यह शर्बत बच्चों की प्रत्येक निर्बलता में अत्यन्त लाभदायक है। बीमारी से उठे हुए बच्चों के लिए तो यह शर्बत अमृततुल्य है। अत्यन्त रक्त-वर्द्धक तथा शक्ति वर्द्धक है। पाण्डु, रक्त की कमी आदि रोगोंमें बड़ों को भी फायदा करता है। मू० ५० मि. लि. की शीशी १—००; १०० मिली लिटर रु० २—००

एस. वेजीटेबोल

(विष्टब्धहर और रेचक गोली)

लाभ—रात्रि को सोते समय ३ से ४ गोली तक यदि खाई जायें तो सुबह तक एक दो पाखाने साफ आ जाते हैं, ४ से ६ गोली दिनमें खाई जावें तो चार पांच जुलाब आकर उदर साफ हो जाता है।

२० गोली का पैकट ०—६० न. पै.

८० गोली का पैकट मूल्य २—००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओजीना

नये-पुराने जुकाम की फलप्रद औषध

लाभ—जिन व्यक्तियों का जुकाम के कारण दिमाग कमजोर हो या जुकाम बिगड़कर नजला या पीनस बन गया हो, कोई औषध शरीर के अनुकूल न बैठती हो ऐसी दशा में ओजीना की दो चार खुराकें ही जुकाम ठीककर देती हैं।

१०० ग्राम माजून का पैकट मूल्य २—००

कटारीन

लाभ—दमा व पुरानी खांसी में सुबह के समय जब काफी बलगम खारिज होती हो और बलगम की अधिकता से रोगी अधिक कमजोर हो चुका हो तो कटारीन के सेवन से अत्यन्त फायदा होता है।

सेवनविधि—सारी दवाको १० तोला खांड में डालकर मिलालें और शीशी में भर कर रख लें खुराक १-१½ माशे दोनों समय पानी से खांय। १ मास की दवा के पैकट का मूल्य २—००

कर्णदुःख हर तेल

लाभ—यह तेल कान के दर्द को फौरन बन्द करताहै। इससे भिन्न इसमें सबसे बड़ी खूबी यह है कि कान से पानीवत् पाक या राद सदा बहता हो, कान के भीतर जख्म हो रहे हों तो इसके कुछ दिन डालतें रहने से कानका बहना बिल्कुल बन्दहो जाता है। २५ मिली लिटर की शीशी १—५०

कफसोल

(खांसी की दवा)

लाभ—राजयक्ष्मा की खांसी को छोड़ कर बाकी प्रत्येक खांसी में इसके सेवन से अवश्य लाभ होता है। श्लेष्मज श्वास व दौरे के श्वास को भी रोकती है। इसके सेवन से पुरानी से पुरानी खांसी भी जाती रहती है मात्रा—आधी रत्ती से एक रत्ती तक शहदमें दें।

२५ ग्राम के पैकट का मूल्य २—००

१० ग्राम के पैकट का मू० १—००

कायाकल्पवटी

लाभ--जिन आदमियों को अस्थि व्रण हो रहे हों गम्भीर व्रण निकलते हों, नासूर हो गया हो, जिनके जख्म जल्दी न भरते हों, शरीर पर रक्त विकार के भयङ्कर चिन्ह बने रहते हों, ऐसे व्यक्तियों को इन गोलियों के सेवन करने से पूरा लाभ होता है

५० गोली पैकट २—००

१०० गोली पैकट ३—००

कार्बकोलीन

लाभ—कार्बंकल फोड़ा, शराविका, कच्छपिका अदीठव्रण आदि जिसके नाम हैं, यह मरहम उस व्रण को राजी करने में पूरा प्रभाव दिखाता है। यह मरहम-केन्सर में भी लाभदायक हैं। जो व्रण प्रसरणशील भयङ्कर उपद्रव वाले दाहकारी हों जिनमें मांस, त्वचा गलती चली जाती हो उनमें अत्यन्त शांति देता है।

२५ ग्राम के पैकटका मूल्य ४—००

कुन्तल-जीवन

(केशवर्धक लेपन)

लाभ—जिन व्यक्तियों के बाल अधिक झड़ते हों या किसी निर्बलतादि कारणों से टूटते रहते हों या आधुनिक कृत्रिम सुगंधित तेलों के बुरे प्रभाव से गिरने लग रहे हों, किसी चिन्ता, शोक के कारण निर्बल होकर झड़ रहे हों अर्थात सामूहिक रूप में समय से पूर्व ही बाल कमजोर होकर गिर रहे हों तो उस दशा में इस लेप को एक सप्ताह लगा कर स्नान करने से बालों को पुन: नवजीवन प्राप्त होता है। बालों की ग्रंथियां इस लेप से पुन: पुष्ट होकर दृढ़ बालों को जन्म देती हैं और इसके १-२ मास इस्तेमाल से बाल इतने सघन लम्बे और दृढ सचिक्कण हो जाते हैं कि स्त्रियां उन्हें देख कर प्रसन्न हो जाती हैं।

प्रयोग विधि—स्नान से पूर्व १ तोला दवा को पानी में घोटकर बारीक करलें और उसे सिर में लगालें। कुछ देर मलें और उसके सूखजाने पर स्नान करलें। चाहे साबुन लगा कर स्नान करें कोई हर्ज नहीं। यही सरल इसकी प्रयोग विधि है। २०० ग्राम के पैकट का मूल्य २—००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोराञ्जन

(पड़वाल का सुरमा)

लाभ--जिन व्यक्तियों की पलकें सुर्ख और मोटी होकर उनमें फुन्सियां निकला करती हैं तथा आंखों में बाल चुभते रहते हैं, जिन्हें पड़वाल या पदमकोप भी कहते हैं, इस अञ्जन के लगाने से उक्त रोग में लाभ होता है।

५ ग्राम की शीशी का पैकट १-५०

गनरोल

(पूयमेह, मूत्रकृच्छ्र की दवा)

लाभ--यह योग तीव्र और जीर्ण से जीर्ण पूयमेह में लाभ करता है कृच्छ्रता दवा खाने के दो तीन घंटे बाद बंद हो जाती है और जख्म दो तीन दिन में भर जाता है।

२४ कैपसूल का पैकट मूल्य ४--००

डाईसैंट्रोल

(पेचिस मरोड़ की दवा)

लाभ--यह औषध पेचिस में लाभ करती है। मरोड आंव और खून जाता हो गुद-भ्रंश या कांच निकलती हो, दिन में तीन-चार मात्रा खाते ही आराम आजाता है पुराने से पुराने पेचिश वाले भी इसके सेवन से निराश नहीं हुए।

सेवन विधि--प्रथम हल्का जुलाब देकर प्रभात

६-६ माशे औषध दिन में दो या तीन बार तक्र से दें।

५० ग्राम के पैकट का मूल्य १--००

१०० ग्राम का पैकट मूल्य २--००

छूमंत्र

लाभ--सिर दर्द, दाढ़ दर्द और इनके अतिरिक्त कहीं भी कोई दर्द हो जरासी दवा लगाते ही दर्द छू-मन्त्र हो जाता है, बिच्छू, बरैया, ततैय्या (भिड़) आदि के काटने पर इसके लगाने से जहर जाता रहता है।

मूल्य प्रति शीशी १--००, १ दर्जन ६--००।

न्यूरेलजीन

(आधाशीशी की त्वक्वेधी औषध)

लाभ--आयुर्वेद में सर्वप्रथम त्वक्वेधन द्वारा सिर दर्द को लाभ पहुँचाने वाली यह औषधि है। एकबार के त्वक्वेधन करने पर दर्द इस तरह जाता है जिस तरह मन्त्र द्वारा भूत। एक शीशी ५०-६० बीमारों के लिये काम में आ सकती है। मूल्य प्रति पैकट २--००

नज़लोल

(नजले की औषध)

लाभ--नजला चाहे हलक में गिरता हो या नाक के रास्ते से बहता हो प्रत्येक प्रकृति के व्यक्ति को अवश्य ही लाभ करता है। उष्ण प्रकृति व्यक्ति इसे शर्बत के साथ सेवन करें। ४० गोली के पैकट का मूल्य १--००, ८० गोली का पैकट मू० २--००

न्यूमोनिओल

(न्यूमोनिया में लाभकारी दवा)

लाभ--न्यूमोनिया की प्रत्येक अवस्था में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवन कराते रहने से फेफड़े व श्वास नाली पर पड़ा हुआ न्यूमोनिया का प्रभाव दब जाता है। हृदय की निर्बलता में, व हार्टफेल की स्थिति में यह बहुत लाभ करता है। १४ गोली का मूल्य २–००

पुंसोलीन (तिला)

लाभ—ध्वजभंग चाहे प्रकृति विपरीत मैथुन से हुआ हो अथवा अति मैथुन से, एकबार तो यह अपना फल अवश्य दिखाता है और नष्ट हुई शक्ति को पुनः लौटा लाता है।

एक सप्ताह के सेवन योग्य दवा का मूल्य २–००

पुंसोल

(ध्वजभंग पर खाने की दवा)

लाभ—इच्छानुसार समय पर चैतन्योदय न हो, या समय पर शिथिलता आ जाय यह विकार चाहे किसी कारण से हो, सब में लाभ करता है।

१४ खुराक का मूल्य २–००

प्रोराईगोन

(खारिश, खुजली की दवा)

लाभ—यह औषध प्रत्येक प्रकार की गीली सूखी छूतदार खारिश (खुजली) में लाभप्रद है।

प्रयोग — दवा में १० तोला तेल सरसोंका मिलाकर मालिश करें और बाद में साबुन लगाकर स्नान करें।

१ पैकट का मूल्य २–००

प्लोरीन

(पार्श्वशूल या दर्द पसली की दवा)

लाभ—सर्दी लगकर या न्यूमोनिया के आरम्भ में जो श्वास के साथ पसलियों के नीचे दर्द उठ रहा हो और दर्दके कारण श्वास न लिया जाता हो, उस हालत में इसकी एक मात्रा देते ही दर्द जाता रहता है। यह जोड़ों के दर्द, बदन के दर्द, पेट के दर्द में भी लाभ करती है। १५ ग्राम के पैकट का मूल्य २–००

फीवर पिल्स

लाभ—हमने हजारों रोगियों पर उक्त दवा को आरम्भिक ज्वरावस्था में देकर इसका खूब अनुभव लिया है। हर प्रकार के साधारण ज्वर को यह दवा एक से दो दिन में ही अवश्य उतार देती है। जिनका बुखार दूर नहीं होता उनके ज्वर के रूप को भी यह दवा प्रकट करदेती है और वह चौथे पांचवें दिन ज्वर का रूप स्पष्ट हो जाता है। इसके सेवन से कभी कोई कष्ट नहीं बढ़ता। १०० गोली का मूल्य २–००

मकर ध्वजवटी

शक्ति वर्धक प्रसिद्ध योग

योग—स्वर्ण-घटित मकरध्वज, केसर, कस्तूरी आदि मूल्यवान द्रव्यों के योग से यह दवा तय्यार की गई है। निर्बलता, प्रमेह, आदि में लाभदायी है। इस योग की मांग अधिक देखकर हमने भी निर्माण करना आरम्भ कर दिया है।

१४ गोली का पैकट मूल्य ३–००

माजून सिर दर्द

लाभ—कुछ व्यक्तियों को दौरे से सिर दर्द की बीमारी होती है। दर्द इतना जोर का होता है कि रोगी अत्यन्त व्याकुल हो जाता है। कुछ बीमारोंको वमन भी आती है। सिर दर्द दो तीन दिन रह कर जाता रहता है कई व्यक्तियों को दर्द आरम्भ होने के समय पीठ की ओर से दर्द सिरकी ओर बढ़ता प्रतीत होता है। यह दर्द ऐसा खराब है कि कई २ साल पीछा नहीं छोड़ता। हमने उक्त माजून का अनुभव कई वर्ष से किया है। **इस माजून** को यदि दो चार महीना सेवन किया जाय तो पुराने से पुराना सिर का दर्द जाता रहता है।

मात्रा—६ माशे से १ तोलातक। दोनों समय पानी से सेवन करना चाहिए। मूल्य २०० ग्राम का पैकट ४-५०

मेहोरीन

लाभ—पेशाब के साथ मिलकर आने वाली या पेशाब के पीछे आने वाली ल्हेस को रोकती है तथा बहुमूत्र में भी लाभ करती है। बलवर्द्धक, शक्तिवर्द्धक है। १४ गोली की शीशी का मूल्य २–००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेमो

[सूखी खांसी, तालुकण्टक, कौवा गिरने की दवा)

लाभ—जब बच्चोंके दांत निकलने वाले होते हैं तो प्राय: बच्चों का तालु लटक जाता है और हरे पीले दस्त आने लग जाते हैं। बच्चा रात दिन सिर मार कर रोता रहता है। गर्दन सूख जाती है, कान की लौर पतली पड़ जाती है,मन्द-मन्द ज्वर बना रहता है। ऐसी हालत में रोगीके तालु भागको उक्त दवा लगी अंगुली से दो-चार बार उठाने पर और इसी दवाको दिनमें दो तीन बार खिलाने पर अवश्यही लाभ होता है। इससे भिन्न जिन व्यक्तियों को सोते समय सीधा लेटने पर सूखी खांसी उठती है उनको इसके सेवन से अद्भुत लाभ होता है। मूल्य २५ ग्राम का पैकट २—००

रसवटी

(संग्रहणी के लिये आविष्कृत)

लाभ—पुराने अतिसार ग्रहणी जिसमें भोजन अपक्व रूप में ही दस्तों के द्वारा निकल जाता है पेट में गुड़-गुड़ाहट होकर प्राय: दस्त आते हैं। यह रसवटी ऐसी तकलीफ को दो चार दिन में ही ठीक करदेती है मल तो दो तीन दिन में बन्ध कर आने लगता है और भूख बढ़ जाती है।

इसमें अफीम, धतूरा वीज आदि कोई नशीली चीज नहीं पडती, यह तो कुछ वनस्पतियों के सत्व से बना योग है।

सेवन—तक्र से १—२ गोली (मात्रा ४ माशे तक)

मूल्य ५० ग्राम २—५०, १०० ग्राम ४—००

रोमेटीन

(गठिया या आमवात की दवा)

लाभ—यह औषधि सन्धिवात, चलितवात,नुकरस, गठिया **आदि नये हों या पुराने** सब में लाभ **करती है।**

मूल्य५०गोली का पैकट३—००,१००गोली का५—५०

रिनालकोलीन

(पथरी निकालने वाली दवा)

लाभ—यह दवाई दर्द गुर्दा व पथरीको उत्तम औषध है। १ मात्रा देते ही दस मिनट में वृक्कशूल बन्द हो जाता है और मूत्र साफ आता है। कुछ दिन में धीरे-धीरे सारी पथरी घुलकर बाहर आजाती है, हजारों बार की आजमाई हुई औषध है। १० तोला कच्चे दूधमें पाव भर पानी मिलाकर उसके साथ दोनों समय सेवन करें।

मात्रा ६ माशे। १०० ग्राम पैकट का मूल्य २—५०

रक्त शोधक अर्क

(५० के लगभग रक्तशोधक औषधियों का अर्क)

लाभ—बरसातके दिनोंमें बच्चों को सफेद पानीवाली फुन्सियां निकलती व फूटती रहती हैं जहां फुन्सी निकलती है वहां छाले जैसी सूरत बन जाती है। बड़े आदमियों को उपदंश, आतशक आदि के कारण रक्त के विकार हो जाते है। उनको यह अर्क बहुत फायदा करता है। हजारों बार आजमाया हुआ उत्तम रक्त-शोधक अर्क है।

मूल्य **आधा लिटर** अर्क २—००

ल्यूकोरीन टेबलेट

(प्रदर की औषध)

लाभ—जब स्त्रियों को **प्रदर हो** जाताहै जिसके कारण कमर में दर्द,भूख की कमी व निर्बलतादि बढ़ जाती है,इस दवा के सेवन से दूर हो जाती है। १४ टिकियों का पैकट मूल्य २—००

ल्यूकोरीन वर्तिका

(प्रदर-विनाशनी-वर्ती)

लाभ—यह वर्तिका **पानी में डुबो कर** रात्रि को अन्दर रखने पर अगले दिन फल दिखाई देता है। अनेक बार केवल वर्ती के प्रयोग से ही प्रदर की शिकायत जाती रहती है।

१४ बत्ती के पैकट का मूल्य २—००

विषमोल

(कुनैनसम लाभकारी मैलेरिया की दवा)

लाभ—सर्दी लगकर चढ़ने वाले बुखारों में तो यह दवा रामबाण है और कुनैन से निम्न बातों में विशेष है—एक तो कड़वी नहीं, दूसरे चढ़े बुखार में दीजिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरे गर्मीखुश्की नहीं करती, चौथे शर्बत निम्बू खटाई आदि के साथ दें, पांचवें लम्बे चौड़े परहेज की जरूरत नहीं। सेवन--१ टिकिया सुबह एक टिकिया शाम को निम्बू के शर्बत या पानी से सेवन करायें। मलेरिया के दिनों में यदि ५--७ दिन एक २ गोली नित्य सेवन कर ली जाय तो फिर मलेरिया ज्वर के होने का भय नहीं रहता। मूल्य ८० गोली का पैकट २--००

व्रणोद्धूलन

(फोड़ा फुन्सी का पांउडर)

लाभ—छोटे-छोटे बच्चों को वर्षाकाल में प्राय: फोड़े फुन्सियां व पाका निकलता रहता है और कई कई महीने बच्चे विचारे इन फोड़े फुन्सियों से तकलीफ उठाते रहते हैं। हमारा यह धूड़ा ऐसा है जिसे लगाते ही जलन दर्द, पीप, पानी सब बन्द हो जाते हैं और रोते हुये बच्चों को अपूर्व शान्ति मिलती है। यह धूड़ा या उद्धूलन स्फोटी (छाले) फैलने वाली फुन्सियां, खारश के जख्म व एक फुन्सी के लाग से बनने वाली अन्य फुन्सियां सब में अच्छा लाभ करता है।

मूल्य ५० ग्राम २--००

शाही नस्य

लाभ-सिर दर्द, जुकाम, नजला नाक में छिछड़ा और नकसीर जाना आदि कष्टों में सेवन करके चमत्कार-पूर्ण लाभ देखिये १० ग्राम वाली शीशी का मूल्य १--०० एक दर्जन शीशी का मूल्य ६--००

शाही सुरमा

लाभ—नेत्र ज्योति का कम हो जाना, चश्मा लगाने की आदत पड़ना, नेत्रकी खारिश, पानी जाना व मैल आना आदि कष्ट इसके सेवन से दूर होकर अद्भुत लाभ होता है।

५ ग्राम बड़ी शीशी १--००, १ दर्जन का १०--००

२ ग्राम छोटी शीशी ०--५०, १ दर्जन का ५--००

श्लेष्मान्तक अवलेह

(दमा की नव्य आविष्कृत औषधि)

कटारीन और आस्थमीन तो दमा की विशेष विशेष अवस्था में लाभ करते है। किंतु श्लेष्मान्तक अवलेह प्रत्येक प्रकार के दमा पर अद्भुत लाभ दिखाता है। यह दौरा तो नहीं रोकता, पर एक एक तोला इसे दोनों समय सेवन करने पर धीरे धीरे दौरा कम होता चला जाता है। यही नहीं दमा का मूल कारण-सुबह सोकर उठतेही खांसी आना और बलगम निकलना-यह जो नित्यप्रति होता रहता है इसे शनैः २ कम करता है। धीरे धीरे रोगी को इतना आराम मिलता है कि वह चित्त चारपाई पर लेटने लग जाता है। और चित्त लेटने पर गले में खराश होकर जो खांसी आती है वह बिलकुल जाती रहती है। थोड़े दिन में ही इसके सेवन से बलगम का उत्पन्न होना, गले में सरसराहट, नाक का बन्द होना, दमकशी वगैरह जितने भी दमे के चिह्न हैं सब जाते रहते हैं। प्रयोगविधि--१ तो० अवलेह को १० तोला श्वासान्तक अर्क के साथ दोनों समय सेवन करें। मूल्य २०० ग्राम के पैकट का ४--००

श्वासान्तक वटी

कुछ वर्ष पूर्व न जाने कहां से श्वास रोगियों की संख्या एकाएक हमारे औषधालय में बढ़ गई। रोगी ऐसे पुराने आये जिनको "श्लेष्मान्तक अवलेह" से लाभ तो होता था पर प्रभातको श्वासारम्भक खांसी का जो ठसका उठता था वह जल्दी न रुकता था, वही ठसका धीरे २ कुछ मिन्टों में श्वासावरोध की ओर रोगी के श्वासको बदल देता था इसको कैसे रोका जाय? इसके निवारणार्थ कई योग बनाये, अन्त में यह गोलियाँ कारगर सिद्ध हुईं। इन गोलियों को मिश्री की डली के साथ मुंह में डालकर सुबह, शाम व रात तक ८-१०-१२ गोली तक चूसते रहने से इसका इतना प्रबल प्रभाव देखा गया कि श्वासावरोध के साथ श्वास के खिंचकर आनेका कष्ट घटते २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिल्कुल घटगया और रोगी अनुभव करने लगा कि मेरा दमा दम के साथ न जाकर "श्लेष्मान्तक अवलेह और श्वासान्तक वटी" से अवश्य जाता रहेगा

इन दोनों औषधियों के दो दो, तीन तीन माह सेवन से स्वस्थ होने की सम्भावना विश्वास में परिणत होते देखी गई है। मूल्य ५० गोली के पैकट का २—००, १०० गोली के पेकट का ४—००

श्वासान्तक अर्क

यह अर्क भी श्वासके रोगियोंके लिये ही तय्यार किया गया है। कई रोगियों पर श्लेष्मान्तक अवलेह के साथ दिया गया। जिनका गला खुश्क रहता था या बलगम बहुत खुश्क थी खांसी भी आती रहती थी उन्हें इस अर्कके पीते ही श्लेष्म शीघ्र निकलने लग पड़ी और रोगी को उससे चैन मिला।

मूल्य ½ लिटर १—५०

शीतपित्तान्तक रस

शीतपित्त या उदर्द ऐसा साधारण किंतु अत्यन्त कष्टदायक रोग है जो कई२ वर्षों तक रोगी का पीछा नहीं छोड़ता। वैद्य और डाक्टर इसे रक्तविकार समझ कर जो चिकित्सा करते हैं उसमें सफल नहीं होते। १० वर्ष से अनुभव लेते २ अनुभव से यह रस ऐसा सिद्ध हुआ है कि ४-६ मात्रा देने पर पुराने से पुराना उक्त रोग जड़ से चला जाता है। पथ्य कोई नहीं, मात्रा १ रत्ती शहद से दोनों समय।

मूल्य १० ग्राम २—०० रु०।

शीत वातेश्वर रस

प्रभाव—हृदय पर होता है।

गुण—बहुतसे हृदय रोगसे पीड़ित रोगियों को यह कष्ट देखा जाता है कि एकाएक ठण्डा पसीना आने लगता है और स्पर्श से शरीर ठण्डा लगता है हाथ पैर भी ठण्ड़े शीत होजाते हैं। हृदय बैठता हुआ या उड़ता हुआ प्रतीत होता है कुछ व्यक्ति तो व्याकुलतावश बतला भी नहीं सकते, कुछ कहते हैं हमें कुछ हो रहा है। हृदय की गति रुक-रुक कर चलती है, उस समय हृदयावसाद के लक्षण दिखाई देते हैं, इस दशा में यह 'शीत-वातेश्वर रस' अमोघ सिद्ध हुआ है, नव्य आविष्कृत सद्यफल-प्रद रस है।

मात्रा—१ रत्ती शहदसे मिलाकर चाट लें या खांडमें डालकर पानी से सेवन करें। कुछ दिन सेवन करने पर हृदय रोगसे मुक्ति मिल जाती है।

मूल्य १० ग्राम २—००।

श्री सुख धारा

(प्रत्येक घर में सदा सर्वदा रहनी चाहिये)

(१) पेटका दर्द, दांत दर्द, सिरदर्द वगैहरा कोई दुःख दर्द हो उसको फौरन हरन कर सुख देने वाली धारा

(२) बिच्छूके डंक का दर्द, वर्य्या, ततैय्या के डंक का दर्द और कनखजूरा के जहर का दर्द दूर कर सुख लाने वाली धारा।

(३) वमन, रेचन से उत्पन्न कष्ट, विशूचिका की भयंकर व्यथाको मिटाकर सुख पहुंचाने वाली धारा।

प्रयोग—पेटदर्द, वमन, कालरा में ५—१० बूंद खांड में डालकर पानी से दें। विच्छू, वर्य्या, ततैय्या के डंक मारे स्थान पर लगावें। दांत दर्द, दांत में कीड़ा लगा हो, रूई की फुरेरी बनाकर लगावें, बहुत अच्छी कीट विनाशक, कीटाणु नाशक, शरीर संरक्षक है।

छोटी शीशी का मूल्य १—०० बड़ी शीशी २—००
छोटी शीशी १ दर्जन १०—०० बड़ी शीशी १ दर्जन २०—००

सारस्वत्त वटी

(हिस्टीरिया की दवा)

यह औषध अभी तैयार की है और कई रोगियों पर आजमाया है दिमागी कमजोरी से या मानसिक व्यथा से हिस्टीरिया का दौरा होता हो तो उसमें लाभ करती है। यह गोलियां नींद न आना मानसिक उद्वेग आदि मानसिक कष्ट में भी लाभ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती हैं। १०० गोली का मूल्य ३—००रु० वी. पी. खर्च भिन्न।

सेवनविधि—पानी से एक-एक गोली दोनों समय। वैद्य लाभा-लाभ से सूचित करें।

स्वदेशी चाय

जुकाम, खांसी, गले की खर्खरी, साधारण ज्वर, दर्द बदन, सर्दी लगना, हड़ फूटन इत्यादि में इसका सेवन चाय की तरह करें। इसमें चाय जैसे नशे का दुर्गुण नहीं। मूल्य प्रति पैकट १०० ग्राम ५० नये पैसे,

सिफलोल

(उपदंश-आतशक की दवा)

लाभ—बिना मुँह आये ही यह दवा उपदंश में लाभ करती है और पुराने रोग के फिसाद को दो सप्ताह में दूर कर देती है।

सेवन विधि—दवाई जो केपसूल में बन्द है केपसूल सहित पानी से निगल जाना चाहिये, दोनों समय।

१४ केपसूल का बन्द पैकट मूल्य ३—००

सुरमा ज्योतिवर्द्धक

(नेत्र ज्योति बढ़ाने वाला सुरमा)

लाभ—जिन व्यक्तियोंकी नेत्र ज्योति किसी भी कारण से कम हो रही है वह एकबार अवश्य ही प्रयोग कर के देखें नेत्र की ज्योति बढ़ाने में इस जैसा उत्तम सुरमा नहीं मिलेगा। २ ग्राम का पैकट मूल्य १—००

५ ग्राम का „ २—००

हिमसोल

(गर्मी, बुखार, घबराहट को दूर करने वाली दवा)

लाभ--बुखार की अधिक घबराहट, अधिक गर्मी, धूप से लू लगना, चक्कर, प्यास आदि कष्ट बढ़नेपर इसका सेवन कराइये और अमृततुल्य लाभ देखिये। इसकी समता की शीतलता उत्पन्न करने वाली अन्य ओषधि आपको किसी भी चिकित्सा में नहीं मिलेगी।

२५ ग्राम का पैकट मूल्य —२—००

हुपीन

(बच्चों की काली खांसी की दवा)

लाभ—काली खांसी या कुत्ता खांसी, ऐसी बुरी बीमारी है कि इसकी चिकित्सा कठिन है, किन्तु इस दवा के सेवन से अच्छा लाभ होता है। मात्रा ½ रत्ती। १५ ग्राम के पैकट का मूल्य २—००,

लक्ष्मणारिष्ट

(आसव-विज्ञान)

मुझे यह योग एक तपस्वी बाबा ने बताया था। योग बनाने का अवसर १९२१ में लगा था। मैंने जिन वन्ध्या स्त्रियों को सेवन कराया इसके सेवन से ५० प्रतिशत के सन्तानें हुईं किन्तु पुरुषों में यदि वन्ध्यत्व हो उसमें इससे लाभ होता है या नहीं? इसका मुझे ज्ञान नहीं था, मैंने यह योग अपने लिखे आसव-विज्ञान में प्रकाशित कर वैद्यों से प्रार्थना की कि इस योग को बना कर उसके लाभालाभ से हमें सूचना दें। इस ३५ वर्ष में एक दर्जन वैद्य इस योग को बनाकर समय-समय पर हमें सूचना देते रहे हैं, उनमें से तीन वैद्यों ने लिखा है कि यह योग स्त्री-वन्ध्यत्व में जितना लाभ करता है उससे अधिक पुरुषों को लाभ करता है ६० वर्ष की आयु को पहुंचे व्यक्ति इसके सेवन से सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ हुए ऐसा उनके पत्रों से प्रकट हुआ। इसीलिए हमने इसे विक्रयार्थ निर्माण करने का निश्चय किया। आशा है जो वैद्य इसे बनाने में असमर्थ हैं इससे लाभ उठायेंगे। मूल्य ½ लिटर की बोतल का ३—७५ सेवन विधि साथ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुटाई, पिसाई, गोली, टिकिया

बनवाई भाव

कोईभी दवाई जो एक कि. ग्रा. से कम होगी कुटाई १–००
१से५ कि. ग्रा. तक दवाई की कुटाई ०–७५ प्र० कि. ग्रा.

नोट नं० १—अधिक दवाई का चूर्ण कराना हो तो रेट विशेष पत्र-व्यवहार द्वारा तय करें।

नोट नं० २—कुचला, निर्मली, चिरायता, विधारा-मूल आदि कठोर चीजें यदि थोड़ी मात्रा में कुटायेगा तो इनकी कुटाई १–५० प्रति कि. ग्रा. होगी। अधिक मात्रा में कुटाने के लिये पत्र-व्यवहार करें।

गोली, टिकिया बनवाई

½ रत्ती से २ रत्ती तक का भाव	२—५० ½	कि.ग्रा.
२ रत्ती से ३ रत्ती तक का भाव	२—००	"
३ रत्ती से ५ रत्ती तक	१—५०	"
६ रत्ती से १ मासे तक	१—००	"

इस रेट पर पालिश करी कराई गोलियां मिलेंगी।

चिकित्सा सम्बन्धी उपकरण

शरीर-ताप-मापक (Thermometer)—जील का मूल्य ४–५०
" " जापानी २–५०
दवाई मिलाने की छुरी (Spatula) —मूल्य—बढ़िया १–२५
साधारण १–००
गरम पानी की रबड़ की बोतल (Hot Water Bottle)—
मूल्य बढ़िया ५–०० साधारण ४–००
फुफ्फुस परीक्षा यन्त्र (Stethoscope)—
मूल्य बढ़िया २२–०० साधारण १३–००
सूचिकाभरण पिचकारी (English Record Syringe)
२ c.c. का मूल्य २–५०, ५cc ३–५०, १० c.c. ६–००
प्रोब (शलाका)—मरहम-पट्टी के लिए मूल्य ०–५०
कान धोने की पिचकारी (Ear Syringe)—२ औंस ५–००
४ औंस ६–००
दांतों का जम्बूर (Universal Tooth Forceps)--मूल्य ४–५०
ड्रापर (Droppers)—बढिया १–०० दर्जन
दुग्धआचूषक-ब्रेस्टपम्प (Breast pump)— मूल्य १–५०
ग्लिसरीन सिरिंज (Glycerine Syringe)-२ औंस ६–००
बस्ति यंत्र (Irrigator) नाली व टूटी सहित-मूल्य ५–५०
स्पिरिट लैम्प (Spirit lamp) कांच की— मूल्य २–५०
कैंची (Scissors)—बढ़िया मूल्य २–००

पावर और हाथ से चलने वाली टिकिया बनाने की मशीन

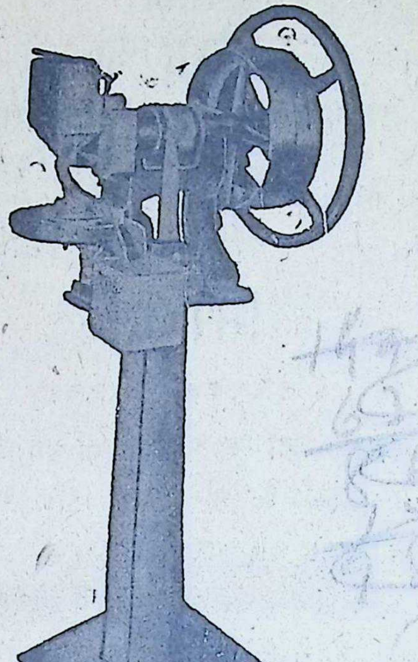

½ रत्ती से लेकर 1½ माशे तक की टिकिया बनाने वाली बड़ी मशीन। मशीन के साथ दो साइज डाई पंच होंगे। मूल्य ४००—००

स्थायी ग्राहकों के लिये विशेष रियायत

कार्यालय के नियमानुसार पेशगी भेजना आवश्यक है यदि आप १०) रुपये एक बार भेज कर स्थाई ग्राहक बन जाएंगे तो आप को निम्न सुविधाएं दी जाएंगी।

(१) फार्मेसी की प्रस्तुत तथा पेटेन्ट दवाईयों पर ७ नये पैसे प्रति रुपया (एजण्ट न होने पर) कमीशन दिया जाएगा

[२] वार-वार पेशगी भेजने की आवश्यकता न रहेगी स्थाई ग्राहक नम्बर देना पर्याप्त होगा।

[३] यह रकम स्थाई ग्राहक न रहने पर वापिस कर दी जायगी।

मैनेजर
पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी
अमृतसर, व देहली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवास पेटिका नं० १ जर्मन डिजाईन

स्टील क्लिप सहित ऊपर चमड़ा चढ़ा हुआ
साईज
१२×५$\frac{1}{2}$×८ इंच
इसमें होमियोपैथिक ४ ड्रामकी ४८, १ औंसकी १२ और १ औंस खुले मुंह की ४ शीशियां आती हैं,
मूल्य ३४–००

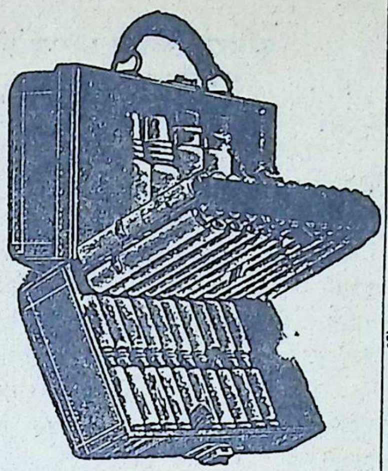

प्रवास पेटिका नं० २, जर्मन डिजाईन

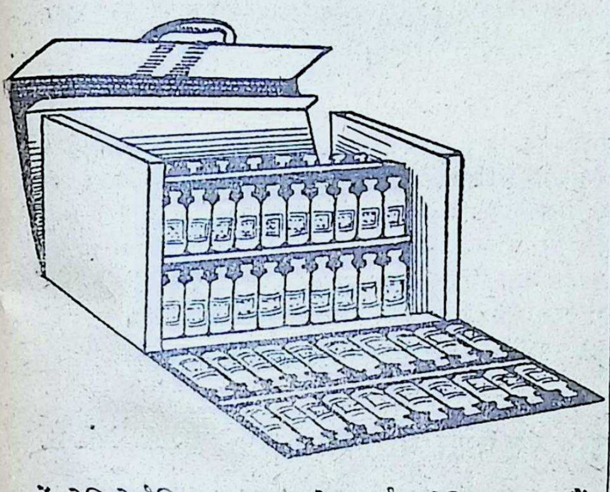

इसमें होमियो-पैथिक २ ड्रामवाली ६ दर्जन शीशियां आती हैं
मूल्य २४–००

प्रवास पेटिका नं० ३

बहुसंख्यक वैद्यों के हमें पत्र प्राप्त हुए हैं जिस में प्रार्थना की गई है कि प्रवास पेटिका में दो साइज आने चाहियें। अर्थात् बड़ी शीशियोंके साथ छोटी शीशियां भी आसकें अब हमने प्रवास-पेटिका नं० ३ भी तैयार कराई है। इसमें होमियोपैथी की २ ड्राम वाली २४ शीशी. ४ ड्राम वाली १८ शीशी तथा १ औंस की लम्बी गोल ८ शीशी होती हैं। इस का साईज़ 9$\frac{1}{4}$×6$\frac{1}{2}$×3$\frac{1}{2}$ इंच है। मूल्य २१–००

औषध पाकेट बक्स नं० १

यह बक्स बटुए के समान है। बक्स सुन्दर और छोटा होने से जेब में आ सकता है। प्रत्येक वैद्य को यह बक्स अवश्य रखना चाहिए। इस में २ ड्राम होमियोपैथिक की १८ शीशी आ सकती हैं। अगर आप वैद्य हैं और दूर रोगी देखने जाना है बड़ा बक्स नहीं ले जा सकते तो इसे आराम से जेब में डालकर ले जाइये। मूल्य शीशी युक्त ६–००

औषध पाकेट बक्स नं० २

इसमें २ड्राम होम्योपैथिक की १२शीशियां आसकती हैं। मूल्य५–००

नोटः–प्रवास पेटिकाएं ग्राहक की इच्छानुसार डिजाईन प्राप्त होने पर भी बना कर भेजी जाती हैं। परन्तु आधी रकम पेशगी आनी आवश्यक है।

हाथ से गोलियां बनाने की मशीन

इस मशीन से बड़ी आसानी से एक व्यक्ति दिन में ४–५सेर दवाई की गोलियां तैयार कर सकता है।

१$\frac{1}{2}$ से ३ रत्ती साइज की गोली बनाने की मशीन का मूल्य ३०–००

१ रत्ती साईज की गोली बनाने की मशीन का मूल्य ४०–००

$\frac{1}{2}$ रत्ती की गोली बनाने वाली मशीन मूल्य ५०–००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद विज्ञान पर कुछ सम्मतियां

श्री ए० एन० शंकरन उच्च वैज्ञानिक अधिकारी सेन्ट्रल फूड टेक्नोलोजीकल रिसर्च इन्सटीट्यूट मैसूर

आपकी पत्रिका 'आयुर्वेद विज्ञान' हमें सधन्यवाद इस कार्यालय में प्रतिमास प्राप्त हो रही है। उसके लिये अनेक धन्यवाद।

निस्सन्देह पत्रिका अपने विषय में अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री से ओतप्रोत है। आम आदमी के लिये और विशेष कर आयुर्वेद विज्ञान में दिलचस्पी रखने वालों के लिये तो और भी अधिक।

पत्रिका निरन्तर भिजवाते रहेंगे, इसके लिए धन्यवाद, आपकी सेवा में सदैव तत्पर।

सम्पादक, स्वास्थ्य सन्देश, पटना

आयुर्वेद विज्ञान—प्रकाशक : –आयुर्वेद विज्ञान आफिस, खारी बावली, देहली। वार्षिक मूल्य–३)।

यह मासिकपत्र स्वामी हरिशरणानन्द जी के सम्पादकत्व में सम्पादित होता है। प्रकाशक भी आप ही हैं। कुछ दिन पूर्व भी आप इस नाम का मासिक पत्र निकालते थे। अब पुनः इसी वर्ष इस पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया है। मेरे सामने तीसरा अंक है आपकी लेखनी द्वारा लिखा गया लेख बड़ा ही जोश पूर्ण होता है। आप प्राचीन आयुर्वेद अर्थात् त्रिदोष और पंचभूत वाद के विरोधी रहे हैं। आपका यह मासिक पत्र आपके विचार का प्रचारक है। आपका तर्क भी अपने ढंग का होता है। पत्र तर्क की दृष्टि से सुन्दर है। इसे वैद्यों को अवश्य पढ़ना चाहिए।

चिरंजीलाल वैद्य, कल्याण औषधालय, वाह (आगरा)

आपका प्रेषित आयुर्वेद विज्ञान नामक मासिक पत्र मिला अप्रैल सं० १९६० का पत्र देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई पत्र की छपाई सुन्दर है जिस लगन और परिश्रम से आयुर्वेदीय तत्वों का अनुसंधान किया जा रहा है वह समाज को देन है वैद्य बन्धुओं से निवेदन है कि इसके ग्राहक बन आयुर्वेद का मस्तिष्क ऊंचा करें।

कविराज माधव प्रसाद जी शास्त्री सम्पादक जय आयुर्वेद जोधपुर (राजस्थान)

"आपके द्वारा सम्पादित "आयुर्वेद विज्ञान" के ५ अंक प्राप्त हुए, धन्यवाद!

पत्र में प्रकाशित लेखों की निर्भीकता वास्तव में आयुर्वेद जगत् को रसातल जाने से अवश्य ऊपर उठाने में समर्थ सिद्ध होगी। आजके पत्र किसी की गुण-गाथा या विज्ञापन करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं करते प्रसन्नता की बात है कि आप इन बातों से बहुत ऊपर उठे हुए हैं आपके सुलझे हुए विचार आयुर्वेद महारथियों के उलझे हुए दिमागों की इसी प्रकार सफाई करते हुए उन्हें स्वस्थ बनाते रहेंगे। आपका पत्र आयुर्वेद-विरोधियों से डट कर मुकाबला लेने वाला है। हम इसकी उत्तरोत्तर उन्नति चाहते हैं।"

वैद्यरत्न पं० श्री प्रभुदत्त शास्त्री भिषगाचार्य प्रिंसिपल–श्री परशुराम पुरीया राजस्थान आयुर्वेद कालेज सीकर (राजस्थान)

"आपके द्वारा प्रेषित 'आयुर्वेद विज्ञान' मासिक पत्र का अक्टूबर मासीय अंक देखने को मिला।

आयुर्वेद को आधुनिक विज्ञान के सम्पुटसे समृद्ध बना कर इसके वैभवका विस्तार और व्यावहारिक उपयोगिता की पराकाष्ठा से वैज्ञानिक जगत् को नवीन आलोक प्रदान करने वाला यह पत्र अविलम्ब ही वैद्य महानुभावों द्वारा कराम्बुज स्पर्श से उद्दीप्तिमान् हो उठेगा। इसमें संदेह जरा भी नहीं, चूंकि यह आपकी ओजस्विनी लेखनी से आपूरित सम्पादन कला–वैचित्र्य का उत्कृष्ट प्रतीक है। आधुनिक युग में ऐसे ही नूतन दृष्टिकोण से उन्मेष पाने वाले पत्रों की पाश्चात्य जगत पर धाक जमाने के लिये आवश्यकता है। धन्यवाद!"

डा० रणजीत मल बी. मेहता B. A. M. S. सोजत सिटी, राजस्थान

माह अक्टुबर का अंक देखने से ज्ञात हुआ कि इस अंक में अनेक जन हित की बातों के साथ ही साथ आयुर्वेदिक जगत में क्रान्ति लाई जा सकती है। देशी चिकित्सा पद्धतियों पर ड्रग ऐक्ट और मेजिक रैमेडीज ऐक्ट के विषय में अपने को पूर्ण रूप से प्रयत्न करना चाहिये ताकि सरकार की नीति में परिवर्तन आ सके।

विज्ञान पत्र छोटा होते हुए भी प्रकाशित लेख व लेखनी अत्यन्त सुन्दर शब्दों के साथ प्रकाशित की गई। आधुनिक युग मे ऐसे पत्रों की परमावश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसव निर्माणार्थ सागवान काष्ठ के ढोल

प्राचीन काल से ही वैद्यों में आसव निर्माणार्थ प्रायः मट्टी के पात्रों को प्रयोग करने का प्रचलन है। परन्तु मट्टी के पात्र में दो बड़े दोष हैं एक तो मसामदार होने से आसव द्रव उस में से चू कर बाहर निकल सकता है। दूसरे मृत्पात्र तापवाहक होने के कारण सन्धानार्थ द्रव के अन्दर आवश्यक उत्ताप को स्थिर नहीं रख सकता, जिस से आसव निर्माण क्रिया (सन्धान) में बाधा उत्पन्न हो सकती है। लकड़ी के ढोल इन दोनों दोषों से मुक्त हैं। लकड़ी में भी सागवान की लकड़ी ऐसी कठोर है कि निरन्तर वर्षों तक पानी के संसर्ग में रहने पर भी यह नहीं गलती। अतः सागवान के बने ढोल चिर काल तक खराब नहीं होते और आयु पर्यन्त काम देते रहते हैं। मृत्पात्र की तरह इन्हें घृत परिप्लुत करने का झंझट भी नहीं करना पड़ता। जल से प्रक्षालन कर स्वच्छ करके इन का प्रयोग किया जा सकता है। मृत्पात्र की तरह इनके फूटने का भी भय नहीं।

हमारे यहां वर्षों से इन ढोलों का प्रयोग हो रहा है। श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी द्वारा लिखित "आसव विज्ञान" पुस्तक के प्रकाशन के बाद से देश के प्रत्येक कोने से इन लकड़ी के ढोलों के लिये अनेकों वैद्यों की मांग आती रही है। अतः हमने विलायत से आने वाले माल के खाली ढोल जो बड़ी बड़ी मिलों में रासायनिक पदार्थों में लग कर आते हैं इनके संग्रह का प्रयत्न किया है। वह साफ करने पर आसव निर्माण के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। आशा है वैद्य समाज तथा औषध निर्माता इन का प्रयोग कर आसव निर्माण प्रक्रिया को समुन्नत करने की दिशा में अग्रसर होंगे। इस से उन्हें सुविधा भी होगी और आसव भी उत्तम बनेंगे। प्रत्येक ढोल की समाई इतनी है कि उसमें १॥ मन आसव भर कर रखा जा सकता है। मूल्य प्रति ढोल १५)। बड़ा ढोल जिसमें ६ मन आसव रखा जा सकता है मूल्य ३५)। दोनों का मार्ग व्यय भिन्न। आर्डर के साथ पेशगी आना जरूरी है।

निवेदक—**मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट-अमृतसर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

रजिस्टर्ड नं० डी-७२०

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याधि-मूल विज्ञान (पूर्वार्ध)

श्री स्वामी हरिशरणानन्द की नव्य कृति

यह वैज्ञानिक युग है, शरीर के भीतर जब कोई व्याधि हो जाती है तो उसे अब तक अनुमान से ही जानते थे। किन्तु वैज्ञानिकों ने ऐसे साधन मालूम कर लिए हैं कि शरीर के भीतर जब व्याधियों का प्रादुर्भाव हो रहा हो तो वह कैसे हुआ करता है, और उसमें कौन कौन से व्याधियों के उत्पादक कारण हैं। इसको उन्होंने नव्य प्रायोगिक विधियों से खूब अच्छी तरह से देखा व जांचा। एक ही प्रयोगशाला ने नहीं, अनेकों प्रयोगशालाओं ने मिलकर जांच की और जो तथ्य उन्हें मिले और वे प्रकाश में आये उनको संकलित कर व्यवस्थित रूप दिया गया है। इन प्रायोगिक विधियों ने चिकित्सा के अनेकों मान्य सिद्धान्तों पर पानी फेर दिया है।

आयुर्वेद का सिद्धान्त है—"मिथ्याहार विहाराभ्यां दोषाः ह्यामाशयाश्रयाः"। आहार विहार की अनियमितताओं से आमाशय में दोषों का उत्थान होता है। आहार सम्बन्धी और पचन सम्बन्धी विषय का प्रायोगिक ज्ञान इतना अधिक बढ़ चुका है जिनके सन्तुलित स्थिति से मनुष्य स्वस्थ रहता है उसमें असन्तुलित स्थिति उत्पन्न होते ही रोगों का प्रादुर्भाव होता है। यह 'द्रव्य साम्यमरोग्यता' का सिद्धान्त किस तरह देखा समझा गया यह आयुर्वेद विद्वानों के समझने की चीज है। इसी का वैज्ञानिक विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है। यह ग्रन्थ का पूर्वार्ध मात्र है जो ४०० से अधिक पृष्ठों में पूर्ण हुआ है। १० वर्ष के परिश्रम के बाद इसका पूर्वार्ध ही पाठकों के हाथ में पहुँचा रहे हैं। सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य १२) है।

पता—मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर।

ब्रांच—खारी बावली दिल्ली।

मूल्य संशोधन सूचना

कुछ मूल्य सूची-पत्र में अशुद्ध छप गये हैं, कुछ में छपते-छपते परिवर्तन हो गया है। उन द्रव्यों के चालू शुद्ध मूल्य निम्न प्रकार से हैं। कृपया नोट करें।

जैतून तैल	०—२० १/१० लि. का	शंख नाभी	१—५० प्रति कि. ग्रा.
यूक्लिप्टस तैल	१--०० १/२० लि. का	इन्द्रायण मूल	१—२५ " "
अष्टांगलवण	१४-०० प्रति कि. ग्रा.	जमालगोटा	१२-०० " "
हरताल वर्कीचूरा नं २;	२५-०० प्रति कि. ग्रा.	पृष्ठपर्णीलम्बापत्र	३-०० " "
	१—५० प्रति ५० ग्रा.	सतपुदीना	१५०-०० " "
केंचुवे धुले नं.१;	७—०० प्रति कि. ग्रा.		

—मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ७ कार्तिक सम्वत् २०१७ संख्या ११

नवम्बर १९६०

आयुर्वेद-विज्ञान

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

सम्पादक
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

विषय-सूची

१. उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री डा० सम्पूर्णानन्द जी का ११वें उत्तर प्रदेश वैद्य सम्मेलन में भाषण ... १७७
२. त्रिदोष विवेचन १७९
३. आसवारिष्टों पर मद्य-कर घटा १९०
४. जैवों के सम्बन्ध में कुछ रोचक तथ्य १९१
५. मोतिया बिन्दु के औषोपचार सम्बन्धी नई रूसी खोज ... ...

प्रकाशक—
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, खारी बावली, दिल्ली-६

मुद्रक—बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, टाईवाड़ा नई सड़क, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ३० नये पैसे होगा।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये। अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्व-प्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा। किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, व करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायेगा।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर किसी परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-सम्बन्धी प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये आयुर्वेद-विज्ञान के ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न एक रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके प्रश्न और उत्तर छापे जायेंगे।

मैनेजर

शिवा गुटिका

(जीर्ण और वृद्ध रोगियों के लिये दिव्य रसायन)

यह योग चक्रदत्त भैषज्य रत्नाकर और योगरत्नाकर ग्रन्थों में रसायनाधिकार में आया है। इस योग का प्रमुख द्रव्य शिलाजीत सूर्यतापी है जिसे कई वनस्पतियों और जीवनीय गण की औषधियों द्वारा ग्रीष्म काल की आतप में भावित कर उसकी मलाई उतारी जाती है। पश्चात कुछ अन्य औषधियां मिला कर इस की गुटी बनाई जाती है।

शास्त्र में इसे आमवात, यक्ष्मा, पाण्डु, नपुन्सकता, मृगी तथा शिर, नेत्र, कण्ठ, फुफ्फुस एवं हृदय के कई रोगों में लाभकारी लिखा है। इसका मुख्य गुण रसायन है। अर्थात् किसी भी जार्ण रोग से, जरावस्था में अथवा किसी भी तरह जब शरीर की कार्य व्यवस्था बिगड़ जाय, शरीर की कोषायें निर्बल विकृत हो जायें तो यह औषधि स्वास्थ्य को पुनः विल्कुल ठीक कर देती है, ऐसा अपने पर और अन्य रोगियों पर इसे प्रयोग करके हमने देखा है। जीर्ण रोगों से पीड़ित रोगियों व वृद्धावस्था में होने वाले विकारों तथा दुर्बलता में तो यह गुटिका विशेष रूप से लाभप्रद रसायन सिद्ध हुई है।

रसायन औषध दो चार दिन खाने से लाभ नहीं करती। दो गोली प्रातः सायं २-३ मास तक निरन्तर खानी चाहिये। एक मास सेवन करने योग्य ६० ग्राम गोली के पैकिट का सूल्य केवल ५) है, पैकिंग डाक ख़र्च भिन्न।

पता-मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, ६०-६१, अकालीमार्केट, अमृतसर

ब्रांच—खारी बावली दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद-विज्ञान

आयुर्विदेव विततं किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्नपरकैर्भवतीह लभ्यम्।
शक्तिं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ॥

वर्ष ७ | कार्तिक २०१७ वि०, नवम्बर १९६० ई० | अंक ११

उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री डा० सम्पूर्णानन्द जी का ११वें उत्तर प्रदेश वैद्य सम्मेलन में भाषण

कानपुर १० अक्टूबर को उत्तर प्रदेश वैद्य सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए डा. सम्पूर्णानन्द ने कहा "वैद्यों को अपनी चिकित्सा प्रणाली को बचाने के लिए प्रयास करना चाहिए। इस प्रणाली को ऐलोपैथी के आधार पर की जाने वाली विकास योजनाओं से खतरा पैदा हो रहा है। उक्त योजनाओं से दिहातों में फैली आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली का अन्त हो जायगा। किन्तु सम्मेलनों अथवा प्रस्तावों से आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली की रक्षा न हो सकेगी। इसीलिए जोरदार आन्दोलन किया जाना चाहिये। ताकि वैद्यों की आवाज योजना आयोग, केन्द्रीय सरकार और संसद सदस्यों के कानों तक पहुँच सके।

आयुर्वेद चिकित्सा पर स्वयं वैद्यों को विश्वास नहीं

अंगरेजों ने जान-बूझ कर आयुर्वेद को मान्यता प्रदान नहीं की थी। इस तरह इस चिकित्सा प्रणाली की जो उपेक्षा हुई, उसी के कारण उसका अधः पतन हुआ। आजादी के बाद जो नीति अपनाई गई, उससे भी हालत में सुधार नहीं हुआ। आजादी के बाद जो आयुर्वेदिक कालेज स्थापित हुए उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों में हीन भावना व बुद्धि पैदा हो गई। उन्हें अपने नाम के आगे आयुर्वेद की डिग्री लगाने में लज्जा का अनुभव होने लगा। वे अपने नाम के आगे डाक्टर की पदवी लगाने पर गर्व का अनुभव करने लगे। उन्हें भी आयुर्वेद पर विश्वास नहीं रहा और वे इसे अवैज्ञानिक और गलत समझने लगे। वैद्यों को चाहिये कि वे आयुर्वेद की मान्यताओं को वैज्ञानिक आधार पर लाकर सरकार को प्रभावित कर दें।

आगे उन्होंने कहा कि उत्तर प्रदेश सरकार ने आयुर्वेद के अध्ययन अध्यापन के लिये पृथक् निर्देशालय स्थापित करने का फैसला किया है। इस सम्बन्ध में एक आदेश शीघ्र जारी किया जायगा।

आयुर्वेद चिकित्सा पर से वैद्यों का विश्वास क्यों हिल रहा है ?

जिन नये कालेजों में वैद्यों को आयुर्वेद के साथ अलोपैथी के या यों कहो प्रयोग जन्य ज्ञान के आधार पर शरीर रचना व शरीर क्रिया विज्ञान की शिक्षा दी जाती है। उन लोगों का विश्वास तो आयुर्वेद के सिद्धान्तों से इसलिये उठ जाता है कि जिस त्रिदोष सिद्धान्त के आधार पर शरीर क्रिया विषय को जब वे विद्यार्थी एक ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ते हैं और उसी के साथ आधुनिक शरीर क्रिया विज्ञान को पढ़ते हैं तब वे विद्यार्थी 'प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्' को मानेंगे कि कल्पना को ? हम झूठी कल्पनाओं को इस प्रयोग वाद के युग में भी छोड़ना नहीं चाहते। दूसरे व्याधि सम्बन्धी प्रत्यक्ष ज्ञान को हम मानते नहीं, जिसके आधार पर हमने चिकित्सा करनी है,तब बतलाइये कि रोगी को जब तक हम रोग का कारण ठीक नहीं बतलाते रोगी हमारी चिकित्सा पर कैसे विश्वास करेगा ?

वैद्य के सामने रोगी देखते समय सिद्धान्त का प्रश्न नहीं होता। प्रत्युत उसके सामने यह प्रश्न रहता है कि रोगी के साथ हम ऐसे ढंग से बात करें कि वह हमारे बतलाये रोग निदान पर विश्वास कर ले। रोगी अनेकों डाक्टरों को दिखाकर फिर वैद्य के पास आते हैं, जहां उनके रोग का अनेक प्रायोगिक विधियों से डाक्टर निदान कर चुके होते हैं। रोगी भी अपने रोग को सही तौर पर जान लेता है। ऐसे रोगी को यदि हम अपनी प्राचीन सैद्धान्तिक पद्धति से ही समझाने का प्रयत्न करते हैं तो निश्चय ही हम रोगी को अपनी चिकित्सा से वंचित कर लेंगे। उस दशा में वैद्य उसको यदि वह आधुनिक पद्धति का भी ज्ञान रखता है तो उसकी वह पूर्णतया तसल्ली कर देगा और रोगी उसके हाथ से नहीं निकल सकेगा। यदि वह केवल आयुर्वेद का ही ज्ञाता होगा तो वह त्रिदोष वाद की बातों से उसका संतोष नहीं कर सकता। देखा जाता है कि चिकित्सा काल में वैद्य उन्हीं सिद्धान्तों को व्यवहार में लाते हैं जिनसे उन्हें चिकित्सा में लाभ पहुँच सकता है। क्योंकि वैद्य के सामने रोटी का प्रश्न होता है। रोटी के लिये वैद्य वह साधन अपनावेगा जो सहायक होंगे। इस समय हम सब जो चिकित्सा करते हैं परार्थ भावना से नहीं करते। इस समय तो चिकित्सा को हम सबों ने एक व्यवसाय के रूप में अपनाया हुआ है। और वैद्यों का सम्बन्ध सदा रोगियों से ही पड़ा करता है, यदि कोई वैद्य अपने नाम के आगे डाक्टर की डिग्री लगाता है तो उसका रोगियों पर यह प्रभाव होता है कि यह वैद्य केवल प्राचीन पद्धति से ही परिचित नहीं, नव्य चिकित्सा पद्धति से भी परिचित है। इसका रोगी पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है और वैद्य की आय बढ़ती है। यदि वैद्य की आय डिग्री लगाने से बढ़ती है तो वैद्य कभी भी इस मार्ग को त्यागने के लिये तैयार न होंगे। क्योंकि यह बात रोटी से सम्बन्ध रखती है। इस युग में तो वही सिद्धान्त जीवित रह सकता है जो पूर्णतया सचाई पर आधारित हो आयुर्वेद के त्रिदोष सिद्धान्त जैसे सत्य की नींव पर इसका महल खड़ा नहीं किया गया। यह तो कल्पना की नींव पर खड़ा है जो बालू की दीवार के मानिन्द है वह आज गिरी कि कल उसने तो ढहना ही है। यदि डाक्टर सम्पूर्णानन्द जी के प्रयत्न से आयुर्वेद के अध्ययन के लिए पृथक् निर्देशालय स्थापित हुआ और उसमें त्रिदोष वाद जैसे सिद्धान्त पर आधारित शिक्षा का प्रबन्ध रहा तो यह निश्चय है कि भविष्य अन्धकार मय होगा। ऐसे विद्यालयों में वही व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करेंगे जो अत्यन्त गरीब होने के कारण अपने बालकों की शिक्षा पर खर्च नहीं करना चाहते। ऐसे बनने वाले वैद्य क्या किसी एलोपैथ डाक्टर की तुलना में अपने परिवार की उदर पूर्ति कर सकेंगे ? यह देखने वाली बात है।

यदि आयुर्वेद को वैज्ञानिक आधार पर लाया जाय तो वैज्ञानिक आधार प्रयोग पर अवलम्बित होगा वह प्रयोग वाद त्रिदोष जैसे कल्पित सिद्धान्तों को समूल उखाड़ फेंकेगा। क्योंकि सचाई दो नहीं हो सकती। सत्यमेव जयते नानृतम्।

आयुर्वेद को समूल नष्ट करने का आयोजन

केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् का एक अधिवेशन २८–३० अक्टूबर तक जयपुर में करने का निश्चय हुआ है इस सम्मेलन की अध्यक्षता केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री श्री करमरकर जी करेंगे। इस सम्मेलन पर विचार के लिये सरकारी औषध (ड्रग) परामर्श समिति ने प्रस्ताव भेजा है कि ड्रग एक्ट में दी हुई ड्रग्स की परिभाषा में सुधार किया जाय। जिससे उसके कार्य क्षेत्र में आयुर्वेदिक यूनानी दवाइयों को भी ले लिया जाय। इन्हें जो अब तक छूट मिली हुई है वह समाप्त कर दी जाय और इन्हें भी अधिनियम के अन्तर्गत बनाये नियमों में ही जगह दी जाय जिस प्रकार होम्योपैथी को मिली हुई है। भारत सरकार ने इस प्रस्ताव से सहमति प्रकट की है किन्तु साथ में कहा है कि आयुर्वेदिक और यूनानी औषध के नियन्त्रण की किसी भी व्यवस्था में वैद्यों और हकीमों को अपने रोगियों के उपचार के लिये दवाई बनाने की खुली छूट रहनी चाहिये।

[शेष पृष्ठ १९२ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोतिया बिन्द के औषधोपचार सम्बन्धी नवीन रूसी खोज

नेत्र के भीतर विद्यमान स्वच्छ ताल जो स्वस्थावस्था में पारदर्शक होता है और बाह्य द्रव्यों का प्रतिबिम्ब नेत्र के दृष्टि पटल पर स्पष्ट रूप में अंकित करने में कारण होता है, मोतिया बिन्द रोग में इस ताल की पारदर्शकता कम होने लगती है और रोगी को धुन्धला दिखाई देता है। अन्त में ताल पूर्णरूप से अपारदर्शक हो जाता है अर्थात् बाह्य द्रव्यों के प्रतिबिम्ब के प्रति यह पूर्णतः अप्रवेश्य हो जाता है परिणामतः रोगी को दिखाई देना बन्द हो जाता है। इस अवस्था को मोतिया बिन्द की पक्की अवस्था माना जाता है। अब तक यह रोग शल्य साध्य माना जाता है और शल्य कर्म मोतिया बिन्द के पक जाने पर ही किया जाता है। कच्ची अवस्था में शल्य कर्म इस रोग के लिये हानि कारक समझा जाता है।

शल्य कर्म द्वारा रुग्ण ताल को नेत्र से निकाल कर बाहर कर दिया जाता है और उसी मोटाई का शीशे का ताल ऐनक के रूप में प्रयोग करना पड़ता है तभी वह बाह्य द्रव्यों को, पहले के समान तो नहीं फिर भी कुछ अच्छी तरह देख सकता है। अभी प्लास्टिक के ऐसे बारीक ताल भी आविष्कृत कर लिये गये हैं जो नेत्र गोलक के भीतर ही इस प्रकार से फिट हो जाते हैं कि बाहर से दिखाई नहीं देते।

मोतिया बिन्द को पकने में वर्षों लगते हैं। एक बार जब यह उतरने लगता है तो इसे रोकने की कोई औषधि अभी तक ज्ञात नहीं। परन्तु रूस के मास्को नगर स्थित नेत्र रोगों के हैल्महोल्ट्ज़ संस्थान में ऐसी दवा की खोज के प्रयत्न कई वर्षों से चल रहे हैं।

इन खोजों के दौरान देखा गया है कि नेत्र ताल का रचना में सिकतीन (Cysteine) नामक पवनाम्ल सम्मिलित है। यह पदार्थ प्रकाश के प्रभाव से नेत्र के भीतर होने वाली ऊष्मीकरण प्रक्रिया के सम्पादन में महत्वपूर्ण भाग लेता है। यदि नेत्र ताल की रचना में सिकतीन का सन्तुलन बिगड़ जाय तभी ताल की पारदर्शकता कम होने लगती है और मोतिया बिन्द रोग प्रकट होता है।

क्ष-किरण के प्रभाव से कृत्रिम रूप से खरगोशों की आंखों में मोतिया बिन्द उत्पन्न करके उनके नेत्र ताल के भीतर सूची वेध द्वारा उचित मात्रा में सिकतीन को प्रविष्ट करने से देखा गया कि इस औषधि के प्रभाव से रुग्ण नेत्र ताल की पारदर्शकता धीरे २ बढ़ने लगती है और प्रारम्भिक अवस्था का मोतिया बिन्द ठीक हो जाता है।

गत दो वर्षों से मोतिया बिन्द के कोई १०० रोगियों को भी उक्त सूची वेध दिये गये उनमें प्रारम्भिक अवस्था के ७० प्रतिशत को लाभ हुआ। जिन लोगों का रोग पुराना हो चुका था, उन्हें विशेष लाभ नहीं हुआ। हैल्महोल्टज़ संस्थान ने इन प्रयोगों को और विस्तृत रूप देने के लिये इस चिकित्सा को कई अन्य नेत्र अस्पतालों में भी चालू करने की सिफारिश की है।

सिकतीन शीघ्र ही ऊष्मीकृत होने वाला पदार्थ है। अतः इसके सूची वेध विशेष विधि से दिये जाते हैं। नेत्र प्रक्षालक में सिकतीन विलयन भर कर उसमें हल्की सी बिजली की करैण्ट गुज़ारते हैं। नेत्र को इस विलयन के भीतर झपकते रहते हैं। इससे विलयन में विद्यमान सिकतीन का कुछ अंश नेत्र ताल में प्रविष्ट होकर उस पर अपना प्रभाव करता है। इस प्रक्षालन क्रिया की अवधि धीरे २ बढ़ाई जाती है। पहले दिन ८ मिनट फिर प्रति दिन २-२ मिनट बढ़ा कर उसे २० मिनट तक ले जाते हैं। प्रक्षालन का पूरा कोर्स ४० दिन का है।

—क. गौरीलाल चानना बी. ए. वैद्य वाचस्पति

वैद्युतिक हृदय बन गया

विलायत की ताजी खबर है कि ग्रेवसेड (ईसेक्स) नामक स्थान पर लिन्च वूकर नामक एक बालिका को विद्युत का एक हृदय बना कर उसके सहारे उसे जीवित रखा हुआ है। इस लड़की को हृदय रोग था उसे एक अस्पताल में जब प्रवेश करा कर उसके हृदय की शल्य क्रिया हो रही थी तो शल्य क्रिया के समय हृदय में एक छेद हो गया। जिसे बन्द करना कठिन था। इसलिए रक्त संचार कैसे बनाये रखा जाय उन डाक्टरों के सामने सबसे पहला यही प्रश्न था, तब वहाँ पर एक डाक्टर ने जो विद्युत का हृदय बनाया था वाहनियों के साथ सम्बन्धित करके उसे चालू कर दिय गया इससे रक्त का संचालन ठीक तौर पर होने लगा और आज छः सप्ताह से उस लड़की को वह डाक्टर इस विद्युत हृदय के सहारे उसका रक्त संचालन बनाये रखकर जीवित रखे हुए हैं और इस बात की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब वह छेद बन्द हो जाय। आधुनिक शल्य चिकित्सा इतनी समुन्नत हो चुकी है कि अश्विनी कुमारों के समय की शल्य क्रिया को मात कर गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० डी–७२०

व्याधि-मूल विज्ञान (पूर्वार्ध)

श्री स्वामी हरिशरणानन्द की नव्य कृति

यह वैज्ञानिक युग है, शरीर के भीतर जब कोई व्याधि हो जाती है तो उसे अब तक अनुमान से ही जानते थे। किन्तु वैज्ञानिकों ने ऐसे साधन मालूम कर लिए हैं कि शरीर के भीतर जब व्याधियों का प्रादुर्भाव हो रहा हो तो वह कैसे हुआ करता है, और उसमें कौन कौन से व्याधियों के उत्पादक कारण हैं। इसको उन्होंने नव्य प्रायोगिक विधियों से खूब अच्छी तरह से देखा व जांचा। एक ही प्रयोगशाला ने नहीं, अनेकों प्रयोगशालाओं ने मिलकर जांच की और जो तथ्य उन्हें मिले और वे प्रकाश में आये उनको संकलित कर व्यवस्थित रूप दिया गया है। इन प्रायोगिक विधियों ने चिकित्सा के अनेकों मान्य सिद्धान्तों पर पानी फेर दिया है।

आयुर्वेद का सिद्धान्त है—"मिथ्याहार विहाराभ्यां दोषाः ह्यामाशयाश्रयाः"। आहार विहार की अनियमितताओं से आमाशय में दोषों का उत्थान होता है। आहार सम्बन्धी और पचन सम्बन्धी विषय का प्रायोगिक ज्ञान इतना अधिक बढ़ चुका है जिनके सन्तुलित स्थिति से मनुष्य स्वस्थ रहता है उसमें असन्तुलित स्थिति उत्पन्न होते ही रोगों का प्रादुर्भाव होता है। यह 'द्रव्य साम्यमरोग्यता' का सिद्धान्त किस तरह देखा समझा गया यह आयुर्वेद विद्वानों के समझने की चीज है। इसी का वैज्ञानिक विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है। यह ग्रन्थ का पूर्वार्ध मात्र है जो ४०० से अधिक पृष्ठों में पूर्ण हुआ है। १० वर्ष के परिश्रम के बाद इसका पूर्वार्ध ही पाठकों के हाथ में पहुँचा रहे हैं। सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य १२) है।

पता—मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर।

ब्रांच—खारी बावली दिल्ली।

CC-0. In Public Domain..Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ७ कार्तिक सम्वत् २०१७ संख्या ११

नवम्बर १९६०

LIBRARY HARDWAR

आयुर्वेद-विज्ञान

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

सम्पादक

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

विषय-सूची

१. उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री डा० सम्पूर्णानन्द जी का ११वें उत्तर प्रदेश वैद्य सम्मेलन में भाषण ... १७७

२. त्रिदोष विवेचन १७९

३. आसवारिष्टों पर मद्य-कर घटा १९०

४. जैवों के सम्बन्ध में कुछ रोचक तथ्य १९१

५. मोतिया बिन्दु के औषोपचार सम्बन्धी नई रूसी खोज ... ...

प्रकाशक—

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, खारी बावली, दिल्ली–६

मुद्रक—बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, ढाईवाड़ा नई सड़क, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ३० नये पैसे होगा।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये। अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्व-प्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा। किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, न करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायेगा।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर किसी परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-सम्बन्धी प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये आयुर्वेद-विज्ञान के ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न एक रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके प्रश्न और उत्तर छापे जायेंगे।

मैनेजर

शिवा गुटिका

(जीर्ण और वृद्ध रोगियों के लिये दिव्य रसायन)

यह योग चक्रदत्त भैषज्य रत्नाकर और योगरत्नाकर ग्रन्थों में रसायनाधिकार में आया है। इस योग का प्रमुख द्रव्य शिलाजीत सूर्यतापी है जिसे कई वनस्पतियों और जीवनीय गण की औषधियों द्वारा ग्रीष्म काल की आतप में भावित कर उसकी मलाई उतारी जाती है। पश्चात कुछ अन्य औषधियां मिला कर इस की गुटी बनाई जाती है।

शास्त्र में इसे आमवात, यक्ष्मा, पाण्डु, नपुन्सकता, मृगी तथा शिर, नेत्र, कण्ठ, फुफ्फुस एवं हृदय के कई रोगों में लाभकारी लिखा है। इसका मुख्य गुण रसायन है। अर्थात् किसी भी जीर्ण रोग से, जरावस्था में अथवा किसी भी तरह जब शरीर की कार्य व्यवस्था बिगड़ जाय, शरीर की कोषायें निर्बल विकृत हो जायें तो यह औषधि स्वास्थ्य को पुनः बिल्कुल ठीक कर देती है, ऐसा अपने पर और अन्य रोगियों पर इसे प्रयोग करके हमने देखा है। जीर्ण रोगों से पीड़ित रोगियों व वृद्धावस्था में होने वाले विकारों तथा दुर्बलता में तो यह गुटिका विशेष रूप से लाभप्रद रसायन सिद्ध हुई है।

रसायन औषध दो चार दिन खाने से लाभ नहीं करती। दो गोली प्रातः सायं २-३ मास तक निरन्तर खानी चाहिये। एक मास सेवन करने योग्य ६० ग्राम गोली के पैकिट का मूल्य केवल ५) है, पैकिंग डाक खर्च भिन्न।

पता-मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, ६०-६१, अकालीमार्केट, अमृतसर

ब्रांच—खारी बावली दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद-विज्ञान

आयुर्विदेव विततं किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्नपरकैर्भवतीह लभ्यम्।
शवितं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ।।

वर्ष ७ | कार्तिक २०१७ वि०, नवम्बर १९६० ई० | अंक ११

उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री डा०सम्पूर्णानन्द जी का ११वें उत्तर प्रदेश वैद्य सम्मेलन में भाषण

कानपुर १० अक्टूबर को उत्तर प्रदेश वैद्य सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए डा. सम्पूर्णानन्द ने कहा "वैद्यों को अपनी चिकित्सा प्रणाली को बचाने के लिए प्रयास करना चाहिए। इस प्रणाली को ऐलोपैथी के आधार पर की जाने वाली विकास योजनाओं से खतरा पैदा हो रहा है। उक्त योजनाओं से दिहातों में फैली आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली का अन्त हो जायगा। किन्तु सम्मेलनों अथवा प्रस्तावों से आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली की रक्षा न हो सकेगी। इसीलिए जोरदार आन्दोलन किया जाना चाहिये। ताकि वैद्यों की आवाज योजना आयोग, केन्द्रीय सरकार और संसद सदस्यों के कानों तक पहुँच सके।

आयुर्वेद चिकित्सा पर स्वयं वैद्यों को विश्वास नहीं

अंगरेजों ने जान-बूझ कर आयुर्वेद को मान्यता प्रदान नहीं की थी। इस तरह इस चिकित्सा प्रणाली की जो उपेक्षा हुई, उसी के कारण उसका अधः पतन हुआ। आजादी के बाद जो नीति अपनाई गई, उससे भी हालत में सुधार नहीं हुआ। आजादी के बाद जो आयुर्वेदिक कालेज स्थापित हुए उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों में हीन भावना व बुद्धि पैदा हो गई। उन्हें अपने नाम के आगे आयुर्वेद की डिग्री लगाने में लज्जा का अनुभव होने लगा। वे अपने नाम के आगे डाक्टर की पदवी लगाने पर गर्व का अनुभव करने लगे। उन्हें भी आयुर्वेद पर विश्वास नहीं रहा और वे इसे अवैज्ञानिक और गलत समझने लगे। वैद्यों को चाहिये कि वे आयुर्वेद की मान्यताओं को वैज्ञानिक आधार पर लाकर सरकार को प्रभावित कर दें।

आगे उन्होंने कहा कि उत्तर प्रदेश सरकार ने आयुर्वेद के अध्ययन अध्यापन के लिये पृथक् निर्देशालय स्थापित करने का फैसला किया है। इस सम्बन्ध में एक आदेश शीघ्र जारी किया जायगा।

आयुर्वेद चिकित्सा पर से वैद्यों का विश्वास क्यों हिल रहा है ?

जिन नये कालेजों में वैद्यों को आयुर्वेद के साथ अलोपैथी के या यों कहो प्रयोग जन्य ज्ञान के आधार पर शरीर रचना व शरीर क्रिया विज्ञान की शिक्षा दी जाती है। उन लोगों का विश्वास तो आयुर्वेद के सिद्धान्तों से इसलिये उठ जाता है कि जिस त्रिदोष सिद्धान्त के आधार पर शरीर क्रिया विषय को जब वे विद्यार्थी एक ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ते हैं और उसी के साथ आधुनिक शरीर क्रिया विज्ञान को पढ़ते हैं तब वे विद्यार्थी 'प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्' को मानेंगे कि कल्पना को ? हम झूठी कल्पनाओं को इस प्रयोग वाद के युग में भी छोड़वा नहीं चाहते। दूसरे व्याधि सम्बन्धी प्रत्यक्ष ज्ञान को हम मानते नहीं, जिसके आधार पर हमने चिकित्सा करनी है,तब बतलाइये कि रोगी को जब तक हम रोग का कारण ठीक नहीं बतलाते रोगी हमारी चिकित्सा पर कैसे विश्वास करेगा ?

वैद्य के सामने रोगी देखते समय सिद्धान्त का प्रश्न नहीं होता। प्रत्युत उसके सामने यह प्रश्न रहता है कि रोगी के साथ हम ऐसे ढंग से बात करें कि वह हमारे बतलाये रोग निदान पर विश्वास कर ले। रोगी अनेकों डाक्टरों को दिखाकर फिर वैद्य के पास आते हैं, जहाँ उनके रोग का अनेक प्रायोगिक विधियों से डाक्टर निदान कर चुके होते हैं। रोगी भी अपने रोग को सही तौर पर जान लेता है। ऐसे रोगी को यदि हम अपनी प्राचीन सैद्धान्तिक पद्धति से ही समझाने का प्रयत्न करते हैं तो निश्चय ही हम रोगी को अपनी चिकित्सा से वंचित कर लेंगे। उस दशा में वद्य उसको यदि वह आधुनिक पद्धति का भी ज्ञान रखता है तो उसकी वह पूर्णतया तसल्ली कर देगा और रोगी उसके हाथ से नहीं निकल सकेगा। यदि वह केवल आयुर्वेद का ही ज्ञाता होगा तो वह त्रिदोष वाद की बातों से उसका संतोष नहीं कर सकता। देखा जाता है कि चिकित्सा काल में वैद्य उन्हीं सिद्धान्तों को व्यवहार में लाते हैं जिनसे उन्हें चिकित्सा में लाभ पहुँच सकता है। क्योंकि वैद्य के सामने रोटी का प्रश्न होता है। रोटी के लिये वैद्य वह साधन अपनावेगा जो सहायक होंगे। इस समय हम सब जो चिकित्सा करते हैं परार्थ भावना से नहीं करते। इस समय तो चिकित्सा को हम सबों ने एक व्यवसाय के रूप में अपनाया हुआ है। और वैद्यों का सम्बन्ध सदा रोगियों से ही पड़ा करता है, यदि कोई वैद्य अपने नाम के आगे डाक्टर की डिग्री लगाता है तो उसका रोगियों पर यह प्रभाव होता है कि यह वैद्य केवल प्राचीन पद्धति से ही परिचित नहीं, नव्य चिकित्सा पद्धति से भी परिचित है। इसका रोगी पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है और वैद्य की आय बढ़ती है। यदि वैद्य की आय डिग्री लगानें से बढ़ती है तो वैद्य कभी भी इस मार्ग को त्यागने के लिये तैयार न होंगे। क्योंकि यह बात रोटी से सम्बन्ध रखती है। इस युग में तो वही सिद्धान्त जीवित रह सकता है जो पूर्णतया सचाई पर आधारित हो आयुर्वेद के त्रिदोष सिद्धान्त जैसे सत्य की नींव पर इसका महल खड़ा नहीं किया गया। यह तो कल्पना की नींव पर खड़ा है जो बालू की दीवार के मानिन्द है वह आज गिरी कि कल उसने तो ढहना ही है। यदि डाक्टर सम्पूर्णानन्द जी के प्रयत्न से आयुर्वेद के अध्ययन के लिए पृथक् निर्देशालय स्थापित हुआ और उसमें त्रिदोष वाद जैसे सिद्धान्त पर आधारित शिक्षा का प्रबन्ध रहा तो यह निश्चय है कि भविष्य अन्धकार मय होगा। ऐसे विद्यालयों में वही व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करेंगे जो अत्यन्त गरीब होने के कारण अपने बालकों की शिक्षा पर खर्च नहीं करना चाहते। ऐसे बनने वाले वैद्य क्या किसी एलोपैथ डाक्टर की तुलना में अपने परिवार की उदर पूर्ति कर सकेंगे ? यह देखने वाली बात है।

यदि आयुर्वेद को वैज्ञानिक आधार पर लाया जाय तो वैज्ञानिक आधार प्रयोग पर अवलम्बित होगा वह प्रयोग वाद त्रिदोष जैसे कल्पित सिद्धान्तों को समूल उखाड़ फेंकेगा। क्योंकि सचाई दो नहीं हो सकतीं। सत्यमेव जयते नानृतम्।

आयुर्वेद को समूल नष्ट करने का आयोजन

केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् का एक अधिवेशन २८-३० अक्टूबर तक जयपुर में करने का निश्चय हुआ है इस सम्मेलन की अध्यक्षता केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री श्री करमरकर जी करेंगे। इस सम्मेलन पर विचार के लिये सरकारी औषध (ड्रग) परामर्श समिति ने प्रस्ताव भेजा है कि ड्रग एक्ट में दी हुई ड्रग्स की परिभाषा में सुधार किया जाय। जिससे उसके कार्य क्षेत्र में आयुर्वेदिक यूनानी दवाइयों को भी ले लिया जाय। इन्हें जो अब तक छूट मिली हुई है वह समाप्त कर दी जाय और इन्हें भी अधिनियम के अन्तर्गत बनाये नियमों में ही जगह दी जाय जिस प्रकार होम्योपैथी को मिली हुई है। भारत सरकार ने इस प्रस्ताव से सहमति प्रकट की है किन्तु साथ में कहा है कि आयुर्वेदिक और यूनानी औषध के नियन्त्रण की किसी भी व्यवस्था में वैद्यों और हकीमों को अपने रोगियों के उपचार के लिये दवाई बनाने की खुली छूट रहनी चाहिये।

[शेष पृष्ठ १९२ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिदोष विवेचन

आयुर्वेदाचार्यों का विचार था कि शरीर की आन्तरिक समस्त क्रियाएँ वायु के आधीन चलती हैं।

यथा:—वायुस्तन्त्रयन्त्रधर: प्रवर्तकश्च चेष्टानामुच्चावचानां
नियन्ता चेता च मनसा सर्वेन्द्रियाणामुद्योतक: ।
सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोढ़ा सर्वशरीर धातु व्यूहकर:
सन्धानकर: शरीरस्य प्रवर्तकोवाच: । च० सू० १२।८

अन्यच्च:—इन्द्रियार्थायसम्प्राप्तिं दोषधात्वग्नि वंकृतम् ।
क्रियाणामनुलोम्यं च कुर्याद् वायुरदूषित: ।
सुश्रुत नि० १।५।१०

अन्यच्च—क्रियाणामप्रतिघात ममोहं बुद्धि कर्मणां ।
करोत्यन्यानगुणांश्चापि स्वा: शिरा: पवश्चरन् ।।
सुश्रूत, शरीर ७।८।९

उक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि वायु ही शरीर में होने वाली समस्त चेष्टाओं (कर्मों) और ज्ञानेन्द्रियों के कार्य व्यापार में प्रेरणा देता है, तभी शरीर के क्रिया व्यापार चलते हैं। यह सिद्धान्त किस आधार पर स्थापित हुआ था ? इसको बहुत कम वैद्य सही रूप में जानते होंगे। वास्तव में पूर्व काल में हम सब वेद वाक्य को सर्वोपरि प्रमाण मानते थे। वेद में यदि कोई बात लिखी हुई हमारे सामने हो तो उसे हम विना ननु नच के मान लेते थे। वायु ही शरीर रूपी तन्त्रयन्त्र धर: है इसके सम्बन्ध में हमें एक प्रमाण अथर्ववेद में मिलता है। यथा:—

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ।
मस्तिष्कादूर्ध्व: प्रैरयत् पवमानोऽधिशीर्षत: । अथर्ववेद १०।२।२६

अथर्वा ने मनुष्य के मस्तिष्क और हृदय को परस्पर जुड़ा हुआ या सिया हुआ देखा। अर्थात् उसे हृदय गति का सम्बन्ध मस्तिष्क से मिला था। उस मस्तिष्क से हृदय को कैसे प्रेरणा मिलती है ? वह कहता है उस मस्तिष्क के ऊपर वायु रह कर उसे प्रेरणा देता है। उस वैदिक काल में इस बात को जानने का कोई साधन तो था नहीं कि मस्तिष्क स्वत: हृदय को प्रेरणा देता है या किसी वायु के द्वारा देता है उस समय पूरी तरह से देखने जानने का कोई साधन हाथ नहीं आया था। उस समय वायु को ही विश्व में प्रेरक व नियन्ता तक माना जाता था। आयुर्वेदज्ञों के समय तक भी प्रयोगवाद नहीं था दर्शनवाद था। दर्शनवाद वायु को ही प्रधानता देता था। इन्हीं आधारों पर "तन्त्र यन्त्र धर:" वायु को माना गया। दूसरे उस प्राक् आयुर्वेदिक काल में जब यज्ञ यागादि के समय पशुओं की बलि देने की प्रथा थी उस समय जिन पशुओं की कपालास्थि को तोड़ कर उनके मस्तिष्क को भिन्न करते थे, उस समय वह मस्तिष्क उनके सामने इतने मृदु रूप में आता था जिसे देख कर यह विश्वास करना कठिन था कि यह इतना कोमल अंग शरीर के यन्त्र तन्त्र धारण करने वाला भी हो सकता है ? मस्तिष्क की कोमलता को देख कर दूसरे उसे जब अग्नि पर पिघलता देखा गया तभी उसे मस्तिष्क मज्जा का नाम दिया गया। उस समय इस बात पर किसी को विचार करने का अवसर ही नहीं आया कि जिसका शरीर के अंगों से कोई लगाव नहीं, ऐसा वायु रूप द्रव्य शरीर का किस तरह संचालन करता है। क्योंकि शरीर की समस्त कियाएँ तो शरीर के भीतर होती हैं। हमारा देखने सुनने आदि का व्यापार भी शरीर के भीतर चलता है। इस देखने सुनने के व्यापार को चलाने वाला वायु है जो शरीर का अंग भाग नहीं वह मस्तिष्क के ऊपर रहता है। उसकी प्रेरणा से क्रिया व्यापार होते हैं। ऐसे जो विचार पूर्वकाल में थे वह अब आकर प्रयोगों द्वारा सही सिद्ध नहीं हो रहे।

अथर्वा ने जो मस्तिष्क का संकेत दिया था, यदि आयुर्वेदज्ञों में प्रयोगानुभव होता तो वह स्वत: देख सकते कि मस्तिष्क केवल मज्जा मात्र नहीं। यह तो स्वयं यन्त्र-तन्त्र धर: है। इसी से ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को प्रेरणा मिलती है। तभी वे शरीर के अंग अपना-अपना कार्य सम्पादन करते हैं। इस समय मस्तिष्क मज्जा का कितना ज्ञान बढ़ा है वैद्यों को अच्छी तरह से समझना चाहिये। 'प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्' जो भी अंगों के कार्य व्यापार प्रत्यक्ष करके देख लिये गये हों उसके लिये प्रमाण की अब जरूरत नहीं। मस्तिष्क और उसकी अन्त: रचना को किस तरह से देखा गया है हम अपने पाठकों को इसकी सही जानकारी कराना चाहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्तिष्क की रचना

किसी प्राणी की करोटी को काट कर हटा दिया जाय तो कपालास्थि हटने पर उसके नीचे अखरोट की गिरी सा अनेक टेढ़े मेढ़े उभारों और गहराइयों से बना जो अङ्ग दिखाई देता है यही मस्तिष्क है। जिस तरह साबत अखरोट की गिरी को उसके छिलके से भिन्न कर लिया जाय तो वह बीच के एक पर्दे से दो भागों में बंटा दिखाई देता है बिल्कुल इसी तरह मस्तिष्क भी एक मध्य दात्रिका (Central Falx) नामक पर्दे से दो भागों में बंटा दिखाई देता है। इसे माध्यमिक सीता भी कहते हैं। इस सीता से विभक्त हुआ मस्तिष्क दो गोलार्द्धों में बटा हुआ हैं। मनुष्यों में आगे से पीछे तक इसकी लम्बाई ६–६½ इंच और एक कान से दूसरे कान तक उसकी चौड़ाई ५½ इंच होती है और मस्तिष्क जहां पर जुड़ा होता है वहां उसकी मोटाई लगभग ५ इंच होती है। इस सारे मस्तिष्क को काट कर निकाल लें और तोलें तो इसका भार लगभग एक सेर छै छिटांक होता है। स्त्रियों का मस्तिष्क मनुष्यों से कोई दो छटांक कम उतरता है। जब बालक जन्म लेता है उस समय उसके मस्तिष्क का भार लगभग ७ छिटाँक होता है किन्तु इसका विकास पहले वर्ष इतनी तेजी से होता है कि एक वर्ष में ही वह दुगना हो जाता है। फिर धीरे-धीरे विकसित होता है और लगभग ६ वर्ष की अवस्था में तिगुना हो जाता है। इसके बाद विकास की गति और मन्द हो जाती है। अठारह वर्ष की अवस्था तक पहुँचने पर यह कुल तीन छटांक ही बढ़ता है। इसके बाद मस्तिष्क की वृद्धि बहुत ही मन्द गति से होती है, हां मानसिक विकास अवश्य होता है। इसकी क्रियाओं का अध्ययन करने लिए अनेकों प्राणियों के मस्तिष्क काट कर वारबर्ग नामक यन्त्र में रख देते हैं। यह यन्त्र ऐसे ढग का बना है कि इसमें रखा हुआ मस्तिष्क कई कई दिन तक जीवित रह कर अपना क्रिया व्यापार जारी रखता है। मस्तिष्क के किस भाग का शरीर के किस अङ्ग से कैसा सम्बन्ध है ? इसको जानने के लिए मस्तिष्क का कोई न कोई हिस्सा काटकर निकाल भी देते हैं इस तरह से अनेकों प्रयोग शालायें मस्तिष्क के क्रिया व्यापारों का जो अब तक अध्ययन कर चुकी हैं और उससे जो कुछ इसके क्रिया व्यापारों की जानकारी प्राप्त हुई है वह निम्न है।

प्रबन्ध की दृष्टि से जिस तरह किसी देश को अनेकों प्रान्तों में बांट कर उन प्रान्तों को फिर जिलों, तहसीलों में बांट कर सारे देश को छोटे छोटे खंडों में विभक्त कर देते हैं। और उन सबों का प्रबन्ध अनेकों प्रबन्धकों के सुपुर्द कर देते हैं। इसी तरह प्रकृति ने भी शरीर रूपी राज्य का प्रबन्ध चलाने के लिए मस्तिष्क के एक एक गोलार्ध को अनेकों सीताओं (Fissures) और छोटी-छोटी सीतिकाओं (Secondary fissures or sulci) से खंड़ों में बांट कर सारे शरीर का प्रबन्ध उसके उन खंडों में विभक्त कर दिया है। उस मस्तिष्क के द्वारा सारे शरीर के क्रिया व्यापारों का प्रबन्ध किस तरह चलता है इसे विस्तार से बतलाने की आवश्यकता है।

मस्तिष्क विभाग

विद्वानों ने मस्तिष्क की रचना व कार्य व्यापारों को देख कर उसे दो श्रेणी में बांट दिया है—

(१) वल्क भाग (Grey matter) (२) मज्जा भाग (White matter)। वल्क की रचना में प्रधानतया कोषाएँ व्यवस्थित रहती हैं। मज्जा भाग में उन कोषाओं से निकले तन्तु सूत्र समूह होते हैं। वल्क का वर्ण धूसर खाकी सा होता हैं, मज्जा का वर्ण श्वेत। वल्क में जो कोषायें रहती हैं कार्य व्यापारानुसार उनके आकार भिन्न भिन्न होते हैं। इन कोषाओं से जो तन्तु सूत्र विलकते हैं वही मज्जा के रूप में नीचे फैले होते हैं। यही सूत्र एक ओर से निकलकर दूसरे क्षेत्र को जाते आते हैं और इन्हीं में से अनेकों सूत्र निकलकर सुषुम्ना में भी जाते हैं। इन्हीं सूत्रों द्वारा मस्तिष्क के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र का और एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त का सम्बन्ध बना रहता है और इन्हीं सूत्रों से निकले अन्य सूत्र ही समस्त शरीर में उसी तरह फ़ैले होते हैं जैसे वैद्युतिक वाग्वाही (Telephone) के केन्द्र से सारे शहर के वाग्वाही व वाग्ग्राही तारों का सम्बन्ध रहता है। इसी तरह मस्तिष्क के वल्क क्षेत्र से समस्त शरीर की एक एक कोषा का सम्बन्ध बना रहता है। वल्क की कोषाओं से जो सूत्र निकला करते हैं वे बहुध्रुवी होते हैं अर्थात उनसे चारों ओर अनेकों सूत्र निकलते हैं जो कोई किसी ओर जाता है तो कोई किसी ओर जाता है। इन सूत्रों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से एक सूत्र प्रायः सुषुम्ना की ओर चला जाता है और वह किसी नाड़ी गंड में जाकर समाप्त हो जाता है। फिर वहां से नया सूत्र निकल कर आगे जाता है। इन्हीं सूत्र समूहों के मिलने से उनके गुच्छे या वंडल बन जाते हैं जिन्हें रज्जुयें कहते हैं। इस तरह से समस्त मस्तिष्क दो भागों में बंटा हुआ समस्त शरीर की क्रियाओं और संज्ञाओं का संचालन करता है।

वल्क की सूक्ष्म रचना

मस्तिष्क वल्क को मज्जा से भिन्न करके वल्क की मोटाई देखी जाय तो समस्त स्थानों की मोटाई एक सी नहीं मिलती। जहां कंगूरे होते हैं वहां यह अधिक मोटा है और जैसे जैसे सीताओं के भीतर घुसता जाता है वैसे वैसे पतला होता चला है। सीता के भीतर इसकी मोटाई $\frac{1}{12}$ इंच के बराबर होती है तो उससे बाहर शृंगों में इसकी मोटाई $\frac{1}{8}$ इंच तक होती है। औसत इसकी मोटाई $\frac{1}{8}$ इंच के लगभग होती है। इस एक सूत जितने मोटे वल्क में कई कोषाओं के स्तर एक के ऊपर एक बिछे होते हैं। इन कोषाओं के स्तरों की रचना एक ही आकृति की नहीं होती प्रत्येक कोषा के स्तर की बनावट एक दूसरे से भिन्न होती है। इन स्तरों को कार्य भेद से विद्वानों ने पांच भागों में विभक्त किया है:—

(१) बाह्य सूत्र स्तर (Outer Fibre layer) यह स्तर कोषा से निकले सूत्रों से बना होता है। जो जालवत् मस्तिष्क के समस्त भाग पर फैला होता है। इसके मध्य कहीं कहीं कोषाएँ भी पायी जाती हैं।

इस स्तर की मोटाई बुद्धिमानों में अधिक निर्बुद्धियों में इसकी मोटाई बहुत कम होती है।

(२) वहिःकोषा स्तर (Outer cell layer) यह स्तर सूची मुखी त्रिकोणाकार कोषाओं से निर्मित होता है। यह कई कोषाओं से मिल कर बना होता है जो एक के ऊपर एक बिछे होते हैं। ऊपर के स्तर से जैसे जैसे नीचे की ओर बढ़ें वैसे वैसे उन कोषाओं के आकार कुछ बड़े होते जाते हैं किन्तु उनकी आकृति में अन्तर नहीं आता। इससे भिन्न इनके कार्य व्यापार भी समान ही होते हैं अन्य प्राणियों की अपेक्षा मानव प्राणियों में यह स्तर अधिक विकसित होता है। मानव से इतर प्राणियों में यह स्तर पतला होता है।

(३) मध्य कोषा स्तर (Middle cell layer) इस स्तर की कोषाएँ कुछ तर्क्वाकार कुछ तारकाकृति (Granulons layer) कुछ विरूप भी होती हैं। किन्तु इनका आकार उपरोक्त कोषा स्तर की कोषाओं से आकार में छोटा होता है।

(४) अन्तः तर्क्वीसूत्रास्तर (Inner fibre layer) इस स्तर में अधिकतर सूक्ष्म सूत्रों के समूह होते हैं जो ऊपर से निकल कर नीचे जाते हैं। किन्तु इन सूत्रों के बीच बीच में कुछ तर्क्वाकार वृहद कोषायें भी जहां तहां फैली होती हैं।

(५) अन्तः कोषा स्तर (Inner cell layer) इस स्तर में कर्कटाकार, कुसुमाकार, तर्क्वाकार कई आकृति की कोषाएं होती हैं।

इन पाँचों स्तरों की कोषाओं की गणना का भी अन्दाजा लिया गया है, विद्वानों का अनुमान है कि इनकी संख्या कोई तीन करोड़ के लगभग होती है।

उक्त पांचों स्तरों के कार्य

(१) बाह्य सूत्र स्तरः—प्रयोगों से जाना गया है कि यह वाह्य कोषा स्तर बुद्धि का मुख्य स्थल है। इसी स्थल पर मन विचारणीय विषयों का विचार किया करता है। जब वहिःकोषा स्तर से स्मृति का उदय होता है तो उसके साथ ही सूत्र स्तर पर जैवी वैद्युतिक प्रवाह बहने लग जाता है और उसके सूत्र समूहों में वैद्युतिक स्पन्दन उठने लगते हैं। यही हमारे मनोभाव होते हैं। इसी विचारधारा के प्रवाह में हमारा मन डुबकी लगाये रहता है। इसी को चिन्तवन कहते हैं। इसी स्थिति को मनोवैज्ञानिक व दार्शनिक मन का नाम देते हैं। इस ऊहापोह में जब किसी बात का निश्चय हो जाता है तब वह बात वाह्य कोषा स्तर के स्मृति मन्दिर में भेज दी जाती है। वाह्य स्तर की एक एक कोषायें अपने भीतर उस स्मृति को सुरक्षित रखती है। इन स्मृतियों का उस स्तर में भिन्न २ विभाग होता है। हर एक स्मृति भिन्न भिन्न क्षेत्र की कोषाओं में संचित रहती है। इन प्रयोगों से यह भी जाना गया है कि इस वाह्य कोषा स्तर की कोषाएं उन व्यक्तियों में अधिक होती हैं जिनकी स्मृति अधिक रहती है। अर्थात स्मृति क्षेत्र के विस्तार के साथ साथ कोषाओं की संख्या भी बढ़ती जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) वाह्य कोषा स्तर—प्रयोगों से जाना गया है, कि स्मृति क्षेत्र अनेकों भागों में बंटा हुआ है। इसके एक एक कोषा में भिन्न भिन्न स्मृतियों के लिये भिन्न भिन्न स्थान होता है। इन कोषाओं की रचना कुछ ऐसे प्रकार की है कि यह कोषायें अपने संस्कारी मणिकाओं में स्मृति को विशेष रूप से संचित कर सकती हैं। और जब उक्त स्मृति से सम्बन्धित विचारों का आदान-प्रदान होने लगता है और उनमें वैद्युतिक प्रवाह चल पड़ता है। वहीं से उसका प्रवाह उठ कर तन्तु सूत्र स्तर पर जा पहुँचता है और उस बात का चट स्मरण हो आता है। इन कोषाओं से सूत्र स्तर और शरीर में होने वाली प्रतिक्रियाओं का पूर्ण सम्बन्ध रहता है।

(३) मध्य कोषा स्तर—वाह्य सूत्र स्तर पर उठे विचारों को जब कार्य रूप में परिणत करने का अवसर आता है अर्थात निश्चय के बाद जब कार्य के लिये प्रेरणा होती है तब वह कार्य शरीर के द्वारा ही सम्पन्न होता है। उस समय जो प्रेरणा होती है कि अमुक ज्ञानेन्द्रिय अमुक कार्य करे उस प्रेरणा को भेजने के लिये इसी स्तर की कोषाओं तक सूचना पहुँचती है। इस स्तर की कोषाएं फिर पंच-ज्ञानेन्द्रियों में से शरीर की जिस इन्द्रिय को आज्ञा देती हैं वही इन्द्रिय देखने सुनने स्वाद लेने आदि के कार्य व्यापार करने लगती है।

(४) अन्तः तर्व्वी सूत्रा स्तर—मानस क्षेत्र में हुए निश्चयों को कार्य रूप में परिणत करने के लिए शरीर में जो चेष्टायें (क्रियायें) होती हैं वे नाड़ी सूत्रों के मार्ग से इस स्तर तक भेजी जाती हैं। इस स्तर की कोषाओं से शरीर के वाह्य कामों का सीधा सम्बन्ध होता है। यही कोषायें जब उन अंगों को आज्ञा देती हैं तब वे अंग अपना अपना कार्य सम्पादन करने लग जाते हैं। अर्थात उठने, चलने फिरने, घूमने आदि के कार्य व्यापार होने लगते हैं।

(५) अन्तः कोषा स्तर—हमारे शरीर के भीतर अन्तः ग्रन्थियों के स्राव, पोषण, आमाशय, अन्त्राशय आदि की गतियां, हृदय की गति, फुप्फुस की गति आदि अनेकों आन्तरिक अनैच्छिक कार्य व्यापार इन्हीं अन्तः कोषाओं के नियन्त्रण में चलते रहते हैं। इस तरह शरीर के समस्त ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के ऐच्छिक कार्य व्यापार सब इन्हीं पाचों स्तरों की कोषा के द्वारा नियन्त्रित रह कर चलते रहते हैं।

मस्तिष्क मज्जा सूत्र

वल्क के नीचे जो भाग रहता है वह श्वेत स्वच्छ नाड़ी सूत्रों से निर्मित ऐसा कोमल भाग होता है जिनके सूत्रों को हम अपनी आंखों से नहीं देख सकते। हमें वह मज्जा मय ही दिखाई देता है इन्हीं नाड़ी सूत्रों के मार्ग से समस्त शरीर की संज्ञाओं चेष्टाओं के क्रिया व्यापार चला करते हैं। इन सूत्रों की रचना और कार्य व्यापार को देखकर विद्वानों ने उन्हें तीन वर्गों में विभक्त किया है।—

(१) संयोजक सेतु सूत्र (Collosumic Pons)

यह सूत्र मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों, उपमस्तिष्क और सुषुम्ना को परस्पर मिलाये रखने वाला प्रधान सेतु (Commisure) इसी से बना करता है। इन सूत्रों के द्वारा मस्तिष्क के पार्श्विक खंड भी एक दूसरे से सम्बन्धित रहते हैं। इसी के मध्य में से होकर सहकारी सूत्र और अन्योन्य सम्बन्धी सूत्र एक ओर से निकलकर दूसरी ओर जाते हैं और सुषुम्ना शीर्ष से आई हुई दो प्रधान रज्जुयें (Peduncles) भी इसी के मध्य होकर प्रत्येक मस्तिष्क के गोलार्ध में प्रवेश करती हैं।

(२) सहकारी सूत्र (Association fibres)

यह सूत्र अपने आस पास के मस्तिष्क गोलार्धों को जोड़े रहते हैं। इनके सूत्र लघ्वाकार और दीर्घाकार दो प्रकार के होते हैं। लघु सूत्र तो समीप के शृंग कोषाओं (Horn cells) को एक दूसरे से सम्बन्धित रखते हैं। दीर्घ सूत्र दूरस्थ शृंगों की कोषाओं को एक दूसरे से सम्बन्धित रखते हैं।

अन्योन्य सम्बन्धी सूत्र (Profection fibres)

यह सूत्र मस्तिष्क खंडों को एक दूसरे से परस्पर मिलाये रखते हैं। इससे भिन्न उपमस्तिष्क और सुषुम्ना शीर्ष को भी एक दूसरे से परस्पर सम्बन्धित रखते है इन्हीं से जो प्रलम्बाकार सूत्र निकलते हैं वही नाड़ी गंडों तक पहुँचते हैं और नाड़ी के निकले सूत्र समस्त शरीर में व्यापमान होते हैं। यह सूत्र दो प्रकार के होते हैं। (१) ऊर्ध्वगामी (Ascending) (२) अधोगामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Descending)। ऊर्ध्वगामी सूत्रों के भाग से तो शरीर के किसी भाग में होने वाले सम्वेदन मस्तिष्क तक पहुँचा करते हैं और अधोगामी सूत्रों द्वारा समस्त सम्वेदनाओं की सूचना मस्तिष्क से समस्त शरीर में भेजी जाती है। इन दोनों प्रकार के सूत्रों से जो भिन्न भिन्न चेष्टा व कार्य व्यापार होते हैं उनको समूहों में अर्थात प्रणालियों में बंटा देखा जाता है। वह किस तरह है? हम इसका वर्णन अगले अंक में करेंगे।

मस्तिष्क विभाग

जब मस्तिष्क विशारदों ने मस्तिष्क की आन्तरिक रचना और उसके कार्य व्यापार को अच्छी तरह से देखा व समझा तो उसके प्रत्येक कार्य विभाग को समझने के लिये उसको अनेकों खंडों में विभाजित करना उचित समझा। उन्होंने देखा कि इसे सीताओं के द्वारा विभक्त हुए भागों में बाँट दिया जाय तो इसके कार्य व्यापारों को समझना सुलभ होगा। उन्होंने देखा कि एक सीता गोलार्धों के मध्य से कान की तरफ नीचे उतरती है आधी दूर तक सीधी आकर फिर पीछे की ओर क्षितिज रेखा में कुछ दूर चल कर फिर ऊपर को उठ जाती है। उन्होंने इसका नाम मध्यान्तरा सीता (Central Sulcus) दिया इसके घुमाव से मस्तिष्क अग्र, शंख, पार्श्व और पश्चात् चार खंडों में विभक्त हो जाता है। इन चारों खंडों के भीतर भी मस्तिष्क के अनेकों भाग आते हैं उन सबों का इन्हीं खंडों के भीतर उल्लेख उन्होंने किया है। मस्तिष्क को इन खंडों में विभक्त करने की आवश्यकता क्यों दिखाई दी? जितना जटिल मस्तिष्क ऊपर से है उससे भी अधिक जटिल मस्तिष्क का अन्तः भाग उन्हें मिला। इसको ठीक तौर पर समझने के लिये ही उन्होंने इसको खंडों में बांट दिया। एक और बात यदि मस्तिष्क को काट कर उसे उलट दिया जाय तो उसके भीतर और भी कई आवश्यक अंग सामने आते हैं जिनको समझना बहुत जरूरी है। जिनका वर्णन हम खण्डों के साथ ही दे रहे हैं।

अग्र या ललाट खंड (Frontal lobe)

इस खण्ड के ऊपरीय भाग में तो अग्र मस्तिष्क (Frontal brain) रहता है। इसकी तली में एक तो ब्रह्म गुहा होता है जिसकी बग़ल में मस्तिष्क के दोनों गोलार्धों के नीचे चटक के अंडे के आकार के दो प्राक् मस्तिष्क (Thalamus) होते है। इन्हें प्राक् मस्तिष्क का नाम क्यों दिया गया? वास्तव में यह दोनों ग्रन्थियां मानवी मस्तिष्क से पूर्व उन प्राणियों में हैं जो मानव विकास के पूर्व विद्यमान थे। यही नहीं, इन ग्रन्थियों की रचना को भी देखा जाय तो इनकी रचना मस्तिष्क वल्क के समान है और जो प्राणी मस्तिष्क वल्क की रचना से रहित है उनमें यही ग्रन्थियां मस्तिष्क की जगह पर वही काम करती हैं जो मनुष्य में अब वल्क के द्वारा होते देखे जाते हैं।

प्राक् मस्तिष्क की विशेषता

इस प्राक् मस्तिष्क का शरीर से सम्बन्ध देखने पर ज्ञात होता है कि जितने भी शरीर से नाड़ी सूत्र आते हैं इन्हीं ग्रन्थियों में आकर समाप्त होते हैं। और उच्च श्रेणी के प्राणियों में देखा जाता है कि इन ग्रन्थियों के जो कार्य व्यापार जाने गये हैं उसके आधार पर इन ग्रन्थियों को विद्वानों ने दो भागों में बाँट दिया है। (१) पार्श्वांश भाग (Lateral part) (२) अन्तः अग्रांश भाग (Anteriomedial part) फिर इन एक एक भागों को दो दो खंडों में उन्होंने बांट दिया है (क) पाश्चाशार्बुदी (Pulvinar) (ख) पार्श्वार्बुदी (Lateral nucleus)। हम इन सबों का क्रम से वर्णन देंगे।

प्राक् मस्तिष्क के कार्य

पार्श्वांश भाग के कार्य :—इस भाग में शरीर के भिन्न भिन्न भागों से आये नाड़ी सूत्र यहां पहुँच कर समाप्त हो जाते हैं। और उच्च श्रेणी के प्राणियों में फिर यहां से नये सूत्र निकल कर मस्तिष्क वल्क की ओर जाते हैं। इससे भिन्न पश्चात् पार्श्व ग्रन्थि के दृष्टि नाड़ी सूत्रों को भी उसके कार्य में सहायता मिलती है। इससे भिन्न उच्च श्रेणी के प्राणियों में देखा जाता है कि समस्त संज्ञाएँ पहले यहीं पहुँच कर व्यवस्थित होती हैं फिर जिन को यह प्राक् मस्तिष्क उन सम्वेदनों में से जिसे उचित समझता है उनको वह स्वयं आदेश देकर उस कार्य की पूर्ति कर देता है। जिसे वह समझता है कि यह कार्य मेरे आज्ञा देने के योग्य नहीं उसकी सूचना मस्तिष्क वल्क को भेज देता है। समस्त ज्ञानेन्द्रियों से अब संज्ञाएँ प्रथम यहीं पहुँचती हैं यहीं से फिर मस्तिष्क वल्क को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजी जाती हैं। इसीलिये तो ज्ञानेन्द्रिय के व्यवस्था संचालन की व्यवस्था दो स्थानों से होने के कारण कभी मस्तिष्क वल्क में कोई विकार आ जाय तो एकाएक ज्ञानेन्द्रियों के कार्य व्यापार नहीं रुकते। और कहीं प्राक् मस्तिष्क में विकार आ जाय तो ज्ञानेन्द्रियों के कार्य व्यापार में बाधा आ जाती है।

मूल मस्तिष्क (Corpus Striatum)

इसकी रचना भी मस्तिष्क वल्क के समान ही होती है। इसके दोनों गोलार्धों में दो केत्वाकार ग्रन्थियां (Caudat nucleus) होती हैं। और इनका पता तब चलता है जब कि इस ग्रन्थि पर चढ़े अनेकों सूत्र गुच्छों को हटाया जाता है तो उसके भीतर केत्वाकार और मसूराकृति ग्रन्थि (Lenticular nucleus) नाड़ी सूत्रों से ढकी दिखाई देती हैं। यह जो नाड़ी सूत्र जाल इस पर चढ़ा होता है इसे अन्तरावरण (Internal capsule) कहते हैं। यह सूत्र जाल मस्तिष्क वल्क के एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व का सम्बन्ध बनाये रखता है। सूक्ष्म अनुसन्धानों से पता लगा है कि यह कार्यानुसार दो भागों में बंटा होता है (१) प्रष्ठीय (Putamen) (२) गर्भीय (Globus Pallidus)। यह दोनों ही अंग उसी तरह की घूसर कोषा से बने होते हैं जिस तरह मस्तिष्क वल्क। इस ग्रन्थि का शीर्ष भाग तो मस्तिष्क के अग्र वल्क से आकर छूता है और इसकी पूंछ प्राक् मस्तिष्क के बगल में से निकल कर पीछे की ओर चली जाती है।

मूल मस्तिष्क के कार्य

(१) यह ग्रन्थि मस्तिष्क वल्क के चेष्टा क्षेत्रों से प्रेरणा प्राप्त कर ऐच्छिक पेशियों की गति का नियन्त्रण करती है।

(२) सहयोगिता के आधार पर मांस पेशियों को क्रियाओं के लिये प्रेरणा देती है।

(३) इस ग्रन्थि से उठे नाड़ी वेग उन ऐच्छिक पेशियों तक पहुँच कर उन्हें कार्यरत रहने की प्रेरणा देते हैं। इसी से स्वयं जात सम्बन्धित क्रियाएँ होती रहती हैं। जैसे दौड़ने के समय हाथों का हिलना अनेक अंगों की पेशियों का गति शील बना रहना।

(४) यही मूल मस्तिष्क शरीरोद्भूत ताप का नियन्त्रण करता है।

उक्त मस्तिष्कों के नाड़ी जाल और उनके कार्य

नाड़ी सूत्रों से बना हुआ जाल जो प्राक् मस्तिष्क और मूल मस्तिष्क तथा उस ग्रन्थि के मध्य फैल कर उसे दो भागों में विभक्त कर देता है। इन्हीं नाड़ी सूत्रों के साथ रक्त वाहनियां भी ग्रन्थि के भीतर तक पहुँचा करती हैं। जब कभी किसी व्यक्ति को रक्त चाप वृद्धि का विकार हो रहा हो तो प्रायः इन्हीं रक्त वाहनियों में से यदि कोई कभी रक्त चाप के प्रभाव से फट जाती है तो जिस ओर की ग्रन्थि में धमनी के फटने से वहां रक्त स्राव होकर उन सूत्रों पर और ग्रन्थि पर जम जाता है इसी से उसके विपरीत पार्श्व का अंग मारा जाता है। किसी को अर्धांग, लकवा हो जाता है या अन्य किसी अंग का कार्य व्यापार रुक जाता है। हम सब इस रहस्य को न जानने के कारण इसे वात व्याधि मान लेते हैं।

वाह्यावर्णी नाड़ी जाल

इसके सूत्र मूल मस्तिष्क ग्रन्थि के बाहर रहते हैं और मस्तिष्क वल्क के पास पहुँच कर अन्तरावर्णी सूत्रों से मिल जाते हैं। इसके सूत्रों का आरम्भ प्राक् मस्तिष्क की कोषाओं से होता है।

मध्य मस्तिष्क

अग्र और पश्चात् मस्तिष्क को मिलाने वाला वह भाग है जिसके दोनों पार्श्वों से तीसरी, चौथी, पांचवीं और छठी नाड़ियां निकलती हैं। इस मध्य मस्तिष्क को तीन भागों में बांटा गया है।

(१) पौर्व पार्श्विक भाग—यह वह भाग है जिसके मार्ग से नाड़ी सूत्रों की प्रधान रज्जुएं मस्तिष्क के भीतर प्रवेश करती हैं। (२) पश्चात् भाग :—यह मस्तिष्क का वह पिछला स्थान है जहां कलायिका चतुष्टय (Corpora Quadrigemina) नामक ग्रन्थियां होती हैं। (३) मध्यान्तः भाग :—यह वह भाग है जहां ब्रह्म द्वारीय सुरंग (Aquaeductus cerebri) निकल कर सुषुम्ना शीर्ष की ओर जाती है।

पौर्व पार्श्विक भाग से नाड़ी सूत्रों की जो प्रधान रज्जुएं मस्तिष्क के भीतर प्रवेश करती हैं उन्हें कार्य व्यवस्थानुसार तीन भागों में बांटा गया है (क) वल्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग :—(Crusta or Pes) यह श्वेत नाड़ी सूत्रों से बना जाल प्रधान रज्जुओं को चारों ओर से आच्छादित किये रहता है। (ख) वल्क धूसरी भाग (Substantia nigra) यह मध्य रज्जुओं का बना वह भाग होता है जिसके सूत्रों का प्रसार (फैलाव) प्राक् मस्तिष्क और मूल मस्तिष्क तक रहता है। (ग) आच्छादकी सूत्र जाल (Tegmentum) यह मध्य मस्तिष्क का वह पिछला हिस्सा होता है जो तन्तु सूत्रों के जाल से निर्मित होता है इसमें दो ग्रन्थियां होती हैं और उनमें से तीन प्रणालियां निकलती हैं। ग्रन्थियां निम्न होती हैं (१) अरुणिका (Red nucleus) यह आगे की ओर होती है इसमें से त्रिवृन्तिका (Peduncles) के सूत्रों में से उत्तरी वृन्तिका के सूत्र आकर समाप्त होते हैं। इस ग्रन्थि के निम्न कार्य देखे जाते हैं (क) यह ग्रन्थि उपमस्तिष्क और सुषुम्ना में गये सूत्रों का परस्पर सम्बन्ध बनाये रखती है। इसी ग्रन्थि के मार्ग से सूचनाएं उपमस्तिष्क को मिलती हैं। उसी सूचना के आधार पर उपमस्तिष्क का पेशियों पर नियन्त्रण रहता है। इसी ग्रन्थि की प्रेरणा से घूमने फिरने आदि की स्वाभाविक चेष्टाएं होती रहती हैं।

(ख) इस ग्रन्थि का मूल मस्तिष्क से भी सम्बन्ध रहता है इस ग्रन्थि से निकल कर जो सूत्र मूल मस्तिष्क को जाते हैं उन सूत्रों के मार्ग से ही मूल मस्तिष्क की अनैच्छिक पेशियों पर नियन्त्रण के समय पूर्णतया सहायता करती है।

(ग) शरीर की गति शील स्थिति को बनाये रखने के लिये आवश्यक प्रत्यावर्तनीय क्रियाओं के संचालन में यह ग्रन्थि मुख्य रूप से काम करती है।

(घ) शरीर में जब कार्य करने की शक्ति समाप्त हो जाती है उसे पुनः पूर्व स्थिति में लाने का प्रयत्न इसी ग्रन्थि के प्रयास से होता है। यदि यह ग्रन्थि ठीक काम कर रही हो तो शरीर में पुनः कार्य करने की शक्ति आ जाती है।

(च) जिस प्राणी का मस्तिष्क काट कर निकाल दिया गया हो उसके अभाव में यह ग्रन्थि फिर निष्क्रिय हो जाती है। इसी से पेशियों में कठिनता और जड़ता आ जाती है।

(२) पुष्प वृन्तिका (Interpeduncular ganglion) यह ग्रन्थि मस्तिष्क की ओर गई हुई प्रधान रज्जु प्रणाली के मध्य में अवस्थित होती है इसमें से निकले सूत्र प्राक् मस्तिष्क के उठे हुए भाग से जाकर मिल जाते हैं। इसी के मार्ग से उक्त ग्रन्थि प्राक् मस्तिष्क को कार्य रत रहने के लिये उत्तेजना देती रहती है।

पश्चात् मस्तिष्क

मस्तिष्क का यह वह महत्व का भाग है जिस में सुषुम्ना शीर्ष अनेक सीताओं के द्वारा विभक्त हो कर स्तूपाकार हो मस्तिष्क के अनेक भागों से सम्बन्धित हो जाता है। इसी सुषुम्ना शीर्ष के मार्ग से कंठ रासनी, प्राणदा (Vagus nerve), ग्रीवा, पृष्ठगा आदि नाड़ियां निकलती हैं। इसके ऊपरीय भाग में अंडाकार उभार होता है जिसे जैतूनिका पिंडी (Olivary body) कहते हैं। इसके पीछे ९ वीं, १० वीं और ११ वीं शीर्षण्य नाडियों के सूत्र रहते हैं। इसके पिछले हिस्से में मृदु सूत्र गुच्छ प्रणाली (Fasciculus gracilis) और मृदु विन्दु शलाकी प्रणाली (Fasciculus cuneatus) के सूत्र निकल कर मस्तिष्क शृंग में पहुँच कर समाप्त हो जाते हैं। इन प्रणालियों को चूड़िका (Clava) और वहिर्चूडिका भी (Cuneate tubercle) कहते हैं। इस प्रणाली के कारण मस्तिष्क शृंग विशेष आकृति का उभरा हुआ हो जाता है। यहीं पर पंचमी नाड़ी के सूत्र आकर समाप्त होते हैं। इस पश्चात् मस्तिष्क का ऊपरीय स्तर रज्जुवत् बंटा हुआ होता है जो कंठरासनी और प्राणदा नाड़ियों के मूल स्थान पर रहता है। यही भाग आगे बढ़ा हुआ उपमस्तिष्क से जाकर मिल जाता है। जिससे उपमस्तिष्क की ओर जाने वाली नाड़ी रज्जुएं बनती हैं। इस पश्चात् मस्तिष्क की मज्जा में निम्नलिखित प्रणालियां पायी जाती हैं। (१) स्तूपिका प्रणाली (२) मध्यसुषुम्ना प्रणाली, (३) पृष्ठ सुषुम्ना प्रणाली, (४) पार्श्व सुषुम्ना प्रणाली, (५) अरुणी मेरू प्रणाली, (६) मृदु विन्दु शलाकी प्रणाली और (७) मृदु गुच्छ प्रणाली आदि ८ प्रणालियां होती हैं।

इस पश्चात् मस्तिष्क में तीन शृंग होते हैं जिनमें प्रत्यावर्तनीय क्रियाओं के अनेकों केन्द्र होते हैं। जिनका जीवन सम्बन्धी अनेकों कार्यों से पूर्णतया सम्बन्ध बना रहता है। यथा :—चूसना, चूमना, चबाना, निगलना, वमन करना, खांसना, छींकना आदि पचासों क्रियाएं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती हैं। पलकों के निमेष उन्मेष की गतियों के केन्द्र भी यहीं हैं। लालास्राव, स्वेदस्राव, श्वास-प्रश्वास, हृदयगति आदि जीवन के महत्वपूर्ण केन्द्र भी इसी पश्चात् मस्तिष्क में ही हैं। इन सबों के सूत्र सुषुम्ना शीर्ष के मध्य होकर जाते हैं। इसी कारण सुषुम्ना शीर्ष के द्वारा भी हृदय की गति, श्वास प्रश्वास, पचन व्यवस्था के स्राव, शोषण की क्रिया, कोषाओं में दहन की क्रिया व सात्म्यी करण आदि के व्यापारों पर यहीं से नियन्त्रण होता है।

सेतु (Pons)

पश्चात् मस्तिष्क के नीचे का वह भाग है जो उपमस्तिष्क के आगे और सुषुम्ना शीर्ष तथा मस्तिष्कीया प्रधान रज्जुओं को घेरे रहता है। यह बाहर की ओर आड़े नाड़ी सूत्रों से बनता है। इस सेतु के प्रत्येक पार्श्व के यह सूत्र बंडलाकृति होकर उसी पार्श्व के उपमस्तिष्क में प्रवेश कर जाते हैं। इन सूत्रों के द्वारा मस्तिष्क वल्क के विभिन्न भागों से नाड़ी वेग आते हैं जिससे उपमस्तिष्क मस्तिष्क वल्क के नियन्त्रण में रहता है। इन्हें उत्तान सूत्र कहते हैं इसके नीचे गम्भीर सूत्र रहते हैं। इससे विभिन्न सेतु के आवरण भाग में निम्नांकित शीर्षण्य नाड़ियों के केन्द्र भी रहते हैं। (१) पंचमी नाड़ी केन्द्र (२) अष्टमी नाड़ी केन्द्र (३) सप्तमी नाड़ी केन्द्र (४) श्रुति नाड़ी शम्बूकी शाखा केन्द्र (५) श्रुति नाड़ी तुम्बिका शाखा केन्द्र। शरीर से मस्तिष्क का सम्बन्ध इसी सेतु के द्वारा बना रहता है और इसी के मध्य से शरीर की संचालन व्यवस्था होती है।

उपमस्तिष्क

यह पश्चात मस्तिष्क के नीचे और सुषुम्ना शीर्ष के पीछे कपलास्थि के गढ़े में विराजमान होता है। विद्वानों ने इसे तीन भागों में विभक्त किया है (१) दो पार्श्व गोलार्ध (Hemishperes) तीसरा मध्य का कीटक भाग (Vermis)। इसका अन्तः भाग पोला होता है यह उपमस्तिष्क त्रिवृन्तिका नाड़ी सूत्र गुच्छों के द्वारा मस्तिष्क वल्क, सेतु और सुषुम्ना शीर्ष से जुड़ा होता है। इसकी रचना भी बिलकुल मस्तिष्क के समान ही होती है। बाहर वल्क में धूसर भाग और भीतर मज्जा भाग होता है। इस उपमस्तिष्क में चार केन्द्र होते हैं यह केन्द्र दो भागों में विभक्त होते हैं। पार्श्विक और आन्तरिक। पार्श्विक भाग में एक दन्तुर ग्रन्थि (Dentate) होती है यह उप मस्तिष्क की समस्त ग्रन्थियों में बड़ी होती है। इस ग्रन्थि में एक वाह्य कर्ण होता है जिसके भीतर होकर नाडी सूत्र जाते हैं व आते हैं। इसी में से त्रिवृन्तिका रज्जुएं सुषुम्ना में प्रवेश करती हैं। उपमस्तिष्क वल्क में भी तीन स्तर होते हैं किन्तु जिस तरह मोटे पतले स्तर मस्तिष्क वल्क के होते हैं इस तरह के इसके नहीं होते, इसके एक जैसे ही समतल स्तर होते हैं। किन्तु जिस तरह मस्तिष्क वल्क में कोषाएं स्तरों में व्यवस्थित रहती हैं इस तरह इसके स्तर में नहीं होतीं। इसके स्तरों में कोषाओं के प्रसार का क्रम भिन्न होता है। इसके वाह्य स्तर में निम्न प्रकार की कोषाएं पायी जाती हैं:—(१) परकिंजी कोषाओं की शाखाएं (Purkinje cells) (२) कणिका कोषाएं (Granulous cells) (३) मंजूषी कोषाएं (Basket cells) (४) स्थानिक कोषाएं। कुछ ऊर्ध्वगामी सूत्र भी उस स्तर में होते हैं। मध्य स्तरः— इसमें केवल परकिंजी कोषाएं होती हैं जिनकी शाखाएं वाह्य स्तर में फैली होती हैं। इसके नीचे माध्यमिक स्तर होता है। इसमें निम्न प्रकार की कोषाएं होती हैं। कणिकीया कोषा, जिनकी शाखाएं वाह्य स्तर पर फैली होती हैं। (२) मेदोद्भवी संयोजकी कोषाएं (Golgi cells) (३) स्थानिक कोषाएं।

उपमस्तिष्क के कार्य

भिन्न भिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न रीति से उपमस्तिष्क की जांच की है। उन सबों के प्रयोगों से निम्न निष्कर्ष निकला है। इसका मुख्य काम शरीर के सन्तुलन को बनाये रखना है। और चेष्टाओं के समय पेशियों को सशक्त रखना है और गतियों पर नियन्त्रण बनाये रखना है। इसीलिए इसके द्वारा मुख्यतया तीन कार्य सम्पन्न होते हैं (१) पेशियों में संकोच की स्थिति को दृढ़ता से बनाये रखना। (२) गतिकाल में पेशियों को सशक्त रखना। (३) सहयोगिता के आधार पर अंगों में गतियां बनाये रखना और शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना।

इस तरह से मस्तिष्क, प्राक् मस्तिष्क और मूल मस्तिष्क यह चारों मिलकर शरीर के विभिन्न क्षेत्रों पर नियन्त्रण बनाये रखकर तीन कार्य सम्पादित करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) संज्ञावाही सूत्रों के द्वारा किसी अंग में हुई उत्तेजना को ग्रहण करना। (२) उस उत्तेजना द्वारा प्राप्त ज्ञान के आधार पर नूतन उत्तेजनाओं का उससे सम्बन्ध स्थापित करना और उसको स्मृति के रूप में बनाये रखना। और प्रतिभिज्ञान द्वारा प्राप्त ज्ञान पर विचार करना और उसे निश्चयात्मक रूप देना और उस निश्चय को स्मृति मन्दिर में भेज कर भविष्य में उस स्मृति अनुभव से लाभ उठाना। (३) चेष्टाओं को आवश्यक समय तक बनाये रखना।

इस तरह मस्तिष्क वल्क वाह्य वातावरण से सदा सम्पर्क रखता है और ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा उत्पन्न अनेकों संज्ञाओं को ग्रहण करता रहता है। उसके आधार पर शरीर में जो चेष्टाएं उद्भूत होती रहती हैं अतीत के अनुभवों से बनी रहने वाली स्मृति के कारण मानव प्राणी अपनी जीवन यात्रा को सफलता के साथ पूर्ण करता रहता है। इस तरह से मस्तिष्क वल्क जाग्रतावस्था में बुद्धि व समवेदनाओं का मुख्य स्थल होता है। क्योंकि समस्त केन्द्रों के संज्ञा सूत्रों द्वारा जो परिणाम मिला करता है उसी का मन द्वारा मनन और बुद्धि द्वारा निश्चय हुआ करता है। इस तरह मस्तिष्क वल्क इच्छा, स्मृति, मनोभाव, बुद्धि भावना आदि मानसिक क्रियाओं का प्रधान स्थल है। इससे भिन्न मानसिक क्रियाओं द्वारा होने वाली अनेक जटिल साम्वेदनिक क्रियाओं का भी यह मुख्य स्थल है।

यह धारणा अब कोई मूल्य नहीं रखती कि शरीर में समस्त क्रियाएं व प्रेरणाएं वायु से संचालित होती हैं शरीर की क्रियाओं में किसी वायु जैसे वाह्य द्रव्य का क्या लगाव? इसे भी तो पहले विचारवानों को देखना समझना चाहिये।

प्रयोगों से देखा जाता है किसी बालक की जब शारीरिक वृद्धि हो रही हो उस समय यदि मस्तिष्क वल्क का विकास रोक दिया जाय या किसी कारण से रुक जाय तो उस बालक की बुद्धि नहीं बढ़ती। मैं इसका बहुत उत्तम उदाहरण रखता हूँ।

पंजाब प्रान्त का जब विभाजन नहीं हुआ था उस समय स्यालकोट नामक स्थान में दौले शाह की एक दरगाह है। वहाँ वह स्त्रियां दरगाह पर जाकर मनौती मान कर आती हैं कि हे बाबा दौलेशाह यदि मेरे घर सन्तान होने लग जाय तो एक बालक मैं तेरी दरगाह में भेंट चढ़ाऊंगी। जिन के दो बच्चे हो जाते थे वह एक बालक दरगाह में चढ़ा जाते थे। चार पाँच साल का बच्चा वह ले लिया करते थे। उस दरगाह का फकीर उस बालक के सिर पर एक लोहे का टोप चढ़ा देता था। उस टोप के चढ़ जाने पर फिर मस्तिष्क का विकास रुक जाता था। जितना बड़ा सिर उस समय उस बालक का होता था उतना ही बड़ा रह जाता था। मैंने वे दौले शाह के चूहे अनेकों शहरों में मांगते देखे हैं, उनकी बुद्धि उतनी ही होती है जितनी की पांच वर्ष के बालक की होती है मानसिक क्रियाओं का सम्बन्ध वायु से मानने वाले व्यक्ति इसका क्या समाधान करेंगे।

अब तर्कना का युग नहीं, जैसा कि हरिदत्त शास्त्री मानते हैं। अब तो प्रयोग वाद का युग है जहां इतने प्रयोगों के साधन हाथ आ चुके हैं जो "भूतो न भविष्यति"। ऐसे समय केवल कल्पना के घोड़े दौड़ाने से आयुर्वेद का उत्थान नहीं हो सकता।

पित्त विवेचन

शास्त्र कहता है :—आग्नेयं पित्तम् पित्त ही शरीर में अग्नि का रूप है।

अन्यच्च:—न खलु पित्तव्यतिरेकादन्योऽग्नि रूपलभ्यते। आग्नेयत्वात पित्ते दहन पचनादिष्वभिप्रवर्ततेमाने।
सुश्रुत सू० अ० २

पित्त से इलावा शरीर में और कोई अग्नि नहीं, इसी से दहन, पचन आदि की व्यवस्था चलती हैं। इस अग्नि का शरीर में कहां पर निवास है? अग्न्यधिष्ठान मन्नस्य ग्रहण्याद ग्रहणीमता। च०चि० १५। यह अग्नि ग्रहणी के के मध्य षष्ठी पित्त धरा कला में रहती है। ऐसा हम अब तक मानते चले आये हैं वह पित्तधरा कला में रहने वाली अग्नि का स्वरूप कैसा है? इस पर भी शास्त्रकार कहता हैं अग्नि रूप तिलोन्मितं' वह अग्नि तिल के प्रमाण है जो चतुर्विध, अन्न पानादि को पचाती है। इसी का स्वरूप तिल प्रमाण कहा गया है इसी के गुण दहन पाचन आदि बतलाये गये हैं।

इससे भिन्न क्या शरीर के भीतर और भी कोई पित्त है जिसके रूप, गुण निम्न बतलाये हैं। शास्त्रकार कहता है "पित्तमुष्णं द्रवं पीतं।" यह कौन सा पित्त है जो द्रव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप उष्ण गुण प्रधान पीले रंग का है। आयुर्वेद ने दो पित्त नहीं माने हैं; एक ही पित्त है। वह यदि अग्नि रूप है अग्नि द्रव सत्ता रूप नहीं हो सकती। द्रवत्व अग्नि में नहीं जल में होता है। इस समय के प्रयोगों से सिद्ध किया जा सकता है कि अग्नि पदार्थ नहीं, वह तो शक्ति स्वरूप है। शक्ति सदा पदार्थ के आश्रित रहा करती है। जैसे कपिला के आश्रित अग्नि रहती है। शक्ति कभी पदार्थ नहीं बन सकती। जिसमें द्रवता हो, वर्ण हो वह पदार्थ होता है। इस लिये यदि अग्नि शक्ति रूप में है तो वह तिल प्रमाण नहीं हो सकती। शक्ति को तिल प्रमाण कहना बहुत बड़ी भूल है।

शरीर के भीतर पचन, दहन की व्यवस्था कैसे चल सकती है ? इसको प्रत्यक्ष प्रयोगों से अच्छी तरह देख लिया गया है। पचन, दहन का कार्य किसी अग्नि जैसे कारण से नहीं होता। प्रत्युत द्रवीय रूप के ऐसे द्रव्य जो उस द्रव में विलय रहते हैं उनके द्वारा सम्पन्न होता है। वह व्यवस्था चूल्हे पर चढ़े दाल चावल वत् पकने की नहीं है।

हम इस बात को जान ही नहीं सके थे कि आहार के कण उदर दरी में जाकर पाचित नहीं होते, प्रत्युत विभक्त होते हैं। अर्थात् आहार के कण टूटते हैं न कि पचते हैं। कणों का टूटना और पचना एक बात नहीं न आहार उदर दरी में जाकर षड्रसों में विभक्त होता है। प्रत्युत एक शर्करा दूसरी शर्करा के रूप में बदलती है। यह रूप बदलना ही पचन है इसमें कण टूट कर छोटे से छोटे रूप में परिणत होते चले जाते हैं और इतने छोटे हो जाते हैं कि वे द्रव में घुल मिल कर एक रूप हो जाते हैं। तभी उन्हें आचूषक प्ररोह चूस चूस कर वाहनियों के भीतर पहुँचा देते है। वही रस रूप द्रव्य में कोषा तक पहुँच कर सात्म्यीकृत होता है।

इस समय संसार में लाखों शल्य शास्त्री विद्यमान हैं जो नित्य ही किसी न किसी के उदर की शल्य क्रिया करते रहते हैं। आजतक किसी भी शल्य शास्त्री को ग्रहणी के मध्य तिल प्रमाण अग्नि का कोई रूप दिखाई नहीं दिया। न अग्नि के गुण धर्म वाली कोई सत्ता ग्रहणी में मिली। जब परिपाक जैसी उदर में व्यवस्था ही नहीं है तो फिर वहां पर अग्नि के होने का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता। अग्नि की जरूरत तो वहीं पर होती है जहां आहार का पचन होता हो। हम सबों के उदर में आहार का जब पचन नहीं होता तो फिर अग्नि की विद्यमानता का कोई प्रश्न ही नहीं रहता।

तब क्या पित्त जैसी शरीर में कोई वस्तु नहीं ? है, वह यकृत के साथ लगी पित्ताशय की थैली से जो पित्त ग्रहणी में आकर आहार से मिलती है वह क्षार धर्मी कुछ अम्ल धर्मी पीत वर्ण का द्रव रूप पित्त होता है। जो आहार के एक अंश पर अपना प्रभाव डालता है। इस पित्त से स्नेहों का विच्छेदन होता है, पचन नहीं। यह पित्त भी आहार के समस्त अंश पर कोई प्रभाव नहीं डालता, न उसे पचाता है। इसलिये जैसा कि शास्त्र कार ने इसकी अग्नि के रूप की कल्पना की है ऐसा रूप गुण स्वभाव न मिलने से इस कल्पना में भी कोई सार नहीं रहता।

देहोष्मा का विवेचन

देह में ऊष्मा सदा ही बनी रहती है और जब मनुष्य मर जाता है तब उसका शरीर ठंडा पड़ जाता है। यह देहोष्मा सदा बनी रहती देखकर यह कल्पना कर ली गई थी कि पित्त ही शरीर में इस ऊष्मा का कारण है। और पांच प्रकार के शरीर में पित्त के स्थान मान लिये गये थे। वास्तव में हम सब आयुर्वेद के आविष्कार काल में जान ही नहीं सके थे कि शरीर में जो देहोष्मा या धात्वग्नि बनी रहती है वह किस कारण से है ! यह तो प्रयोगों से अब आकर पता चला है कि हमारे शरीर में कज्जल का दहन होता रहने से ही ऊष्मा उत्पन्न होती रहती है। चूल्हे पर वस्तुओं को पकता देख कर यह तो कल्पना कर ली थी कि उदर में भी आहार उसी तरह पकता होगा जैसा चूल्हे पर। किन्तु इस बात को नहीं जान सके थे कि जिस तरह लकडी कोयला जलाकर हम बाहर ऊष्मा उत्पन्न कर लेते हैं इसी तरह हमारे भीतर भी ईंधन के जलने से ऊष्मा उत्पन्न होती है। यदि इस सही सिद्धांत को पूर्व काल में जान लेते तो हम असत्य कल्पना कब की त्याग चुके होते।

लकड़ी या कोयला में जलने वाली वस्तु कज्जल होता है। कज्जल जलता कब है जब उसे ऊष्मजन का सम्पर्क मिलता हैं। कज्जल मौलिक पदार्थ है इसी तरह ऊष्मजन भी मौलिक पदार्थ है। पूर्व काल में इनकी मौलिकता को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं जान पाये थे। और न हम इस रहस्य को जान सके थे कि हवा में से किस वायु को हम श्वास के द्वारा ग्रहण करते हैं और प्रश्वास में किस वायु को त्यागते हैं। यह दोनों भिन्न हैं हम तो वायुओं के विभेद को अभी भी नहीं जान पाये। श्वास में लेने वाली प्रश्वास में निकलने वाली और अपान में सरने वाली समस्त वायुओं को एक ही समझते थे। हमारे यहां कहा है—

उदानवायोराधारः फुप्फुसं प्रोच्यते बुधैः।

यह उदान वायु वायुओं के भेद में से नहीं था क्योंकि उस समय तक एक वायु से अन्य वायुओं के अस्तित्व का कोई ज्ञान नहीं था। आयुर्वेद ने जो प्राण, उदान, समान आदि वायु भेद कहे थे, यह तो देह में स्थान भेद से एक वायु के पांच नाम कल्पित कर लिये थे। वायुओं (गैसों) का आविष्कार तो उनके युग से बहुत पीछे का है। कज्जल दहन के सिद्धान्त को सबसे पूर्व लवोसियर ने जाना था और लाप्लेस ने इस बात का अनुसन्धान कर बतलाया था कि श्वास मार्ग से हमारे फुप्फुसों में विद्यमान एक विशेष वायु ऊष्मजन (आक्सीजन) प्रवेश करती है। यही वायु रक्त के मार्ग से शरीर की एक एक कोषा तक पहुँचती है। शरीर की कोषाएं जब इसे ग्रहण कर के उसका जब कज्जल (कार्बन) से सम्पर्क करा देती है तो कज्जल उस ऊष्मजन का सम्पर्क पाकर जल उठता है उसी से देह में ऊष्मा का प्रादुर्भाव होता रहता है। ऊष्मजन का सम्पर्क पाकर कज्जल जलता है और उससे देहोष्मा उत्पन्न होती है यह नया सिद्धांत हमारे सामने आया। इस सिद्धांत के अनुसार ऊष्मा का कारण पित्त नहीं निकला, प्रत्युत वायु निकला अब तो अनेकों वायुएं हमारे सामने विद्यमान हैं गुब्बारों में उदजन (हाइड्रोजन) भर कर बच्चों के लिये उसे उड़ाते हैं। कज्जल द्विऊष्मिद में जलती मोमबत्ती को बुझा कर दिखा देते हैं चूल्हे में पंखा मार कर अग्नि को प्रचंड करके यह बतला देते हैं कि यह ऊष्मजन के अधिक सम्पर्क को पाकर ही जलती है। इस चूल्हे के प्रचंडता से जलने में ऊष्मजन का सम्पर्क कोयले से अधिक होता है इसको अनेकों विधियों से दिखलाया जा सकता है।

हमारे शरीर में कज्जल व उदजन दहन से केवल ऊष्मा ही उत्पन्न नहीं होती ऊष्मा के साथ ही कार्य करने की शक्ति भी हमें मिलती है। शक्ति की प्राप्ति से ही हमें शरीर की क्रियाओं के लिये सामर्थ्य मिलती है। यदि शक्ति की प्राप्ति एक क्षण के लिये भी रुक जाय तो उसी समय जीवन के कार्य व्यापार बन्द हो जाते हैं। इस रहस्य को भी हम नहीं जान सके थे। यह ताप और शक्ति प्राप्ति का सिद्धांत वास्तव में जीवन को बनाये रखने वाला सिद्धांत है इस को हम सही रूप में नहीं समझ सके थे। जिसे हम चेतना के नाम से पुकारते आ रहे हैं वह आत्म सत्ता इसी से प्रादुर्भूत हुई शरीर में रहती है।

जीवात्मा या चेतना कोई भिन्न सत्ता नहीं

हमारे शरीर की आन्तरिक व्यवस्था कैसे चलती है, पूर्वकाल में इसको प्रत्यक्षतया देखने समझने के हमारे पास कोई साधन नहीं थे। दूसरे अनेक पूर्वजन्म की घटनाओं का हाल बतलाने वाले कभी कभी कोई बालक अपने पूर्वजन्म का हाल बतलाते थे वह सही पाये जाने पर इस बात का विश्वास बढ़ा कि कोई न कोई शरीर से भिन्न ऐसी सत्ता है जो जीवन के अन्त होते समय शरीर से भिन्न हो जाती है। किन्तु जब प्रयोगवाद बढ़ा तब जीवन के वास्तविक रहस्य का पता चला कि हम सबों का शरीर एक जीव मय नहीं है। यह तो अनेकों अर्बो छोटी छोटी अदृश्य कोषा समूह से बना है। जिनमें अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व होता है। वह सब भिन्न भिन्न अपना जीवन कार्य स्वतन्त्र रूप से चलाती हैं और समूह में रहने के कारण ऐसी व्यवस्था बना ली है कि परस्पर सहयोग के रूप में उन सबों ने मिलकर ऐसी एक रूपता उत्पन्न की है जिसे हम सब अनजाने ही एक अल्प सत्ता के रूप में मान बैठे हैं। वास्तव में यह सत्य के समीप भी न था। तब सत्य क्या था?

कोषा सिद्धान्त

शास्त्र कहता है :—गर्भाशय गतं शुक्रमार्तवं जीवव संज्ञकः। गर्भाशय में गया हुआ जीव संज्ञक शुक्र और आर्त जब इनका संयोग होता है वही गर्भ का रूप धारण करता है। वह बढ़ता कैसे है? इसको भी वे नहीं जानते थे। वह तो कहते हैं "कालेन वर्धितो गर्भः" काल पाकर गर्भ अपने आप ही बढ़ता रहता है, बढ़ने का क्रम कैसे चलता है इसको प्रत्यक्ष रूप में देखने समझने के उस समय साधन हाथ नहीं आये थे इसी से हम जान नहीं सके

[शेष पृष्ठ १९० पर]
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसवारिष्टों पर मद्य-कर घटा

अखिल भारतीय देशी औषधि निर्माता संघ के प्रयत्नों का सुपरिणाम

आपको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि आसवारिष्टों पर लगे मद्य-कर को हटाने के विषय पर 'संघ' का विगत तीन वर्षों का निरन्तर प्रयास फलीभूत हो गया है। द्राक्षासव, द्राक्षारिष्ट एवं पिप्पल्यांसवादि पर सन् १९५५ में जो ३ रुपया प्रति गैलन के हिसाब से केन्द्रीय सरकार ने मद्यकर लगाया था, वह अब घटा कर १ रुपया ७५ नया पैसा प्रति गैलन कर दिया गया है।

संस्थापन काल से ही 'संघ' ने इस दिशा में प्रयास आरम्भ कर दिया था। संघ का सदा यह प्रयत्न रहा है कि उक्त आसवारिष्ट साधारण मद्य की श्रेणी में नहीं रखे जा सकते, अतः उन पर लगाया गया मद्यकर सर्वथा अन्याययुक्त है।

इस विषय में 'संघ' के अनेक प्रतिनिधि-मण्डल केन्द्रीय मंत्री महोदयों एवं उच्चाधिकारियों से मिलते रहे। अनेकों स्मरण-पत्र उनके सम्मुख प्रस्तुत किए गए। परिणाम-स्वरूप केन्द्रीय वित्त मंत्रालय ने दिनांक १०-९-१९६० को प्रकाशित गजट में उक्त छूट की घोषणा कर दी है।

'संघ' इस दिशा में अभी प्रयत्नशील है कि यह १-७५ मद्यकर भी इन औषधों पर से हटा दिया जाय। 'संघ' यह सिद्ध कर देना चाहता है कि आसवारिष्ट केवलमात्र औषध हैं, इनका मादक पेय के रूप में प्रयोग सर्वथा हानिकर है। इसके अतिरिक्त 'संघ' की ओर से स्प्रिचुअस प्रिपेरेशन्स (इन्टर स्टेट ट्रेड एण्ड कौमर्स) कन्ट्रोल ऐक्ट १९५५ तथा ड्रग्स एक्ट १९४० से उत्पन्न कठिनाइयों को दूर करने लिए भी प्रयत्न किया जा रहा है।

हमें यह दृढ़ विश्वास है कि यदि आप लोगों का पूर्ण सहयोग प्राप्त होता रहा तो 'संघ' अपने प्रयत्नों में निश्चितरूपेण सफलता प्राप्त करेगा। इससे जहां निर्मातागण एवं वैद्य समाज लाभान्वित होगा वहां जनसाधारण को भी बहुत आर्थिक लाभ होगा।

'संघ' के इस प्रयास के फलीभूत होने से यह भली भांति सिद्ध हो गया है कि वर्त्तमान युग में संगठन की महत्ता कितनी है। संगठन में ही इतनी शक्ति है जिससे कि इस प्रकार की बाधाओं को निर्मूल किया जा सकता है।

अतः हमारा उन निर्माता महानुभावों से, जो अबतक किसी कारणवश संघ के सदस्य नही बन पाए हैं, निवेदन है कि वे यथा शीघ्र सदस्य बन कर अपनी इस संस्था को बलवान एवं देश-व्यापी संगठन बनावें।

गौरी शंकर चौमाल
मंत्री
देशी औषध निर्माता संघ, २४८—चांदनी चौक, देहली-६

[शेष पृष्ठ १८९ का]

कि गर्भ की वृद्धि किस तरह से होती है। जब शुक्र आर्तव जीव संज्ञक थे तो इसका अभिप्राय स्पष्ट है कि उन जीव संज्ञक अंशों का व्यक्तित्व था, तभी वे स्वयं बढ़ने में समर्थ हुये। यदि उनमें स्वतन्त्र व्यक्तित्व न होता तो वह कभी भी वृद्धि नहीं कर सकते थे। यही वह कोषा का रूप है जो अब आकर देखा व जाना गया है। जब यह ज्ञात हो गया कि शरीर अनन्त कोषाओं के समूह से उसी तरह बनता व बढ़ता है जैसे मकान ईंटों के मेल से बनते व बढ़ते जाते हैं। यह कोषाएं सब स्वतन्त्र जीवन युक्त हैं इन्हें काट कर यदि सुरक्षित रखा जाय और इनको बना बनाया आहार दिया जाय तो यह जीवित रहती हैं। इस तरह से शरीर के अनेकों अंगों को काट कर वारबर्ग यन्त्र में कई कई दिन जीवित रख कर उनके जीवन व्यापार को अच्छी तरह से अध्ययन किया जा चुका है। जब एक एक कोषा अपना स्वतन्त्र जीवन रखती है तो यह मानव का शरीर एक जीव का तो न रहा।

श्लेष्म विवेचन

श्लेष्म के सम्बन्ध में इतना ही कहना काफी है कि हमारे शरीर के भीतर जो पोले मार्ग हैं उन पर एक कला चढ़ी होती है उस कला से पोले अंग ढके रहते हैं वह कला श्लेष्मा का उत्पादन करती है। और उसे उत्पन्न करके फिर उसका शोषण कर लेती है। इस कला में जब किसी कारण से शोथ या अन्य कोई जैवी कारण या वीरासाणु (वाईरस) आदि रोगोत्पादक कोई कारण कला को दूषित कर देते हैं, तब उक्त कला विकारी हो जाने के कारण उत्पन्न किये श्लेष्म का शोषण करने में असमर्थ रहती है, तभी वह श्लेष्म आकुंचन गति के समय बाहर निकल कर स्रवता रहता है। इसे ही श्लेष्म का रोग कहते हैं। यह श्लेष्म होता है वह अस्रजनीय द्रव्य जो शरीर का एक भाग होता है किन्तु इसे हम शरीर का मौलिक द्रव्य नहीं कह सकते। क्योंकि इसकी उत्पत्ति तो शरीर की रचना के बाद श्लेष्म कला के द्वारा होती है। इस प्रत्यक्ष प्रायोगिक ज्ञान के लिये प्रमाण की आवश्यकता नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैवों के सम्बन्ध में कुछ रोचक तथ्य

क्या हम जैव खाते हैं ?

यहां पर जैवों से अभिप्राय उन जीवाणुओं कीटाणुओं से है जिन्हें हम नंगी आंखों से नहीं देख सकते। जैव शब्द जर्म्स का पर्याय है। यह एक कोषी जैव इतने सूक्ष्म होते हैं कि सुई की नोक पर सैंकड़ों की संख्या में बैठ सकते हैं। नंगी आंखों से यद्यपि सुई की नोक देखने पर बहुत बारीक नोकवत् दिखाई देती है किन्तु अण्वीक्ष यन्त्र की सहायता से देखने पर वह सुई की नोक काफी समतल चौड़ी दिखाई देती है। उसी पर एक कोषी जैव अनेकों बैठे देखे जाते हैं। आयुर्वेदज्ञों को इनके अस्तित्व का ज्ञान मात्र था, इसीलिये इनकी एक जाति को उन्होंने बीज की संज्ञा दी थी। यथा :—सुरा बीजं च किण्वकम्। आसव बनाने वाले सुराबीजों को किण्व भी कहा है।

जब हम आसव बनाने लगते हैं उस मीठे द्रव में जामन के तौर पर सुराबीज डालने पर उस मीठे में संधान उठ खड़ा होता है। अर्थात् सुराबीज डालने से उस बीज से अनेकों बीज उत्पन्न होकर जब वे बढ़ते हैं और द्रव में विद्यमान मीठे को खाते हैं उससे मीठे के अणु टूट कर आसव में बदलने लगते हैं। सुरा बीजों में यह क्रिया अंकुरन पद्धति से होती है। अर्थात् जिस तरह से हम भूमि में बीज डाल देते हैं और दो चार दिन में ही उससे अंकुर फूट निकलता है। इसी क्रम से एक ओर इन सुराबीजों में अंकुर निकलता है किन्तु वह अंकुर पत्र नहीं देता प्रत्युत जब बढ़ता है तब अपने बीज से भिन्न होकर बीज बन जाता है। इसी तरह दधि बीज का जब दूध में जामन लगा देते हैं तो वह भी इसी विधि से बढ़ कर दुग्ध की शर्करा को खाते हैं और दुग्धाम्ल उत्पन्न करते हैं इसी से दूध का अस्रजन जम कर थक्का बन जाता है। दूध से दही का बनना और मीठे द्रव से आसव का बनना यह दोनों क्रियाएं उन जैवों की वृद्धि पर निर्भर हैं।

यदि हम अण्वीक्ष यन्त्र से दही या सुरा की बूंद को कांच पट्टिका पर फैला कर देखें तो उसमें हजारों जैव रेंगते दिखाई देंगे। पर यह हमें नंगी आंखों से नहीं दिखाई देते। यह दधिबीज और सुरा बीज दोनों ही अविकारी होते हैं। इसीलिये जब हम दो तोले आसव या १० तो० दही खाते हैं उसमें हम सौ दो सौ नहीं लाखों जैव खा जाते हैं। यह हमें दिखाई नहीं देते इसीलिये दही खाने या आसव पीने से जीव हत्या होती होगी ऐसा नहीं मानते पर वास्तविकता तो यह है कि दही के रूप में हम करोड़ों अर्बों जैव उदरस्थ कर जाते हैं। और हम अपने को निर्दोषी ही मानते हैं। यहां हम किसी धार्मिक दृष्टि से या पाप पुण्य को लेकर विचार नहीं कर रहे हम तो वास्तविकता को बतला रहे हैं।

07945२।

क्या दागी सड़े फलों में जैव होते है ?

आज कल फलों का मौसम है जिस फल में जरा सा दाग लग गया हो वह सड़ने की ओर बढ़ रहा हो उस फल का वह दागी भाग काट कर उसका जरा सा गूदा कांच पट्टिका पर बिछा कर अण्वीक्ष यन्त्र के आगे रखकर उसे जब देखा जाय तो उसमें दो चार नहीं सैंकड़ों ही जैव रेंगते दिखाई देंगे। यह कीटाणु कितनी तेजी से बढ़ते हैं इसे आप उस फल को २४ घंटे पड़ा रहने दें तो वह इतने में ही सारा सड़ गल जाता है। इसी से अन्दाजा लगावें कि वे कीटाणु उसमें कितनी तेजी से बढ़ते हैं। यदि हम कोई सड़ा गला फल खा लें तो क्या वह जैव पेट में भी पहुंच कर इसी तरह से बढ़ते हैं ऐसा नहीं होता, क्योंकि हमारे पेट के भीतर जो लवणाम्ल उत्पन्न होता है प्रायः उसके प्रभाव से वे मर जाते हैं। जो वहां से बच कर आगे चले जाते हैं क्लोम के तीव्र क्षारीय प्रभाव से निष्क्रिय हो जाते हैं। कुछ जो बच कर निकल भी जाते हैं वे सब अन्त्रवासी न होने के कारण वहां ठहरते नहीं। जो ठहर भी जाते हैं उनमें अधिक अविकारी होते हैं इसी से उनके द्वारा किसी अनिष्ट की आशंका नहीं होती। अनजान में जो हम नित्य प्रति दूषित पदार्थ खाते रहते हैं उनसे हमें कष्ट नहीं होता, इसके दो कारण हैं एक तो वही जो बतलाया कि इनमें अधिकतर निर्विकारी होते हैं, दूसरे हमारे शरीर में भी इनके दिन रात असंख्यों की संख्या में पहुंचते रहने के कारण शरीर में इनके प्रति और इनके विष के प्रति सक्षमता बनी रहती है इसीलिये इनके उदर में पहुंचते रहने पर हमें कोई कष्ट या इनका अनुभव नहीं होता। किन्तु इन से भिन्न और भी कई प्रकार के जैव जो सदा ही शरीर के भीतर अपना वासा बनाये रखते हैं उनकी संख्या भी थोड़ी नहीं है। हमारे मलाशय और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृहदन्त्र में ही २०-२२ प्रकार के जैव सदा ही पाये जाते हैं। इनमें कुछ अविकारी, कुछ घाती, कुछ विकारी भी होते हैं।

क्या एक साथ अनेकों प्रकार के जैव रह सकते हैं

जिस तरह हम सबों के सम्पर्क में गाय, बैल, घोड़ा, सुअर, गधा, तोता, मैना आदि अनेकों प्राणी रहते हैं। बिना पाले बिल्ली, कुत्ता, चूहा, घूंस, छछूंदर आदि प्राणी भी हमारे घरों में हमारे साथ रहा करते हैं और यह सब प्रकट और गुप्त रूप से मानवी आहार पर ही पलते रहते हैं इसी तरह हमारे शरीर के भीतर भिन्न २ आहार के भाग पर पलने वाले अनेक प्रकार के जैव एक साथ ही एक स्थान पर आराम से रहा करते हैं। इन जैवों के अस्तित्व के सम्बन्ध में अब शंका करना अपने को को धोके में रखना है। इस समय तो इन जीवाणुओं, कीटाणुओं की एक एक जाति प्रजाति को इलहदा इलहदा करके पाला जाता है और उनकी कृषि करके उनसे उत्पन्न द्रव्यों को औषधि के तुल्य उपयोग किया जा रहा है। पेन्सिलीन, स्ट्रेप्टोमायसीन आदि औषधियां क्या हैं ? इन्हीं जैवों द्वारा उत्पन्न हुई प्रति जैवी औषधियां हैं जो चमत्कृत कार्य करती हैं। इसलिये जैवी जगत् कोई अब काल्पनिक चीज नहीं है जिस का हम उल्लेख कर रहे हैं। हम में त्रुटि है तो यही है कि हमने अभी तक अण्वीक्ष यन्त्र को हाथ नहीं लगाया। यदि हम एक बार इस यन्त्र से अपने पेट के मल को देख लें तो हमें पता लग सकता है कि हमारे मल में पचासों प्रकार के कुलबुलाते जैव प्रकट हो सकते हैं। हमें जैवी जगत् के अस्तित्व को बिना ननुनच के स्वीकार कर लेना चाहिये। और इनसे होने वाले औपसर्गिक रोगों को ठीक तरह से समझना चाहिये तभी हम व्याधि की वास्तविकता को समझ पावेंगे इस तरह नहीं।

अन्त्र वासी कीटाणु और कुछ रोग

आंख, कान, नाक, गले आदि में रहने वाले तथा त्वचा पर वास करने वाले अनेकों प्रकार के कीटाणु अब तक देखे गये हैं हम उनका उल्लेख न करके केवल अन्त्र में पाये जाने वाले उन कीटाणुओं की कुछ चर्चा करेंगे जिनमें से कुछ तो रोगोत्पादक है, कुछ अविकारी या घाती होते हैं। इनका प्रवेश चाहे खाद्य पेय द्रव्यों के साथ हो या यह किसी अन्य मार्ग से अन्न प्रणाली में पहुँच कर यह ठहरते हैं वृहदन्त्र में या मलाशय (डुंडुभ) में। यह अब तक ३५-३६ प्रकार के देखे गये हैं जो प्रायः शलाकाकृति होते हैं। किन्तु सबों की आकृति एक जैसी नहीं होती सबों की रचना रूप में काफी अन्तर होता है। जो प्रायः सदा ही स्थूलान्त्र में पाये जाते हैं इनमें अनेकों शर्करी द्रव्यों में सन्धान उत्पन्न करते हैं। कई दुग्ध में सन्धान उत्पन्न कर दुग्धाम्ल उत्पन्न करते रहते हैं। कुछ ऐसे प्रकार के भी होते हैं जो नीलोल (इण्डोल) नामक गन्धवान् वायु उत्पन्न करते हैं। कुछ पवन यौगिकों में से पवनियां उत्पन्न करते हैं, कुछ पवन को भिन्न कर देते हैं। इनमें से कुछ एक विशूचिका के कारण भी होते हैं। इनसे भिन्न कुछ ऐसे भी कई जाति के कीटाणु पाये जाते हैं जो केवल वृहदन्त्र में कई प्रकार की वायु उत्पन्न किया करते हैं। अपान वायु नाम से जो वायु मल द्वार से निकला करती है वह प्रायः इन्हीं कीटाणुओं के द्वारा उत्पन्न हुआ करती है। कुछ कीटाणु ऐसे भी होते हैं जो उस तरह तो वृहदन्त्र में रहते हुए किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं पहुँचाते किन्तु घात में रहते हैं और अवसर पाते ही मन्थर ज्वर, अतिसार आदि का कारण होते हैं।

[शेष पृष्ठ १७८ का]

औषधियों पर नियन्त्रण करने के साथ ही निम्न सुझाव भी दिये हैं।

(१) आयुर्वेदिक यूनानी औषध निर्माण में काम आने वाली कच्ची औषधियों की अच्छी तरह परीक्षा की जाय।

(२) औषधियों के योग लेबिल पर स्पष्ट रूप से पूरे लिखे जांय। (३) औषधियों का निर्माण शुद्धता पूर्वक हो। इन औषधियों के निर्माण पर आगे और नियन्त्रण का प्रश्न इन औषधियों के प्रतिमान व विकास पर निर्भर होगा।

इस सम्मेलन के लिये आन्ध्र सरकार ने निम्न सुझाव भेजा है

आयुर्वेदिक यूनानी कालेजों में अलोपैथी की पढ़ाई सर्वथा हटा दी जाय। इसके विपरीत एम. बी. बी. एस. के कोर्स में आयुर्वेदिक और यूनानी को ऐच्छिक विषय के रूप में रखा जाय।

आगे क्या होगा ?

आयुर्वेद और यूनानी को पहले ही ड्रग एक्ट के भीतर ले लिया जायगा। यह योजना है। किन्तु औषध निर्माण में काम आने वाली कच्ची औषधियों की परीक्षा व्यय साध्य कार्य होने के कारण इसे टाला जायगा। इस का परिणाम यह होगा कि औषध निर्माण में पहले बाधा खड़ी हो जायगी और वैद्य अनिर्णीत औषध निर्माण करते जब पकड़े जायेंगे उन्हें इस ड्रग एक्ट के आधीन गिरफ्तार करके उनके चालान अदालतों में भेजे जायेंगे और वे सजा व जुर्माने भर कर मुक्ति पाया करेंगे। इस तरह से देशी चिकित्सा पद्धति को १० वर्ष से पूर्व ही समाप्त कर दिया जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मोतिया बिन्द के औषधोपचार सम्बन्धी नवीन रूसी खोज

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेत्र के भीतर विद्यमान स्वच्छ ताल जो स्वस्थावस्था में पारदर्शक होता है और बाह्य द्रव्यों का प्रतिबिम्ब नेत्र के दृष्टि पटल पर स्पष्ट रूप में अंकित करने में कारण होता है, मोतिया बिन्द रोग में इस ताल की पारदर्शकता कम होने लगती है और रोगी को धुन्धला दिखाई देता है। अन्त में ताल पूर्णरूप से अपारदर्शक हो जाता है अर्थात् बाह्य द्रव्यों के प्रतिबिम्ब के प्रति यह पूर्णतः अप्रवेश्य हो जाता है परिणामतः रोगी को दिखाई देना बन्द हो जाता है। इस अवस्था को मोतिया बिन्द की पक्की अवस्था माना जाता है। अब तक यह रोग शल्य साध्य माना जाता है और शल्य कर्म मोतिया बिन्द के पक जाने पर ही किया जाता है। कच्ची अवस्था में शल्य कर्म इस रोग के लिये हानि कारक समझा जाता है।

शल्य कर्म द्वारा रुग्ण ताल को नेत्र से निकाल कर बाहर कर दिया जाता है और उसी मोटाई का शीशे का ताल ऐनक के रूप में प्रयोग करना पड़ता है तभी वह बाह्य द्रव्यों को, पहले के समान तो नहीं फिर भी कुछ अच्छी तरह देख सकता है। अभी प्लास्टिक के ऐसे बारीक ताल भी आविष्कृत कर लिये गये हैं जो नेत्र गोलक के भीतर ही इस प्रकार से फिट हो जाते हैं कि बाहर से दिखाई नहीं देते।

मोतिया बिन्द को पकने में वर्षों लगते हैं। एक बार जब यह उतरने लगता है तो इसे रोकने की कोई औषधि अभी तक ज्ञात नहीं। परन्तु रूस के मास्को नगर स्थित नेत्र रोगों के हैल्महोल्ट्ज़ संस्थान में ऐसी दवा की खोज के प्रयत्न कई वर्षों से चल रहे हैं।

इन खोजों के दौरान देखा गया है कि नेत्र ताल का रचना में सिकतीन (Cysteine) नामक पवनाम्ल सम्मिलित है। यह पदार्थ प्रकाश के प्रभाव से नेत्र के भीतर होने वाली ऊष्मीकरण प्रक्रिया के सम्पादन में महत्वपूर्ण भाग लेता है। यदि नेत्र ताल की रचना में सिकतीन का सन्तुलन बिगड़ जाय तभी ताल की पारदर्शकता कम होने लगती है और मोतिया बिन्द रोग प्रकट होता है।

क्ष-किरण के प्रभाव से कृत्रिम रूप से खरगोशों की आंखों में मोतिया बिन्द उत्पन्न करके उनके नेत्र ताल के भीतर सूची वेध द्वारा उचित मात्रा में सिकतीन को प्रविष्ट करने से देखा गया कि इस औषधि के प्रभाव से रुग्ण नेत्र ताल की पारदर्शकता धीरे २ बढ़ने लगती है और प्रारम्भिक अवस्था का मोतिया बिन्द ठीक हो जाता है।

गत दो वर्षों से मोतिया बिन्द के कोई १०० रोगियों को भी उक्त सूची वेध दिये गये उनमें प्रारम्भिक अवस्था के ७० प्रतिशत को लाभ हुआ। जिन लोगों का रोग पुराना हो चुका था, उन्हें विशेष लाभ नहीं हुआ। हैल्महोल्टज संस्थान ने इन प्रयोगों को और विस्तृत रूप देने के लिये इस चिकित्सा को कई अन्य नेत्र अस्पतालों में भी चालू करने की सिफारिश की है।

सिकतीन शीघ्र ही ऊष्मीकृत होने वाला पदार्थ है। अतः इसके सूची वेध विशेष विधि से दिये जाते हैं। नेत्र प्रक्षालक में सिकतीन विलयन भर कर उसमें हल्की सी बिजली की करेण्ट गुजारते हैं। नेत्र को इस विलयन के भीतर झपकते रहते हैं। इससे विलयन में विद्यमान सिकतीन का कुछ अंश नेत्र ताल में प्रविष्ट होकर उस पर अपना प्रभाव करता है। इस प्रक्षालन क्रिया की अवधि धीरे २ बढ़ाई जाती है। पहले दिन ८ मिनट फिर प्रति दिन २-२ मिनट बढ़ा कर उसे २० मिनट तक ले जाते हैं। प्रक्षालन का पूरा कोर्स ४० दिन का है।

—क. गौरीलाल चानना बी. ए. वैद्य वाचस्पति

वैद्युतिक हृदय बन गया

विलायत की ताजी खबर है कि ग्रेवसेंड (ईसेक्स) नामक स्थान पर लिचन बूकर नामक एक बालिका को विद्युत का एक हृदय बना कर उसके सहारे उसे जीवित रखा हुआ है। इस लड़की को हृदय रोग था उसे एक अस्पताल में जब प्रवेश करा कर उसके हृदय की शल्य क्रिया हो रही थी तो शल्य क्रिया के समय हृदय में एक छेद हो गया। जिसे बन्द करना कठिन था। इसलिए रक्त संचार कैसे बनाये रखा जाय उन डाक्टरों के सामने सबसे पहला यही प्रश्न था, तब वहाँ पर एक डाक्टर ने जो विद्युत का हृदय बनाया था वाहनियों के साथ सम्बन्धित करके उसे चालू कर दिया गया इससे रक्त का संचालन ठीक तौर पर होने लगा और आज छः सप्ताह से उस लड़की को वह डाक्टर इस विद्युत हृदय के सहारे उसका रक्त संचालन बनाये रखकर जीवित रखे हुए हैं और इस बात की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब वह छेद बन्द हो जाय। आधुनिक शल्य चिकित्सा इतनी समुन्नत हो चुकी है कि अश्विनी कुमारों के समय की शल्य क्रिया को मात कर गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० डी-७२०

०७९४२१

व्याधि-मूल विज्ञान (पूर्वार्ध)

श्री स्वामी हरिशरणानन्द की नव्य कृति

यह वैज्ञानिक युग है, शरीर के भीतर जब कोई व्याधि हो जाती है तो उसे अब तक अनुमान से ही जानते थे। किन्तु वैज्ञानिकों ने ऐसे साधन मालूम कर लिए हैं कि शरीर के भीतर जब व्याधियों का प्रादुर्भाव हो रहा हो तो वह कैसे हुआ करता है, और उसमें कौन कौन से व्याधियों के उत्पादक कारण हैं। इसको उन्होंने नव्य प्रायोगिक विधियों से खूब अच्छी तरह से देखा व जांचा। एक ही प्रयोगशाला ने नहीं, अनेकों प्रयोगशालाओं ने मिलकर जांच की और जो तथ्य उन्हें मिले और वे प्रकाश में आये उनको संकलित कर व्यवस्थित रूप दिया गया है। इन प्रायोगिक विधियों ने चिकित्सा के अनेकों मान्य सिद्धान्तों पर पानी फेर दिया है।

आयुर्वेद का सिद्धान्त है—"मिथ्याहार विहाराभ्यां दोषाः ह्यामाशयाश्रयाः"। आहार विहार की अनियमितताओं से आमाशय में दोषों का उत्थान होता है। आहार सम्बन्धी और पचन सम्बन्धी विषय का प्रायोगिक ज्ञान इतना अधिक बढ़ चुका है जिनके सन्तुलित स्थिति से मनुष्य स्वस्थ रहता है उसमें असन्तुलित स्थिति उत्पन्न होते ही रोगों का प्रादुर्भाव होता है। यह 'द्रव्य साम्यमरोग्यता' का सिद्धान्त किस तरह देखा समझा गया यह आयुर्वेद विद्वानों के समझने की चीज है। इसी का वैज्ञानिक विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है। यह ग्रन्थ का पूर्वार्ध मात्र है जो ४०० से अधिक पृष्ठों में पूर्ण हुआ है। १० वर्ष के परिश्रम के बाद इसका पूर्वार्ध ही पाठकों के हाथ में पहुँचा रहे हैं। सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य १२) है।

पता—मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर।

ब्रांच—खारी बावली दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar